संविधान सभा के शेष सदस्यों ने संविधान निर्माण के कार्य को बखूबी पूरा किया। 2 वर्ष 11 माह 18 दिन के अनवरत परिश्रम के पश्चात् संविधान निर्माण का कार्य पूरा हुआ।

संविधान सभा का निर्माण

मन्त्रि-मण्डल मिशन के अनुसार भारत में प्रान्तीय विधान सभाओं ने जुलाई 1946 ई० में देश की एक संविधान सभा का निर्वाचन किया। इसके सदस्यों में से 211 सदस्य भा० रा० कांग्रेस के तथा 73 मुस्लिम लीग के थे। इन्होंने ही अपने चुनाव के पश्चात् भारत की अन्तरिम सरकार का चुनाव किया, जिसने नये संविधान के लागू होने के समय तक भारत का शासन संचालन करने का कार्य सौंपा गया था। नये संविधान के लागू होने के पश्चात् तथा सन् 1952 में आम चुनावों के सम्पन्न होने से पूर्व इस संविधान सभा ने ही संसद के रूप में कार्य किया।

संविधान सभा का पहला सत्र 9 दिसम्बर, 1946 ई० को प्रारम्भ हुआ। उसमें केवल 209 सदस्य ही उपस्थित हुये थे। इस सभा का अस्थायी अध्यक्ष डा० सच्चिदानन्द सिन्हा को चुना गया। 11 दिसम्बर 1946 ई० को इस सभा का स्थायी अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को चुना गया। पं० जवाहरलाल नेहरू के द्वारा इस सभा में दिनांक 13 दिसम्बर 1946 के दिन ही उक्त संविधान सभा के उद्देश्यों का एक संकल्प प्रस्तुत किया जो कि 22 जनवरी, 19·7 ई० के दिन सभा के भारी बहुमत से पारित हुआ। यह संकल्प इस प्रकार है—

(1) यह संविधान सभा भारत को स्वतन्त्र एवं पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य घोषित करने हेतु अपने इस निश्चित एवं निष्ठावान संकल्प की उद्घोषणा करती है तथा भविष्य में शासन की व्यवस्था करने के लिये एक संविधान का निर्माण करने का निश्चय भी करती है।

(2) जो क्षेत्र ब्रिटिश भारत में सम्मिलित हैं, जो क्षेत्र देशी रियासतों के आधिपत्य में हैं तथा ऐसे अन्य भाग भी जो कि इस स्वतन्त्र एवं पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न भारत में सम्मिलित होने को तैयार हों, वे सभी परस्पर मिलकर एक संघ का रूप धारण करेंगे।

(3) उपरोक्त समस्त क्षेत्रों को अपनी वर्तमान सीमाओं के साथ जिनका कि निश्चय इसी संविधान सभा के द्वारा किया जाता है, तथा उसके उपरान्त संविधान के कानून के द्वारा स्वायत्तशासी इकाइयों के रूप में प्रतिष्ठित किया जायेगा। इनको समस्त अवशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त होंगी तथा सरकार और प्रशासन के समस्त अधिकारों का वे प्रयोग कर सकेंगे। उनकी ये शक्तियाँ, संघ सरकार में अन्तर्निहित अथवा विनियोजित अथवा संघीय व्यवस्था के कारण उत्पन्न होने वाली सभी शक्तियों और कार्यों से सर्वथा पृथक् रहेंगी।

(4) इस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र भारत की सम्पूर्ण शक्ति तथा प्राधिकार, उसके सुसंगठित अंग तथा उनके सरकारी प्रत्यंग जनता के लिये हैं।

(5) प्रत्येक भारतवासी को न्याय (सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक) एवं अवसर की समानता उपलब्ध करायी जायेगी तथा विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, उपासना, श्रद्धा, व्यवसाय तथा कर्म के लिये विधि एवं लोकाचार के आधीन स्वतन्त्रता रहेगी।

(6) अल्पसंख्यक वर्ग, पिछड़ी हुई एवं आदिम जातियों तथा त्रस्त अन्य पिछड़े हुये वर्गों हेतु उचित संरक्षण की सरकार के द्वारा व्यवस्था की जायेगी।

(7) गणराज्य के क्षेत्र की सुदृढ़ता का पोषण किया जायेगा तथा इसके साथ ही साथ जल, थल और वायु में इसके सम्पूर्ण अधिकारों का भी न्याय एवं राष्ट्रों की विधि के आधीन पालन किया जायेगा।

(8) यह प्राचीन भूमि विश्व में उचित एवं सम्मानपूर्ण स्थान ग्रहण करती है और यह विश्वशान्ति की वृद्धि एवं मानव कल्याण के हेतु पूर्ण एवं स्वैच्छिक अंशदान करती है।

उपर्युक्त उद्देश्य संकल्प ने उन मूलोद्देश्यों की घोषणा की, जिनके आधार पर संविधान को अपनी कार्यवाही में पथ-प्रदर्शन उपलब्ध होना था। इसके अतिरिक्त भारत का गठन एक पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य के रूप में किया जाना था, जिसमें कि ब्रिटिश भारत तथा समस्त भारतीय रियासतों को भी सम्मिलित किया जाना था। संघ की इकाइयों को संविधान के अन्तर्गत स्वायत्तता प्रदान की गई जिसका उपभोग उन्हें संविधान के द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत करना था।

इस संकल्प उद्देश्य ने राज्य की सम्पूर्ण सत्ता एवं प्राधिकार को जनसाधारण के उधृत माना है। इसके द्वारा संवैधानिक व्यवस्था में देश के सभी लोगों के लिये सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना मुख्य उद्देश्य स्वीकार किया गया है। इसके साथ ही समस्त व्यक्तियों के लिये राज्य एवं कानून के समक्ष प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता का प्राविधान किया जाना था। यही नहीं वर्तमान संविधान के द्वारा जनसाधारण को विचार अभिव्यक्ति, श्रद्धा, उपासना, विश्वास, व्यवसाय सम्बद्ध होने तथा कर्म के लिये विधि तथा लोकाचार के आधीन स्वतन्त्रता भी प्रदान की जानी थी।

इसी प्रकार देश की कुछ पिछड़ी हुई तथा आदिम जातियों-अल्पसंख्यकों के हेतु उचित रूप में संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की गई।

संविधान सभा ने अपना द्वितीय सत्र 20 जनवरी से लेकर 25 जनवरी, 1947 ई० तक किया, जिसमें कि संविधान सभा ने अपनी एक विशिष्ट समिति संघीय शक्ति से सम्बन्धित समिति तथा मन्त्रिमण्डल मिशन योजना के निश्चयानुसार एक स्टियरिंग समिति, एक कार्यक्रम समिति तथा एक अल्पसंख्यक वर्गों के लिये मन्त्रणा समिति का गठन किया।

संविधान सभा का तृतीय सत्र 22 अप्रैल से लेकर 22 मई 1947 ई० तक चलता रहा किन्तु अभी तक संविधान सभा ने संविधान निर्माण की दिशा में कोई

उल्लेखनीय कार्य नहीं किया था। संविधान निर्माण का कार्य अत्यन्त मन्द गति से चल रहा था। इसने अपनी प्रक्रिया को कैबिनेट मिशन योजना द्वारा नियत की गई सीमा के अन्तर्गत ही परिसीमित रखा था। तथापि इसके परिणामस्वरूप संविधान सभा के बहुसंख्यक सदस्यों को इस तथ्य का पूर्ण रूप से आभास हो गया कि मुस्लिम लीग के सदस्य किसी भी दशा में संविधान सभा में सम्मिलित नहीं होंगे। अतः संविधान सभा ने अब सुचारु रूप से संविधान निर्माण करने का कार्य प्रारम्भ किया। संघीय शक्ति समिति की रिपोर्ट 28 अप्रैल, 1947 ई० को जवाहरलाल नेहरू के द्वारा संविधान सभा में प्रस्तुत की गई। दूसरे ही दिन 29 अप्रैल 1947 ई० को सरदार पटेल के द्वारा सभा में मूलाधिकार एवं अल्पसंख्यक वर्ग की मन्त्रणा समिति की अन्तिम रिपोर्ट भी पेश कर दी गई। संविधान सभा ने अब नागरिक मूलाधिकारों के विषय में विस्तृत रूप से विचार करना प्रारम्भ कर दिया। सभा ने 2 मई, 1947 ई० से कुछ समय के लिये अपना कार्य स्थगित करने का निश्चय किया, किन्तु इसके पूर्व कि वह अपना कार्य स्थगित करती, उसने पं० नेहरू के अध्यक्षत्व में एक संघ संविधान समिति का तथा सरदार पटेल के अध्यक्षत्व में एक प्रान्तीय संविधान समिति का गठन करना भी आवश्यक समझा।

बाद में संविधान सभा ने संघीय संविधान पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु इसने अन्त में वित्तीय सम्बन्धों की एक विशेषज्ञ समिति तथा एक मुख्यायुक्त प्रान्तीय समिति (Chief Commissioners Provinces Committee) का भी गठन किया।

संविधान सभा के आगामी एवं चतुर्थ सत्र का प्रारम्भ 14 जुलाई, 1947 ई० को प्रारम्भ हुआ। इसके समक्ष संघ संविधान समिति तथा प्रान्तीय संविधान समिति ने अपनी-अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसके बाद संविधान सभा के सामने मूल अधिकार, आदिम जाति तथा अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी रिपोर्टें प्रस्तुत की गईं और फिर सर्वोच्च न्यायालय की तदर्थ समिति ने भी इसके सम्मुख अपनी रिपोर्ट रक्खी, जिस पर विचार किया गया। तत्पश्चात् सभा ने प्रान्तीय संविधानों से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के विषय में विचार करना प्रारम्भ किया। इसी बीच दिनांक 22 जुलाई, 1947 ई० को संविधान सभा ने भारत के राष्ट्रीय ध्वज को अंगीकृत किया।

14 अगस्त, 1947 ई० से संविधान सभा का 5वाँ अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इसी समय से इस संविधान सभा ने भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 ई० की शर्तों के आधीन एक पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न निकाय का स्वरूप धारण किया। अस्तु, अब यह सभा कैबिनेट मिशन द्वारा नियत की हुई सीमाओं के अन्तर्गत परिसीमित न रही। यह अब देशवासियों की आवश्यकतानुसार संविधान निर्माण करने वाली संस्था बन गयी। इसने लार्ड माउन्ट बेटन को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त

किया। जवाहरलाल नेहरू को उनके साथ स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री के रूप में कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। अब संविधान सभा ने ही देश का संविधान बनाने के साथ-साथ देश के लिये सामान्य कानूनों का निर्माण करने का कार्य करना भी प्रारम्भ कर दिया। 26 नवम्बर, 1949 ई० तक इसने इन दोनों ही कार्यों को करना जारी रक्खा। इस दिन से संविधान बनाने का कार्य पूर्ण हो जाने के कारण, इसके द्वारा विधान निर्माण करने का ही कार्य किया गया। संविधान सभा ने अब संघ शक्ति समिति की दूसरी रिपोर्ट पर विचार किया, जो उसकी प्रथम रिपोर्ट की तुलना में सर्वथा भिन्न थी, जिसका कारण यह था कि भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित हो जाने से अब संविधान सभा की शक्तियों के सम्बन्ध में कोई सीमा रेखा खींचना सम्भव न था और यह स्वेच्छापूर्वक देश की आवश्यकताओं के अनुरूप संविधान बना सकने को स्वतन्त्र थी। संघीय शक्ति समिति ने अपनी प्रथम रिपोर्ट में स्वतन्त्र भारत के लिये एक दुर्बल केन्द्रीय सरकार का ही उपबन्ध किया था, किन्तु इस द्वितीय रिपोर्ट के माध्यम से उसने केन्द्र में एक शक्तिशाली सरकार की ही स्थापना करने का प्रावधान किया। इसी समय संविधान सभा में नागरिकों के मूलाधिकारों से सम्बन्धित प्रथम रिपोर्ट तथा अल्पसंख्यक वर्ग की मंत्रणा समिति की रिपोर्ट पर विचार किया। 29 अगस्त, 1947 ई० को 7 सदस्यों की एक मसविदा समिति का गठन भी डा० भीमराव अम्बेदकर के अध्यक्षत्व में किया गया, जिसके कि अन्य प्रमुख सदस्य थे—श्री के० एम० मुंशी, टी० टी० कृष्णामाचारी, गोपाल स्वामी अयंगर तथा अलादी कृष्ण स्वामी अय्यर आदि। इस मसविदा समिति ने श्री बी० एन० राव द्वारा तैयार किये हुये मसविदे के आधार पर ही अपना कार्य करना प्रारम्भ किया था, जिसे कि श्री एस० एन० मुकर्जी के द्वारा अन्तिम रूप प्रदान किया गया था।

भारत के वर्तमान संविधान का मसविदा जनवरी सन् 1949 ई० में प्रकाशित किया गया। संविधान के मसविदे पर विचार करने हेतु 8 मास का समय निश्चित हुआ। इस पर संविधान सभा ने 4 नवम्बर, 1948 के दिन से सामान्य वाद-विवाद करने की प्रक्रिया भी प्रारम्भ कर दी, जोकि 9 नवम्बर, 1948 तक चलती रही। दिनाँक 19 नवम्बर, 1948 ई० से लेकर 17 अक्टूबर 1949 ई० तक संविधान के मसविदे पर सभा ने पूर्ण रूप से विचार कर लिया। इसी बीच संविधान सभा के समक्ष 7635 संशोधन प्रस्तुत किये गये, जिनमें से 2473 संशोधनों पर ही इसने विचार करना स्वीकार किया तथा शेष छोड़ दिये गये, क्योंकि उन पर संविधान सभा के बहुमत का समर्थन न उपलब्ध हो सका था। संविधान के प्रारूप का तृतीय पाठन 14 नवम्बर से लेकर 26 नवम्बर, 1949 ई० तक चलता रहा और तब कहीं इसे संविधान सभा ने अंगीकृत करके इसे अपने स्थायी अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद के हस्ताक्षरों के लिये प्रस्तुत किया। इस प्रकार संविधान सभा ने 2 वर्ष 11 मास 8 दिन तक अपने 11 अधिवेशन करने के उपरान्त

संविधान के मसविदे पर भी कोई 114 दिनों तक गम्भीर एवं विस्तृत विचार किया। इसके पश्चात् ही 26 जनवरी 1950 ई० से भारत के इस नवीन संविधान को लागू किया गया। इस संविधान निर्माण प्रक्रिया के सम्पन्न होने पर इसके कुछ समय पूर्व भारत सचिव सर पैथिक लारेंस ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि—

"······आज 26 जनवरी, 1950 को भारत ने राज्यों को अपने क्षेत्र में संविलय करने तथा अपना एक संविधान बनाने के फलस्वरूप एक गणराज्य का रूप धारण कर लिया। अब यह भारत राष्ट्र इंगलैंड तथा उसके अन्यान्य राष्ट्रों की सहमति से ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल (अर्थात् ब्रिटिश कामन वेल्थ) का सदस्य भी बना हुआ है।"

इस संविधान निर्माण तथा उसकी पृष्ठ-भूमि में भारत के राष्ट्रीय नेताओं के कृत्यों की प्रशंसा करते हुये सर पैथिक लारेंस ने आगे यह भी कहा—

"मानव इतिहास का यह कितना अद्भुत इतिहास है। प्रमुख नेताओं के शौर्य तथा बुद्धि के अभाव में यह चित्र कितना भिन्न होता। जहाँ अनेकों ने जीवन-दान दिया हो, वहाँ केवल कुछ ही नामों की गणना करना कितनी बडी भूल हो सकती है? तथापि मैं उन भारतीयों को श्रद्धांजली दिये विना नहीं रह सकता जिन्होंने उचित रूप से प्रमुख कार्यक्रम में भाग लिया है। महात्मा गाँधी जो कि भारतीय स्वतन्त्रता के लिये अडिग रहे तथा जिन्होंने भारत के विभाजन के निश्चय के उपरान्त अपने जीवन को नागरिक जीवन में फैले हुए वैमनस्य को रोकने के लिये उत्सर्ग किया, श्री राजगोपालाचारी मद्रास के भद्र नागरिक गवर्नर जनरल जो कि अथक प्रयास करके ब्रिटिश तथा भारत और हिन्दू मुस्लिम झगड़ों का निबटारा करते रहे, सरदार वल्लभ भाई पटेल उप-प्रधानमन्त्री जिन्होंने समस्त भारतीय प्रान्तों तथा भारत की देशी रियासतों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की अपनी आकांक्षा को साकार किया तथा प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू को जिन्होंने अपनी दूरदर्शिता के कारण स्वय तथा अपने देशवासियों के लिये संसार के लोगों का सम्मान उपार्जित किया है। जब तक कि भारत में ऐसे प्रतिभाशाली स्त्री पुरुष जन्म लेते रहेंगे, मुझे भारत के भविष्य के विषय में कोई भी भय नहीं होगा।"

इस प्रकार देश के बड़े-बड़े विद्वानों और राजनीतिज्ञों के सत्प्रयासों से निर्मित भारत के इस वर्तमान संविधान में अनेकानेक गुण अथवा विशेषतायें मिलती हैं जैसा कि उसकी प्रस्तावना से ही प्रकट हो जाता है। इसकी मुख्य-मुख्य विशेषतायें हैं—सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक राज्य की मान्यता, विस्तृत संविधान जिसमें कि कुल मिलाकर 395 अनुच्छेद तथा 9 अनुसूचियाँ हैं। एक संविधान का लिखित स्वरूप इसका लचीलापन, शक्तिशाली केन्द्र, लौकिक एव धर्म निरपेक्ष राज्य की व्यवस्था, मौलिक अधिकारों की सुरक्षा, स्वतन्त्र न्यायपालिका एवं संसद की सर्वोच्चता आदि सिद्धान्तों का हमारे संविधान में सुन्दर समन्वय किया गया है।

2 भारतीय संविधान के स्रोत, प्रस्तावना एवं विशेषतायें

(Sources, The Preamble and Features of the Indian Constitution)

प्रश्न 2—भारतीय संविधान के मुख्य स्रोतों का वर्णन कीजिये ।

Describe the main sources of the Indian Constitution.

"भारतीय संविधान उधार का थैला है। इसी कारण यह पेचिदा, जटिल तथा अस्पष्ट हो गया है।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।

"The Indian Constitution is a bag of borrowings and this is what has made it cumbersome, complicated and incongruous." Examine critically the above statement.

भारतीय संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य मौलिक संविधान की रचना करना नहीं वरन् विश्व के विभिन्न संविधानों से अच्छी-अच्छी बातों को ग्रहण कर भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप एक 'व्यावहारिक संविधान' (Workable Constitution) का निर्माण करना था। इसीलिये हमारे संविधान निर्माता मौलिकता के प्रति उत्सुक न होकर संविधान की व्यावहारिकता तथा उसकी परिस्थितियों में अनुकूलता के प्रति अधिक जागरूक थे। संविधान निर्माताओं ने मौलिकता का दावा नहीं किया वरन् अनुभव के आधार पर विभिन्न देशों की शासन-व्यवस्थाओं से भिन्न-भिन्न बातें ग्रहण कीं। इसलिये कुछ आलोचकों ने इसे 'उधार का थैला' (A bag of Borrowings) कहा है। कुछ भी हो इतना तो निश्चित है कि हमारे संविधान में विश्व के लगभग सभी प्रमुख संविधानों की अद्भुतताओं तथा व्यावहारिकता की कसौटी पर खरे उतरे संवैधानिक सिद्धान्तों को एक स्थान पर एकत्रित किया गया है। हमारे संविधान निर्माताओ ने दूसरे देशों के संविधानों से अच्छी बातों को ग्रहण करने में कोई हिचक महसूस नहीं की। वे तो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल एक व्यावहारिक और अच्छा संविधान बनाना चाहते थे। इसी उद्देश्य से संविधान के निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय खुलकर विश्व के दूसरे संविधानों की सहायता ली है। इन संविधानों में जो कुछ उन्होंने अच्छी व्यवस्था देखी और जिसे अपने देश की परिस्थिति के अनुकूल पाया, उसे अपने संविधान में ले लिया है।

भारतीय संविधान के प्रमुख स्रोत
(Main Sources of the Indian Constitution)

(1) 1935 के अधिनियम का प्रभाव (Impact of Govt. of India Act of 1935)—भारत के गणतन्त्रीय संविधान पर स्वयं उसके पूर्ववर्ती 1935 के भारत सरकार अधिनियम का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। इस अधिनियम की 200 धारायें उन्हीं शब्दों में या कुछ संशोधनों के साथ नये संविधान में ग्रहण कर ली गई हैं। इसलिये डा० जैनिग्स ने कहा है कि, "भारतीय संविधान पर 1935 के अधिनियम का इतना प्रभाव है कि उसकी अधिकांश धाराओं को ज्यों का त्यों ही संविधान में रख लिया गया है।"

1935 के संविधान से निम्नलिखित प्रमुख बातें ग्रहण की गयी हैं—

(i) नये संविधान के अनुच्छेद 256 में कहा गया है कि, "प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति इस प्रकार प्रयुक्त होगी, जिससे संविधान द्वारा बनाये गये कानूनों का पालन हो तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति को इस सम्बन्ध मे राज्यों को उचित निर्देशन देने का अधिकार हो।" 1935 के अधिनियम का 126वां अनुच्छेद अथवा धारा भी इन्हीं शब्दों में थी।

(ii) नये संविधान के अनुच्छेद 356 में राज्यों में संवैधानिक तन्त्र से उत्पन्न संकट की व्यवस्था है जिसमें राष्ट्रपति को आपातकालीन अधिकारों का प्रयोग करने की व्यवस्था है। 1935 के अधिनियम में धारा 92 भी इसी प्रकार की थी।

(iii) संविधान के अनुच्छेद 353 और 362 जिनका सम्बन्ध राष्ट्रपति की आपातकालीन घोषणा से है वे 1935 के अधिनियम के 102वें अनुच्छेद से मिलते हैं।

एम० पी० शर्मा के अनुसार, "देश की प्रशासनिक व्यवस्था का वर्तमान समस्त ढाँचा संविधान के अन्तर्गत ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया है।"

(iv) दोनों संविधानों में और अनेक बातों में भी समानता है। दोनों ही संविधानों में संघीय शासन की स्थापना की गई। संघ सूची, राज्य और समवर्ती सूची के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों में शक्तियों का विभाजन किया गया। दोनों में ही केन्द्र और राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का उल्लेख है।

1935 के अधिनियम तथा स्वतन्त्र भारत के संविधान के मध्य समानताओं के सम्बन्ध में डा० पंजाब राव देशमुख का कथन है कि "वर्तमान संविधान आवश्यक रूप से 1935 का भारतीय अधिनियम ही है जिसमें केवल वयस्क मताधिकार को और जोड़ दिया गया है।" परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वर्तमान संविधान 1935 के अधिनियम की नकल है। वास्तविकता यह है कि यह अपने पूर्वगामी संविधान से बहुत सी बातों में भिन्न है। नया संविधान न केवल भारतीयों द्वारा बनाया ही गया है, वरन् प्रमुसत्ता भी जनता में ही निहित है। 1935 का अधिनियम ब्रिटिश संसद ने बनाया था और वही उसमें संशोधन भी कर सकती थी। इस

प्रकार भारतीय संसद को उसमें संशोधन करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। इसके अतिरिक्त नये संविधान में राष्ट्रपति और राज्यपाल सवैंधानिक प्रधान हैं। जबकि 1935 के अधिनियम में गर्वनर जनरल और गर्वनरों को स्वविवेकी शक्तियाँ और विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गये थे जिनकी आड़ में वे स्वेच्छाचारी शासक से किसी भी प्रकार कम नहीं थे। 1935 के अधिनियम द्वारा नागरिकों को मूल अधिकारों से भी वंचित रखा गया था और मताधिकार भी अत्यन्त सीमित था। इसके विपरीत वर्तमान संविधान का आधार ही 'वयस्क मताधिकार अथवा सार्वजनिक मताधिकार' (Adult Franchise or Universal Fairnchise) है। वर्तमान संविधान में 'मूलाधिकार' तथा कल्याणकारी राज्य की धारणा तथा सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक न्याय उपलब्ध कराने का संकल्प एक नया कदम है। इन बातों का 1935 के अधिनियम में कोई उल्लेख नहीं था।

(2) **ब्रिटेन के संविधान का प्रभाव (Influence of British Constitution)**—नये सविधान के अन्तर्गत संसदीय शासन की स्थापना की गई है और उसको क्रियान्वित करने के लिये जो नियम बनाये गये हैं वे सभी ब्रिटिश संविधान और उसकी परम्पराओं से लिये गये हैं। भारत एक लम्बे समय तक अंग्रेजों के अधीन रहा है। अंग्रेजों ने अपने देश के शासन की ही भाँति धीरे-धीरे भारत में भी ससदीय शासन की स्थापना के लिये कानून बनाये। भारतीय लोग ऐसे कानूनों और संसदीय शासन से परिचित हो चुके थे। अतः नये सविधान में संसदीय शासन को भारत के लिये उपयुक्त समझा गया। दोनों ही देशों में वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मन्त्रि-मण्डल के हाथों में है जोकि उनके प्रयोग के लिये संसद के निचले सदन के प्रति उत्तरदायी होता है।

(3) **अमेरिका के संविधान का प्रभाव (Influence of American Constitution)**—भारतीय संविधान पर अमेरिकन संविधान का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। संविधान की प्रस्तावना, मूल अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान की व्याख्या तथा न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial review), उप-राष्ट्रपति का पद, न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता, न्यायाधीशों को पद से हटाने की विधि आदि बातों के लिये हम अमेरिका के संविधान के बहुत ऋणी हैं।

(4) **आयरलैंड के संविधान का प्रभाव (Influence of Irish Constitution)**—भारत के संविधान में भारत की नीति के निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के चुनाव में निर्वाचक मण्डल का प्रावधान और संसद के उच्च सदन में साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्रों में विशिष्ट व्यक्तियों को नामजद करने की प्रणाली आयरलैंड के संविधान से ली गई है।

(5) **कनाडा के संविधान का प्रभाव (Influence of the Constitution of Canada)**—दोनों ही देशों में संघीय शासन की स्थापना समान आदर्शों पर हुई

है, यहाँ तक कि कनाडा संविधान की भाँति भारतीय संविधान में भी भारतीय संघ के लिये 'यूनियन' शब्द का प्रयोग किया गया है। कनाडा की तरह भारतीय संघ में भी अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के हाथों में रखी गयी हैं तथापि सघीय व्यवस्था की कुछ विशेषतायें आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका के संविधानों से भी ली गई हैं।

(6) आस्ट्रेलिया के संविधान का प्रभाव (Influence of the Australian Constitution)—संविधान की प्रस्तावना के भाव तथा भाषा, समवर्ती और इस सूची से सम्बन्धित केन्द्र व राज्य के पारस्परिक झगड़ों को तय करने की प्रणाली आस्ट्रेलियन संविधान प्रणाली से मिलती-जुलती है।

(7) दक्षिणी अफ्रीका के संविधान का प्रभाव (Influence of the Constitution of South Africa)—भारतीय संविधान की संशोधन प्रणाली दक्षिणी अफ्रीका की संशोधन प्रणाली के समान है।

(8) जर्मनी के वाइमर संविधान का प्रभाव (Influence of the Weimear Constitution)—इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को जो आपातकालीन शक्तियाँ दी गई हैं तथा जिनके द्वारा वह मूलाधिकारों को निलम्बित कर सकता है, 1948 के जर्मनी के वाइमर संविधान से ग्रहण की गई हैं। संविधान में संशोधन करने की विधि दक्षिणी अफ्रीका से प्रभावित है।

आलोचनात्मक अध्ययन (Critical study)— भारत के नये संविधान में विश्व के विभिन्न संविधानों से जो महत्वपूर्ण बातें ग्रहण की गयी हैं, उनके कारण नकलमात्र या 'उधार का थैला' (A bag of borrowing) कहा जाता है। विभिन्न देशों के संविधान की नकल से भारतीय सविधान में न केवल मौलिकता का अभाव है वरन् यह अस्पष्ट व जटिल भी हो गया है। 'वकीलों का स्वर्ग' (Lawyer's Paradise) भी कहा है क्योंकि इसमें इतनी जटिल धारायें हैं कि मुकदमेबाजी की बहुत अधिक गुंजाइश है।

यद्यपि भारत के नये संविधान के निर्माण में अनेक संविधानों की सहायता ली गई है फिर भी उपर्युक्त आलोचनायें तर्कसंगत व न्यायसंगत नहीं हैं। आज के युग में मौलिकता की माँग करना बेहूदगी है। अनेक संविधानों के निर्माण हो जाने से उनके उचित और सफल उपबन्धों को अपनाया ही जाता है। आज किसी भी देश के संविधान पर उसका एकाधिकार नहीं है। फिर भी संविधान के निर्माताओं ने किसी संविधान की आँख मींचकर नकल नहीं की है। केवल उन्हीं उपबन्धों को दूसरे संविधान से लिया गया है जो भारतीय परिस्थितियों में सफल हो सकते हैं।

प्रश्न 3—भूमिका का संविधान में क्या महत्व है? भारतीय संविधान की भूमिका के मुख्य लक्षण बताइये।

What is the importance of the Preamble in the Constitution. Bring out the salient features of the Preamble of the Indian Constitution.

"प्रस्तावना संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। यह संविधान की आत्मा है। यह संविधान की कुंजी है।" विवेचना कीजिए।

"The Preamble is the most precious part of the constitution. It is the soul of the constitution. It is a key to the constitution". Discuss.

भारतीय संविधान की प्रस्तावना (The Preamble of the Indian Constitution)—भारत के गणतन्त्रीय संविधान की प्रस्तावना निम्न प्रकार है—

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने और इसके सभी नागरिकों को, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा व अवसर की समता प्राप्त करने के लिये तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवम्बर, 1949 ई० को, इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

इस प्रकार भारत के संविधान की भूमिका जो कि संविधान का मुख्य स्रोत है। भारत को प्रभुत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित करती है। इसी आशय को प्रकट करते हुए डा० अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था—"भारतीय संविधान की प्रस्तावना में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यह संविधान जनता द्वारा बनाया गया है तथा अन्तिम शक्ति जनता में निहित है।"

प्रस्तावना के उद्देश्य (Objecatives of the Preamble)

(1) संविधान के स्रोत का ज्ञान (Knowledge of the Source of the Constitution)—प्रस्तावना के द्वारा संविधान के स्रोत का ज्ञान होता है। प्रस्तावना में कहा गया है कि, **"हम भारत के लोग······संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"** भारत की जनता ने यद्यपि संविधान के निर्माण में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लिया, फिर भी परोक्ष रूप से इसके निर्माण में जनता का हाथ रहा है। संविधान सभा में जनता के ही प्रतिनिधि थे जिनका परोक्ष रूप से किया गया था। यद्यपि यह ठीक है कि संविधान सभा के प्रतिनिधियों को केवल 13 प्रतिशत जनता ने ही चुना था, परन्तु इस कमी की पूर्ति के लिये जनता को नये संविधान में वयस्क मताधिकार प्रदान कर दिया गया है और जनता की प्रतिनिधि सभा भारतीय संसद को संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार न केवल जनता ने इस संविधान को बनाया है, वरन् उसे इस संविधान में

संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार न केवल जनता ने इस संविधान को बनाया है वरन् उसे इस संविधान में संशोधन करने का भी अधिकार प्राप्त है।

(2) संविधान के उद्देश्यों का ज्ञान (Knowledge of the aims of Constitution)—संविधान की प्रस्तावना के द्वारा, संविधान के उद्देश्यों का भी पता लगता है। संविधान के पाँच उद्देश्यों और आदर्शों का इस प्रकार उल्लेख किया गया है—न्याय, स्वतन्त्रता, समता, बन्धुत्व और राष्ट्रीय एकता। न्याय का अर्थ यह है कि राज्य का उद्देश्य एक या कुछ लोगों की भलाई न होकर समस्त जनता की भलाई करना होगा।[1] इसी उद्देश्य के लिये संविधान में सार्वजनिक पदों पर सभी नागरिकों की बिना भेदभाव के नियुक्ति का प्रावधान रखा गया है, छुआछात का अन्त कर दिया गया है। राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख भी इसी उद्देश्य से किया गया है। व्यक्ति को उसके विकास के लिये स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है। 'समानता' का अर्थ सभी नागरिकों को उनकी उन्नति के लिये प्रत्येक क्षेत्र में समान अवसर प्रदान करना है। संविधान की प्रस्तावना में 'बन्धुता' की वृद्धि की बात कही गई है, जिसका अर्थ सभी लोगों में भाई-चारे की भावना में वृद्धि करना है। भारत जैसे विशाल देश में जहाँ विभिन्न जातियाँ, धर्म व भाषा के लोग रहते हैं, वहाँ 'बन्धुता' की भावना के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ किया जा सकता है।

गहराई से अध्ययन करने पर हमें यह भी पता चलता है कि प्रस्तावना का उद्देश्य भारत में एक ऐसी शासन व्यवस्था लागू करना है जो 'लोकतन्त्रीय समाजवाद, धर्म-निरपेक्षता तथा कल्याणकारी भावना' पर आधारित हो।

(3) सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य (Soverign Democratic Republic)—संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है। भारत में 26 जनवरी 1950 से 'अधिराज्य की स्थिति' (Dominion Status) समाप्त कर दी गयी थी। अब नये संविधान के अन्तर्गत भारत के लोक संघात्मक सम्प्रभु स्वरूप की स्पष्ट घोषणा कर दी गयी थी। अपने आन्तरिक और वाह्य मामलों में भारत पूर्णतया स्वतन्त्र है। यद्यपि भारत आज भी राष्ट्रमण्डल (Commonwealth of Nations) तथा संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है, परन्तु इसमें भारत की 'सम्प्रभुता' (Democratic Republic) पर कोई आँच नहीं आती है। राष्ट्रमण्डल की सदस्यता भारत ने स्वेच्छा से ग्रहण की है और वह इसे कभी भी त्याग सकता है। राष्ट्रमण्डल की सदस्यता का कोई संवैधानिक महत्व नहीं है। भारत को 'लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' भी घोषित किया गया है। इसका अर्थ यह है कि शासन की सर्वोच्च शक्ति स्वयं

---

1. "The Preamble assures the people, economic, political and social justice. It thus visualises not only political democracy but also social and economic democracy. It is in pursuance of these objectives that the Government has adopted the socialistic pattern of society as its ideal."

जनता में निहित है। वर्तमान युग में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र तो स्विट्जरलैंड जैसे छोटे और सुरक्षित देश में ही सम्भव है। भारत में ब्रिटेन अमेरिका आदि की भाँति प्रतिनिध्यात्मक लोकतन्त्र है। प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र में जनता को वयस्क मताधिकार प्राप्त होता है। भारत जैसे विशाल राज्य में यह तो सम्भव नहीं था कि जनता प्रत्यक्ष रूप से सम्प्रभु शक्ति का प्रयोग करे। इसीलिये परोक्ष रूप से जनता को सम्प्रभु बताया गया है। भारत में सभी नागरिकों को बिना किसी धर्म, वंश, जाति, लिंग के समान रूप से मत देने का अधिकार है। सोवियत संघ की भाँति भारत में एकदलीय सरकार नहीं है। भारतीय लोकतन्त्र में कोई पद या संस्था पैतृक नहीं है। संविधान में जनता को सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय, प्रतिष्ठा और समान अवसर देने की बात कही गई है। भारत 'गणराज्य' इसीलिये है कि देश का प्रधान अधिकारी ब्रिटेन के राजा या रानी की भाँति वंशानुगत न होकर अमेरिका के राष्ट्रपति की भाँति निर्वाचित अध्यक्ष है। यही नहीं, कोई भी नागरिक आवश्यक योग्यता रखने पर इस पद को प्राप्त कर सकता है।

(4) धर्म निरपेक्ष राज्य (Secular State)—संविधान की प्रस्तावना भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य के रूप में घोषित करती है, क्योंकि प्रस्तावना में नागरिकों को विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता दी गई है। भारत का कोई भी नागरिक किसी भी धर्म का पालन व प्रचार कर सकता है।

(5) भारत एक अविभाज्य संघ (India as an indivisible union)—संविधान की प्रस्तावना से यह स्पष्ट है कि यह संविधान भारतीय जनता ने अधिनियमित और अंगीकृत किया है, इसलिये कोई भी एक राज्य या समूह न तो संविधान को समाप्त कर सकता है और न संघ से पृथक् ही हो सकता है।

प्रस्तावना का महत्व (Importance of the Preamble)—संविधान की प्रस्तावना के शब्दों, उनके अर्थों व उद्देश्यों से, प्रस्तावना की महत्ता स्वयं स्पष्ट हो जाती है। निःसन्देह, "प्रस्तावना संविधान का अमूल अंग है और संविधान की कुंजी है।" जहाँ संविधान की किसी अस्पष्ट धारा की व्याख्या करने की आवश्यकता हो, वहाँ यह प्रस्तावना सहायता करती है, मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश शास्त्री ने "गोपाल बनाम् मद्रास राज्य" के मुकदमे में कहा था कि "धारा 22 (5) की व्यवस्था की जो व्याख्या मैंने की है, उसका समर्थन संविधान की उत्कृष्ट रूप प्रदान करती है।"[1] यह प्रस्तावना न केवल इसलिये महत्वपूर्ण है कि इसमें शासन की समस्त शक्तियों का स्रोत जनता को बताया गया है और जनता ही

---

1. "The Interpretation that I am inclined to place on clause (5) of article 2 is justified by the solemn words of the declaration contained in the preamble to the constitution. It is this declara ion that makes our constitution sublime."

—A. K. Gopalan Vs. States of Madras

केन्द्रीय और राज्य सरकारों को चुनती और पदच्युत करती है, वरन् प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के विचारों और उद्देश्य को भी स्पष्ट करती है जिसमें संविधान के पालन में उसमें अन्तर्निहित भावना का उल्लंघन न हो। भारतीय प्रस्तावना का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके अन्तर्गत उदारवाद तथा समाजवाद दोनों का मिश्रण है।

निष्कर्ष—संविधान की प्रस्तावना, संविधान का अमूल्य अंग तथा उसके भागों एवं उद्देश्यों को जानने की कुंजी है। यह संविधान की आत्मा है।[1] संक्षेप में प्रस्तावना में संविधान के आदर्श एवं आकांक्षायें निहित हैं। हालांकि न तो यह संविधान का ही अंग है और न प्रदत्त शक्तियों पर रोक ही लगाती है।

"Preamble itself is neither a source of power, nor a source of the privation of power."

प्रश्न 4—स्वतन्त्र भारत के संविधान की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करो।

भारत के वर्तमान संविधान की संघीय विशेषताओं का परीक्षण कीजिये।

India is a Sovereign Democratic Republic. Explain this statement.

क्या भारत का संविधान कठोर है या परिवर्तनशील? तर्क देते हुये लिखिये।

Is the Indian constitution rigid or flexible? Give reasons for your answer.

भारतीय संघ की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिये। केन्द्र और राज्यों के बीच विभिन्न सम्बन्धों पर प्रकाश डालिये।

Discuss the federal features of Indian Constitution. Also discuss the relations between the union and states.

भारतीय गणराज्य के संविधान की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करो।

Discuss the chief features of the Indian federation with special reference to the relation between the central and the states.

---

1. "The preamble represents the ideals and the spirit of the constitution. Though it is not justicable, yet it is the most sacred part of constitution. It makes the constitution 'Sublime'. Pandit Bhargava in the constituent assembly summed up the importance of the preamble in the following words : the preamble is the most precious part of the constitution. It is the soul of the constitution. It is a key to the constitution.... It is a jewll set in the constitution. It is a super prose-poem nay, it is perfection in itself. It is considered one of the best of its kind every drafted."

भारतीय संविधान की विशेषतायें
(The Salient Features of the Indian Constitution)

हमारे देश के संविधान निर्माताओं ने एक अच्छा संविधान निर्माण करने के उद्देश्य से अन्य विकसित देशों के संविधानों के गुणों का समावेश अपने संविधान में किया है। हमारे देश के संविधान के निर्माण के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, आयरलैंड तथा इंगलैंड आदि देशों के लोकतान्त्रिक संविधानों से प्रेरणा ली गई है तथापि हमारे देश की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण हमारे संविधान निर्माताओं ने कुछ विशिष्टताओं को भी इनमें जोड़ा। हमारे संविधान की उल्लेखनीय विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(1) संविधान की विशालता (Comprehensive Constitution)—भारतीय संविधान विश्व के समस्त लिखित संविधानों में सबसे बड़ा है। इसकी विशालता का प्रमुख कारण यह है कि इसमें शासन सम्बन्धी उन बातों को भी जो प्रथाओं के अनुसार बाद में विकसित हो सकती थीं, संविधान में लिपिबद्ध कर दिया गया है।

(2) धर्म निरपेक्ष राज्य (Secular State)—भारतीय संविधान ने भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया है। धर्म निरपेक्ष राज्य उस राज्य को कहा जाता है जो किसी विशेष धर्म को संरक्षण प्रदान नही करता। राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होता। धार्मिक विश्वास के प्रश्नों में राज्य तटस्थता की नीति का पालन करता है। श्री वेंकटरमण के अनुसार, "धर्म निरपेक्ष राज्य न धार्मिक है न अधार्मिक और न धर्म विरोधी, परन्तु धार्मिक कार्यों और सिद्धान्तों से सर्वथा पृथक् है और इस प्रकार धार्मिक मामलों में पूर्णतः तटस्थ है।"[1] हमारे संविधान का उद्देश्य ऐसे राज्य की स्थापना करना है।

(3) संसदीय व्यवस्था (Parliamentary System)—भारतीय संविधान ने इंगलैंड की शासन प्रणाली के आधार पर केन्द्र तथा राज्यों में संसदात्मक शासन की व्यवस्था की है। संसदात्मक शासन पद्धति में–(क) राज्य के प्रधान की शक्तियाँ नाम मात्र की होती हैं। (ख) शासन की वास्तविक शक्ति मन्त्रिपरिषद में निहित होती हैं। (ग) मन्त्रिपरिषद के सदस्य विधान मण्डल के सदस्य होते हैं तथा उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं। भारत के संविधान में इसी संसदीय पद्धति को अपनाया गया है।

(4) सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य (Sovereign Democratic Republic)—भारतीय संविधान के अनुसार भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है' (India is a sovereign Democratic Republic)

1. "State is neither religious nor irreligious, nor anti-religious but is wholly detached from religious dogmas and activities and thus neutral in religious matters."
—Venkataraman

सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न का अर्थ है कि भारत अपनी गृह नीति तथा विदेश नीति को निर्धारित करने में पूर्णरूप से स्वतन्त्र है। वह किसी बाह्य सत्ता के अधीन नहीं है। वह किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि को मानने के लिये बाध्य नहीं है। भारतीय संविधान के अनुसार भारतीय शासन प्रजातन्त्रात्मक है। सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अन्तिम निर्णय जनता का होगा। भारतीय राज्य गणराज्य इसलिये है, क्योंकि भारत का प्रधान वंशानुगत शासक नहीं है, अपितु वह अप्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति है। राष्ट्रपति नाममात्र का शासक है। वास्तविक शक्ति मंत्रिमण्डल में निहित है जो अपने समस्त कार्यों के लिये संसद के प्रतिनिधि सदन के प्रति उत्तरदायी है।

(5) कठोर एवं लचीलेपन का अद्भुत् समन्वय (A good Combination of flexibility and inflexibility)—भारत का संविधान संयुक्त राज्य अमेरिका के समान न तो अपरिवर्तनशील है और न इंगलैंड के समान परिवर्तनशील है। हमारे संविधान में मध्य मार्ग का अनुसरण किया गया है। संशोधन प्रस्ताव संसद के प्रत्येक सदन के बहुमत से तथा उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पास होना चाहिये। राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के बाद संशोधन कानून का रूप धारण कर लेता है। संविधान के कुछ भागों में संशोधन के लिये आधे राज्यों के विधान-मण्डलों की स्वीकृति अनिवार्य है। अब तक संविधान में 50 संशोधन हो चुके हैं।

(6) भारतीय संविधान देखने में संघात्मक, परन्तु वास्तव में एकात्मक है (Indian Constitution seems to be federal but it is really unitary)—भारत का संविधान संघात्मक आधार पर बनाया गया है, परन्तु यह अन्य संघीय राज्यों के संविधान से भिन्न है। यद्यपि शासन शक्ति का संघ और राज्यों के बीच में पूर्ण विभाजन है, परन्तु राष्ट्रीय एकता के हित में संविधान में ऐसे प्रावधानों की व्यवस्था की गई है जिससे आवश्यकता पड़ने पर इसे एकात्मक बनाया जा सके। संविधान ने संघ सरकार के हाथ में इतनी अधिक शक्तियां केन्द्रित कर दी हैं कि शासन का रूप एकात्मक प्रतीत होने लगता है।

(7) मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)—अमेरिका के संविधान की भांति हमारे संविधान के अन्तर्गत भी नागरिकों को कुछ मूलाधिकार तथा नागरिक स्वतन्त्रतायें प्रदान की गई हैं। ये अधिकार नागरिकों के व्यक्तित्व के विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। भारतीय संविधान के अन्तर्गत नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं—

(1) सम्पत्ति का अधिकार, (2) समता का अधिकार, (3) स्वतन्त्रता का अधिकार, (4) शोषण के विरुद्ध अधिकार, (5) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, (6) सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, (7) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

8) राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy)—भारतीय संविधान के अन्तर्गत कुछ ऐसे सामाजिक, राजनीतिक

तथा आर्थिक सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है जिन्हें राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त कहा जाता है। संविधान में इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन इस उद्देश्य से किया गया है कि देश में राजनीतिक प्रजातन्त्र के साथ-साथ आर्थिक प्रजातन्त्र की भी स्थापना हो सके। ये सिद्धान्त उन आदर्शों का उल्लेख करते हैं, जिनकी पूर्ति राज्य का सर्वोच्च लक्ष्य है। फिर भी इन सिद्धान्तों के पीछे न्यायालय की शक्ति नहीं है। राज्य यदि इन सिद्धान्तों की पूर्ति नहीं करता तो नागरिक न्यायालय की शरण नहीं ले सकते। संविधान के 37वें अनुच्छेद के अनुसार, "नीति निर्देशक तत्वों को किसी भी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, परन्तु फिर भी वे देश के शासन का मूलभूत आधार होंगे और उनका पालन करना राज्यों का नैतिक कर्त्तव्य होगा।"[1]

(9) अस्पृश्यता का अन्त (Untouchability Prohibited)—भारतीय जीवन में अस्पृश्यता हमारे परम्परागत सामाजिक ढांचे की देन है परन्तु हमारे संविधान निर्माताओं ने भारत को एक प्रगतिशील राष्ट्र बनाने के उद्देश्य से संविधान में अस्पृश्यता के किसी भी रूप में आचरण वर्जित कर दिया है। अस्पृश्यता का किसी भी रूप में पालन करना कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध है।

(10) स्वतन्त्र न्यायपालिका (Independent Judiciary) हमारे संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका को कार्यपालिका से स्वतन्त्र रखने की व्यवस्था की है। संघीय व्यवस्था की सफलता तथा नागरिकों को मूल अधिकारों की सुरक्षा प्रदान करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय अपील का अन्तिम न्यायालय है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिये न्यायधीशों की नियुक्ति की व्यवस्था मुख्य न्यायाधीश तथा राष्ट्रपति की सहमति से की जाती है।

(11) वयस्क मताधिकार (Adult Franchise)—संविधान निर्माताओं ने प्रजातन्त्र में जनता का विश्वास उत्पन्न करने के उद्देश्य से वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को अपनाया है। संविाधान के अनुसार प्रत्येक स्त्री, पुरुष जो 21 वर्ष से अधिक आयु का है मत देने का अधिकारी है, परन्तु जो व्यक्ति अपराध, भ्रष्टाचार, मानसिक रोग के कारण मत देने के लिये अयोग्य प्रमाणित हो चुके हैं, वह मत देने के लिये अधिकारी नहीं हैं।

(12) पिछड़े वर्गों के हितों की रक्षा (Safeguards for the Scheduled and Backward Classes)—संविधान में देश की पिछड़ी हुई जातियों के लिये जो शिक्षा के अभाव तथा अन्य असमर्थताओं के कारण देश के शासन में उचित भाग

---

1. "The directive Principles are not justiable by the Court, but they will be the foundations of State Policy and the State will be morally bound to follow them."

—Article 37

नहीं ले सकती हैं, विशेष व्यवस्था की गई है। उनके लिये संसद में कुछ स्थान सुरक्षित रखे गये हैं। उनकी शिक्षा आदि की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है। सरकारी नौकरियों में भी उनके लिये स्थान सुरक्षित रखे गये हैं।

(13) इकहरी नागरिकता (Single Citizenship)—भारतीय संविधान के अन्तर्गत संघीय व्यवस्था को अवश्य अपनाया गया है तथापि अमेरिका की भांति दोहरी नागरिकता की व्यवस्था नहीं की गई है। हमारे संविधान के अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय नागरिक को एक ही नागरिता प्राप्त है। इसका उद्देश्य भावात्मक एकता को सुदृढ़ करना है।

(14) लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना—(The Establishment of a Welfare State)—हमारे संविधान में यद्यपि स्पष्ट रूप से तो यह घोषणा नहीं की गयी है कि भारत एक लोक कल्याणकारी राज्य होगा, परन्तु संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का लक्ष्य यह बताता है कि हमारे संविधान निर्माताओं का लक्ष्य लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना था। संविधान में नीति निर्देशक तत्वों को सम्मिलित करना भी उनके इसी उद्देश्य को प्रकट करता है।

भारतीय संविधान की आलोचना (Criticism of the Indian Constitution)—हमारा नया संविधान एक अच्छा संविधान होते हुये भी आलोचकों की आलोचना से नहीं बच पाया है। कुछ आलोचकों ने भारतीय संविधान की आलोचना इस प्रकार की है—

(1) आलोचकों के अनुसार भारत का नया संविधान एक असंगतिहीन घोटाला (Incongrous Mixture) है। इनमें "कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा" लगाया गया है। सभी देशों के संविधान से अच्छी बातों को ग्रहण करने के प्रयत्न में इसने अपनी मौलिकता ही खो दी है।

(2) आलोचकों का कहना है कि भारत का संविधान न तो संघात्मक कहा जा सकता है और न एकात्मक। इसे न संसदात्मक ही कहा जा सकता है और न अध्यक्षात्मक ही। इसलिये यदि कोई विदेशी हमसे यह पूछे कि तुम्हारे संविधान का क्या रूप है, तो हम उसका स्वरूप बताने में असमर्थ होंगे।

(3) समाजवादियों का मत है कि संविधान तानाशाही प्रवृत्ति का अनुदार लेखमात्र है, क्योंकि संसद का बहुमत वाला दल किसी भी समय तानाशाही स्थापित करने में सफल हो सकता है।

(4) राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों से सम्बन्धित उपबन्ध हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के मस्तक पर धब्बा है। कोई भी सरकार इनका प्रयोग करके देश में तानाशाही स्थापित कर सकती है। जून 1975 में श्रीमती गांधी ने इनका प्रयोग करके देश में नागरिकों के मूल अधिकारों तथा सभी लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं

पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। श्री शंकरराव देव ने कहा था कि "हमारे राष्ट्रपति के पद में भी जर्मनी के संविधान के समान तानाशाही शक्तियां निहित हैं।

(5) भारतीय संविधान का एक दोष यह भी बताया जाता है कि उसके निर्माण में वर्तमान राज्यों के अनुभव से लाभ उठाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। देश में राजनीतिक प्रजातन्त्र की स्थापना की गई है, आर्थिक प्रजातन्त्र की नहीं।

(6) आलोचकों के अनुसार भारतीय संविधान इतना विस्तृत है कि इसमें अनावश्यक तत्वों का समावेश हो गया है।

निष्कर्ष—उपरोक्त आलोचना के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यद्यपि हमारे संविधान में कुछ दोष हैं, परन्तु वे दोष ऐसे नहीं हैं, जिन्हें सरलता से दूर न किया जा सके। हमारा वर्तमान संविधान हमारे राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक है संविधान द्वारा एक ऐसे राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया गया है, जिसमें न्याय, स्वतन्त्रता, समानता आदि मानवतावादी आदर्शों को सम्मिलित किया गया है। भारतीय संविधान के बारे में डा० अम्बेडकर ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था "मैं अनुभव करता हूं कि यह संविधान व्यवहारिक है लचीला है और इसमें युद्ध व शान्तिकाल दोनों में देश की एकता बनाए रखने की सामर्थ्य है। यदि हमारे संविधान के अन्तर्गत स्थिति बुरी होती है तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान बुरा है वरन् हमको यह कहना होगा कि लोग बुरे हैं।"

3 | भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था
(The Federal System In The Indian Constitution)

प्रश्न 5—"भारतीय संविधान का रूप संघात्मक है, लेकिन उसकी आत्मा एकात्मक है।" इस कथन की समीक्षा कीजिये।

"भारतीय संविधान में संघात्मक तथा एकात्मक दोनों व्यवस्थाओं का मिश्रण विश्व में अनोखा है।" वर्णन कीजिये।

"भारतीय संविधान संघात्मक है और एकात्मक भी।" इसकी व्याख्या कीजिये।

'वास्तव में भारत का संविधान एकात्मक है, संघात्मक नहीं।" इस मत की पुष्टि कीजिये।

भारतीय संविधान ने एक संघीय प्रणाली को एकात्मक सरकार का बल (स्थायित्व) प्रदान किया है—पूर्ण विवेचना कीजिये और दृष्टान्त दीजिये।

"साधारणतः भारत का संविधान संघात्मक है, किन्तु आपत्तिकाल में यह एकात्मक रूप धारण कर लेता है।" इसकी विवेचना करो।

The Indian Constitution is federal in Character but unitary in spirit." Discuss.

भारतीय संघ की क्षेत्रीय इकाइयों के सम्बन्ध में इतनी असमानता है कि जितनी किसी भी संघ में नहीं पायी जाती। (सेलिंग हेरीसन)

डा० के० सी० ह्वीयर के इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये कि भारत मुख्यतया एकात्मक राज्य है जिसमें संघीय विशेषतायें नाममात्र की हैं। भारतीय संविधान संघीय कम तथा एकात्मक अधिक है।

भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था
(The Federal Policy in Indian Constitution)

भारतीय संविधान का रूप संघात्मक है या एकात्मक, यह एक विवादपूर्ण विषय है। संविधान निर्माण के समय संविधान निर्माताओं का उद्देश्य एक संघीय संविधान बनाना था, परन्तु उस समय देश में पृथकतावादी तथा विघटनकारी शक्तियां सिर उठाये हुये थीं। अतः उन्हें शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था करनी पड़ी। देश की एकता तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिये तत्कालीन परिस्थितियों में शक्तिशाली केन्द्र एक अनिवार्यता थी। इसलिए संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिए प्रावधानों की व्यवस्था की गई है।

भारतीय संविधान की संघीय विशेषतायें (Federal features of Indian Constitution)—भारतीय संविधान के संघात्मक तत्व इस प्रकार हैं—

(1) लिखित तथा कठोर संविधान (Written and Inflexible Constitution)—संघात्मक संविधान की प्रथम विशेषता यह है कि उसका संविधान लिखित तथा कठोर होता है। भारतीय संविधान में यह दोनों विशेषतायें पूर्ण रूप से पाई जाती हैं। भारतीय संविधान में कोई भी संशोधन संसद के दोनों सदनों के 2/3 बहुमत के बिना सम्भव नहीं है। यह संशोधन की कठोर प्रक्रिया है।

(2) सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court)—संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्यों के झगड़े निपटाने के लिये एक सर्वोच्च संघीय न्यायालय का होना अनिवार्य है। भारत के संविधान ने भी सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की है, जो केन्द्र तथा राज्यों के आपसी झगड़ों का निपटारा कराता है और संविधान की रक्षा करता है। संविधान की व्याख्या करने का अधिकार भी सर्वोच्च न्यायालय को है।

(3) संविधान की सर्वोच्चता (Supremauy of the Constitution)—संघात्मक शासन व्यवस्था में न तो केन्द्र सरकार सर्वोच्च होती है और न इकाइयाँ ही। दोनों ही इकाइयां संविधान द्वारा निर्धारित क्षेत्रों में कार्य करती हैं। दोनों को

संविधान से शक्ति प्राप्त होती है। कोई भी एक दूसरे के क्षेत्र अथवा शक्तियों का अतिक्रमण नहीं कर सकती। कहने का अभिप्राय: यह है कि ऐसी व्यवस्था में संविधान सर्वोच्च होता है तथा उसी के द्वारा निर्धारित क्षेत्रों में केन्द्र तथा इकाइयों की सरकारें कार्य करती हैं। हमारी व्यवस्था में भी सविधान सर्वोच्च है।

(4) केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन (Distribution of Powers between the Centre and the States)—संघात्मक सविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्ति का स्पष्ट विभाजन रहता है। भारत के संविधान में भी केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट रूप से विभाजन किया गया है। शासन के विषयों को तीन सूचियों में बांटा गया है—संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। संघ सूची के विषयों पर संघ सरकार का अधिकार है, राज्य सूची के विषयों पर राज्यों का अधिकार है और समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र तथा राज्य दोनों का अधिकार है।

भारतीय संविधान के एकात्मक लक्षण (Unitary Features of Indian Constitution)—भारतीय संविधान के एकात्मक लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(1) इकहरी नागरिकता (Single Citizenship)—भारतीय सविधान में दोहरी नागरिकता के स्थान पर इकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गई है। हमारे देश के सभी नागरिक भारतीय संघ के नागरिक माने जाते हैं। अमेरिका की संघीय व्यवस्था में नागरिकों को संघ तथा राज्यों की पृथक-पृथक नागरिकता प्राप्त है। संविधान के निर्माण के समय दोहरी नागरिकता के विचार को त्याग देना इस बात का प्रतीक है कि हमारे संविधान निर्माता भारत को अमेरिका अथवा स्विटजरलैंड जैसी संघीय व्यवस्था बनाने के पक्ष में नहीं थे।

(2) शक्तिशाली केन्द्र (Strong Centre)—भारतीय संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का जो विभाजन किया गया है, उसमें केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया गया है। संघ सूची में 90 विषय हैं, राज्य सूची में 66 और समवर्ती सूची में 47 विषय हैं। संघ सूची में उन विषयों को रखा गया है जो महत्वपूर्ण और व्यापक हैं। समवर्ती सूची के विषयों पर भी केन्द्र को प्राथमिकता प्रदान की गई है। संकटकाल में केन्द्र राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकता है। अतः संविधान ने शक्तियों का सन्तुलन केन्द्र के ही पक्ष में रखा है। श्री निवास के अनुसार, "भारतीय संविधान में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है।" (Indian Constitution is noliceably Centripetal)

(3) एक ही न्याय व्यवस्था (Single Judicial System)—संविधान के अनुसार सारे देश में इकहरी ही न्याय व्यवस्था है। भारत के समस्त न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के अधीन हैं। सम्पूर्ण देश के लिये फौजदारी तथा दीवानी की विधि समान है।

(4) राष्ट्रपति राज्यपालों की नियुक्ति करता है (President appoints the Governors)-- संविधान के अनुसार राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त तक राज्यपाल अपने पद पर बने रहते हैं, परन्तु अमेरिका की संघात्मक सरकार में राज्य के राज्यपालों का राज्य की जनता द्वारा निर्वाचन होता है। अतः वे केन्द्र के दबाव में नहीं रहते।

(5) केन्द्र तथा राज्यों के लिये एक ही संविधान (Single Constitution for the Centre and the States)—अमेरिका में राज्यों को अपना अलग संविधान बनाने का अधिकार है. परन्तु भारत में इस प्रकार का अधिकार राज्यों को नहीं है। केन्द्र तथा राज्यों का एक ही संविधान है। राज्यों को संघ से सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार नहीं है।

(6) संकटकाल में शासन का एकात्मक रूप (In Emergency it can be transformed into Unitary Character)—संकटकाल में भारतीय संविधान का संघात्मक रूप एकात्मक में बदला जा सकता है। संकटकाल में राष्ट्रपति देश का शासन अपने हाथ में ले सकता है। इससे राज्यों की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है और संघ का स्वरूप एकात्मक हो जाता है।

(7) राज्य सूची पर केन्द्र का नियन्त्रण (Centre's control over state-list)—संविधान के अनुसार राज्य यदि 2/3 बहुमत से किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो केन्द्रीय संसद को एक वर्ष तक उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(8) नये राज्यों के निर्माण व सीमाओं में परिवर्तन करने का अधिकार केन्द्रीय संसद को है (Union Parliament can create new states and change the boundries of existing states)—संविधान के अनुसार संसद को राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन, नये राज्यों का निर्माण तथा राज्यों के नाम बदलने का अधिकार है।

निष्कर्ष (Conclusion)—यद्यपि उपरोक्त बहुत से लक्षणों से पता चलता है कि भारतीय संविधान का झुकाव एकात्मक शासन की ओर है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि भारत का संविधान संघात्मक नहीं रहा। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो मालूम होगा कि संसार के प्रायः सभी देशों के संघीय संविधानों में केन्द्र की शक्तियां बढ़ाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यहाँ तक की संयुक्त राज्य अमेरिका में जहां राज्यों की स्वतन्त्रता कायम रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है, पिछले दिनों केन्द्र की शक्तियां राज्यों की तुलना में बढ़ गई हैं। ऐसी स्थिति में भारत के संविधान को एकात्मक कहना अनुचित है। भारत का संविधान परिस्थितियों के अनुरूप है। इसमें संघात्मक तथा एकात्मक दोनों संविधानों के गुणों का समावेश है दोनों के मध्य सन्तुलन बनाए रखने का प्रयास किया गया है।

4 मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक तत्व

(Fundamental Rights And Directive Principles of State Policy)

प्रश्न 6—"संवैधानिक उपचारों का अधिकार सारे संविधान की आत्मा और दिल है।" इस कथन की विवेचना कीजिये।

"भारत का संविधान एक हाथ से मौलिक अधिकार प्रदान करता है और दूसरे हाथ से उन्हें छीन लेता है।" इस मत का विश्लेषण कीजिये।

भारतीय संविधान में किस प्रकार तथा किस सीमा तक नागरिकों के व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सम्पत्ति के अधिकार सुरक्षित हैं ?

"मौलिक अधिकार भारतीय संविधान की एक महत्वपर्ण विशेषता है।" भारतीय संविधान में दिये गये मौलिक अधिकारों की विवेचना कीजिये।

भारतीय संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को समानता तथा स्वतन्त्रता के जो अधिकार प्रदान किये गये हैं, उनका स्वभाव तथा क्षेत्र क्या है ?

भारतीय संविधान के अन्तर्गत मुख्य मूल अधिकारों का उल्लेख कीजिये। भारतीय जनता की आकांक्षाओं को ये किस सीमा तक पूरा करते हैं ?

भारत के नये संविधान में नागरिकों को कौन-कौन से मौलिक अधिकार प्राप्त हैं ?

भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकार
(The Fundamental Rights of Indian Citizens)

मौलिक अधिकारों की परिभाषा (Definition of Fuundamental Rights)—प्रायः संसार के सभी लोकतांत्रिक लिखित संविधानों में किसी न किसी रूप में मौलिक अधिकारों का उल्लेख अवश्य पाया जाता है। ये अधिकार नागरिकों के व्यक्तित्व के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिये आवश्यक माने जाते हैं। इन अधिकारों को मौलिक इसलिये कहा जाता है कि इनके अभाव में आधुनिक युग में नागरिकों के व्यक्तित्व का विकास असम्भव प्रतीत होता है। ये नागरिक जीवन की आवश्यक दशायें हैं। लास्की के अनुसार, "अधिकार राज्य की आधारशिला है। ये वे गुण हैं जो राज्य द्वारा शक्ति के प्रयोग को नैतिक रूप देते हैं और ये प्राकृतिक

इस अर्थ में हैं कि अच्छे जीवन के लिए इनका अस्तित्व आवश्यक है।"[1] इन अधिकारों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व संविधान पर रहता है। आधुनिक युग में इन अधिकारों को समाज के लिये आवश्यक माना जाता है। जो राज्य अपने नागरिकों को इन अधिकारों को प्रदान नहीं करता उसे न तो लोकतान्त्रिक राज्य ही कहा जायेगा और न प्रगतिशील ही। इन अधिकारों को प्रदान करने के साथ-साथ इनकी सुरक्षा का प्रबन्ध भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकार (Fundamental Rights of Indian Citizens)—भारतीय संविधान ने नागरिकों को निम्नलिखित मौलिक अधिकार प्रदान किये हैं—

(1) समता का अधिकार (Right to Equality)—भारतीय संविधान के अन्तर्गत सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। राज्य सभी नागरिकों के साथ बिना किसी भेदभाव के समान वर्ताव करेगा। संविधान के अन्तर्गत 5 प्रकार की समानता का उल्लेख है जो निम्न प्रकार है—

(i) विधि के समक्ष समता (Equality before Law)—इसका अर्थ है कानून की दृष्टि से सब नागरिक समान हैं और सभी को बिना किसी भेदभाव के कानून का संरक्षण प्राप्त है।

(ii) भेदभाव का अन्त (No distinctions of caste, class and religion)—संविधान के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूल-वंश, जाति या लिंग के आधार पर भेदभाव का व्यवहार न करेगा।

(iii) राज्य के अन्तर्गत नौकरियों के अवसर की समता (Equality of opportunity)—संविधान के अनुसार राज्य की नौकरियों के लिये सभी को समान अवसर प्राप्त होंगे। धर्म, वंश, जाति, लिंग एवं जन्मस्थान के आधार पर सरकारी नौकारियों में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। सरकारी नौकरियों में नियुक्ति का आधार योग्यता को माना जायेगा।

(iv) अस्पृश्यता का अन्त (Abolition of untouchabilities)—संविधान अनुसार अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई है इसका किसी भी रूप में प्रयोग वर्जित है।

(v) उपाधियों का अन्त (Abolition of Titles)—हमारे नये संविधान ने समानता के सिद्धान्त को अपनाकर सभी प्रकार की उपाधियों का अन्त कर दिया है। केवल शिक्षा या सेना सम्बन्धी उपाधियां दी जा सकती हैं।

समता के अधिकार के अपवाद (Exceptions to the right to equality)—(1) पिछड़ी हुई जातियों के लिये सरकारी नौकरियों में कुछ स्थान

---

1. "Rights are the ground-work of the state. They are the quality which gives to ths exercise of powers, moral character and they are natural rights in the sense that they are essential for good life." —Laski

सुरक्षित कर दिये गये हैं। (2) स्त्रियों तथा बच्चों की सुविधा के लिए राज्य विशेष उपबन्धों का निर्माण कर सकता है। (3) राज्य किसी भी सरकारी सेवा के लिये निवास तथा आयु सम्बन्धी योग्यता का निर्धारण कर सकता है।

(2) स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to liberty)—भारतीय संविधान के अन्तर्गत नागरिकों को प्राप्त मूलाधिकारों में स्वतन्त्रता का अधिकार सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय है। इस अधिकार के अन्तर्गत नागरिकों को निम्नलिखित स्वतन्त्रतायें प्राप्त हैं—

(i) भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता (Freedom of speech and expression)—संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक को भाषण देने तथा अपने विचार प्रकाशित करने का अधिकार है।

(ii) शान्तिपूर्ण एवं निःशस्त्र सभा करने की स्वतन्त्रता (Freedom of peaceful assembly without arms)—प्रत्येक नागरिक संविधान के अनुसार शान्तिपूर्वक सभा कर सकता हैं।

(iii) सम्पत्ति का अर्जन, उसे रखने तथा बिक्री करने की स्वतन्त्रता (Freedom of acquisiton, holding and disposing of Property)—संविधान के अन्तर्गत नागरिकों को इस बात की स्वतन्त्रता प्राप्त है कि वे कानूनी तरीके से सम्पत्ति अर्जित कर सकते हैं तथा उसका विक्रय कर सकते हैं।

(iv) अपराधों के समक्ष दोष सिद्धि की स्वतन्त्रता (Freedom for protection in respect of conviction of certain offences)—संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिये उस समय तक दोषी नहीं ठहराया जायेगा, जब तक कि वह किसी ऐसे कानून का उल्लघन न करे, जो अपराध के समय लागू था।

(v) समुदाय और संघ बनाने की स्वतन्त्रता (Freedom of forming associations and unions) – संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को संघ एवं समुदाय बनाने की पूरी स्वतन्त्रता दी गई है।

(vi) देश के किसी भी भाग में भ्रमण अथवा आवास की स्वतन्त्रता (Freedom of free movement and residence and sttlement in any part of the territory of India)—हमारा संविधान प्रत्येक नागरिक के लिये सम्पूर्ण भारतीय राज्य क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण करने के अधिकार को स्वीकार करता है। संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक देश के किसी भी भाग में बस सकता है।

(vii) इच्छानुकूल व्यवसाय अपनाने की स्वतन्त्रता (Freedom of profession, occupation, Trade or business)—भारतीय नागरिकों को अपनी इच्छानुसार किसी व्यवसाय को अपनाने, कार्य तथा व्यापार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

स्वतन्त्रता के अधिकार के अपवाद (Exceptions to the right to freedom)—स्वतन्त्रता का अधिकार असीमित नहीं है। संसद राष्ट्रीय हित एवं सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए ऐसा कोई भी कानून बना सकती है जो स्वतन्त्रता के अधिकार को सीमित करता हो।

नजरबन्दी कानून (Preventive Detention)—संविधान द्वारा राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह बिना मुकदमा चलाये किसी व्यक्ति को गिरफ्तार या नजरबन्द रख सकने के सम्बन्ध में कानून बना सके। इस सम्बन्ध में संविधान में निम्न व्यवस्थायें की गई हैं—(1) राज्य बिना मुकदमा चलाये किसी व्यक्ति को नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत तीन मास की अवधि तक गिरफ्तार कर सकता है। (2) प्रत्येक नजरबन्द व्यक्ति को अपनी नजरबन्दी कारणों से अवगत होने और उस आदेश के विरुद्ध आवेदन कराने का अधिकार है, परन्तु सरकार यदि सोचे कि कुछ बातें लोकहित के विरुद्ध हैं तो वह उन्हें बतलाने के लिए बाध्य नहीं है। भारतीय संसद ने 25 फरवरी सन 1950 में एक कानून पास किया था, जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को देश की सुरक्षा एवं शान्ति के हित में 1 वर्ष के लिए नजरबन्द किया जा सकता है।

संविधान निर्माण के समय निवारक निरोध अधिनियम को मूलाधिकारों में सम्मिलित करने की तीव्र आलोचना हुई थी। बाद में भी सरकार द्वारा इसका समय-समय पर प्रयोग करने की सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा तीव्र कटु आलोचनायें की गयी हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश महाजन के अनुसार "यह बड़ी अद्भुत बात है कि निवारक नजरबन्दी से सम्बन्धित कानूनों को विश्व के किसी भी लोकतान्त्रिक संविधान में स्थान नहीं दिया गया है, परन्तु हमारे संविधान में इसे मूलाधिकारों के अध्याय में सम्मिलित किया गया है।"

निवारक निरोध अधिनियम कानून की विभिन्न लोगो द्वारा आलोचना के बावजूद हमारे संविधान निर्माताओं ने इसे संविधान में स्थान दिया। डा० अम्बेडकर ने इसके औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा था "यह स्वीकार करना पड़ेगा कि देश की वर्तमान परिस्थितियों में सार्वजनिक व्यवस्था भंग करने वाले व देश की सुरक्षा सेवाओं में अशान्ति उत्पन्न करने वाले लोगों का विरोध करना कार्यपालिका के लिये आवश्यक हो जाता है। मैं समझता हूं कि इस स्थिति में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को राज्य के हितों से अधिक प्राथमिकता नहीं दी जा सकती।"

(5) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against exploitation)—भारतीय संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति का शोषण न करेगा। इस सम्बन्ध में संविधान में निम्नलिखित व्यवस्थायें की गई हैं—

(i) बेगार एवं बलपूर्वक श्रम का अन्त (Abolition of forced labour)—मनुष्यों से बेगार तथा अन्य किसी प्रकार का जबरदस्ती कराया हुआ श्रम वर्जित है।

(ii) मानव व्यापार का अन्त (Prohibition of Human Trade)–स्त्रियों या बच्चों का क्रय-विक्रय अथवा उनका किसी प्रकार का शोषण करना घोर अपराध है।

(iii) कम आयु के बालकों का श्रम निषेध (Minors can not be employed in dangerous work)—14 वर्ष से कम आयु के बच्चे किसी संकट-पूर्ण नौकरी में नहीं लगाये जायेंगे।

शोषण के विरुद्ध अधिकार का अपवाद (Exception to the Right to exploitation)—संविधान के अनुसार, राज्य को यह अधिकार दिया है कि वह सार्वजनिक उद्देश्यों से लोगों को किसी कार्य के लिये विवश कर सके।

(4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to religious Freedom)—संविधान के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को अन्त: करण की स्वतन्त्रता तथा धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक नागरिक अपनी आस्था के अनुसार जिस धर्म का चाहे पालन कर सकता है तथा प्रचार कर सकता है। धार्मिक मामलों में राज्य तटस्थ है।

धार्मिक स्वतन्त्रता के अपवाद (Exception to the right to religious Freedom)—सरकार इस अधिकार पर सार्वजनिक व्यवस्था के हित में किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध लगा सकती है।

(5) सांस्कृतिक एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार—संविधान के अनुसार देश के नागरिकों को अपनी भाषा, संस्कृति एवं लिपि की रक्षा करने का अधिकार है। राज्य द्वारा संचालित किसी संस्था में प्रवेश पाने से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, जाति मूलवंश अथवा भाषा के आधार पर वंचित न किया जायेगा। शिक्षा संस्थाओं को सहायता प्रदान करमें में राज्य किसी भेद-भाव नीति का अनुसरण नहीं करेगा। संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अनुसार सभी अल्पसख्यक वर्ग धर्म अथवा भाषा के आधार पर स्कूल तथा कालिज स्थापित कर सकते हैं। इन शिक्षण-संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं बरतेगा। इस अधिकार के अन्तर्गत सभी धार्मिक अथवा भाषायी अल्पसख्यकों को अपने धर्म तथा भाषा की उन्नति के लिये सांस्कृतिक तथा शिक्षण संस्थायें चलाने का अधिकार प्राप्त है।

साँस्कृतिक एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार के अपवाद (Exception to the cultural and educational rights)—इस अधिकार के सम्बन्ध में सरकार पिछड़ी जातियों के लिए विशेष स्थान सुरक्षित कर सकती है।

(6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to constitutional remedies)—हमारे संविधान ने नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए नागरिकों को न्यायालय की शरण में जाने का अधिकार दिया है। न्यायालय इन अधिकारों की रक्षा के लिये अग्रलिखित आदेश जारी कर सकता है—

(i) बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख (Habeas Corpus Writ)—इस लेख के अन्तर्गत न्यायालय आदेश दे सकता है कि किसी व्यक्ति को अवैध रूप से बन्दी न बनाया जाय।

(ii) परमादेश लेख (Mandamus)—इस लेख के द्वारा न्यायालय किसी संस्था या व्यक्ति को कर्त्तव्य-पालन का आदेश दे सकता है।

(iii) प्रतिषेध लेख (Prohibition)—इस लेख के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय अपने अधीन न्यायालयों को उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर जाने से रोकते हैं।

(iv) उत्प्रेक्षण लेख (Certiorari)—इस लेख के द्वारा बड़े न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों से निरीक्षण हेतु सभी प्रकार के रिकार्ड अपने पास मंगवा सकते हैं।

(v) अधिकार पृच्छा लेख (Quo warranto)—इस लेख के द्वारा न्यायालय किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसने कोई पद या अधिकार को कानून के प्रतिकूल प्राप्त कर रखा है, प्रयुक्त होने से रोकता है। यह लेख न्यायालय अपने आधीन न्यायालयों के लिए जारी कर सकता है। इसमें अधीन न्यायालय को जिसमें मुकदमा चल रहा हो, सभी सूचनाएं भेजने को उच्च न्यायालय में आज्ञा दी जाती है।

मौलिक अधिकारों का स्थगन (Suspension of Fundamental Rights)—संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथापि ये किसी भी रूप में पूर्ण तथा निरपेक्ष नहीं हैं।

(1) संसद को इन कानूनों में उचित कानूनी प्रक्रिया द्वारा संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है।

(2) राष्ट्रपति द्वारा संकटकालीन स्थिति की घोषणा में भी मौलिक अधिकारों को स्थगित किया जा सकता है।

(3) भारतवर्ष के उन भागों में जहाँ सैनिक कानून (Martial Law) लागू कर दिया जाएगा, वहां भी मौलिक अधिकार स्थगित रहेंगे।

मौलिक अधिकारों की आलोचना (Criticism of the fundamental rights)—(1) आलोचकों का कहना है कि हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों का उल्लेख तो व्यापक रूप में कर दिया है, परन्तु उन पर प्रतिबन्ध लगाकर उनकी वास्तविक उपयोगिता को समाप्त कर दिया है। एक हाथ से संविधान मौलिक अधिकार देता है, परन्तु प्रतिबन्धों के द्वारा उन्हें सीमित करके दूसरे हाथ से छीन लेता है।

(2) भारत के संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को स्थगित और सीमित करने की जो व्यवस्था है, उसे प्रजातन्त्रवाद के अनुरूप नहीं माना जा सकता।

(3) कुछ विद्वानों का मत है कि भारत के संविधान में जहाँ मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है, वहां कर्त्तव्यों की व्यवस्था होना भी अनिवार्य था, परन्तु हमारा संविधान कर्त्तव्यों के बारे में मौन है।

(4) मौलिक अधिकारों में समता के अधिकार का उद्देश्य विषमता का निवारण है, परन्तु आलोचकों का कहना है कि आर्थिक समता के अभाव में सारी समता व्यर्थ है।

(5) नजरबन्दी कानून भी मौलिक अधिकारों पर एक बहुत बड़ा प्रतिबन्ध है। संविधान द्वारा नागरिकों को जो स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार दिये गए हैं, उन सब पर इस कानून के द्वारा पानी फेर दिया गया है। इस कानून का प्रयोग सरकार अपने राजनीतिक विरोधियों को गिरफ्तार करने के लिये कर सकती है। आपातकाल में सरकार द्वारा इसका व्यापक रूप से प्रयोग इसका सुबूत है।

(6) हमारे मूलाधिकारों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें अन्य समाजवादी देशों द्वारा अपने नागरिकों को प्रदत्त 'काम करने के अधिकार' (Right to work) को सम्मिलित नहीं किया गया है।

निष्कर्ष—उपरोक्त आलोचनाओं में यद्यपि सत्य का अंश निहित है, परन्तु फिर भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा, यदि नागरिक अपने अधिकारों के लिये जागरुक रहते हैं तो उनके अधिकारों का अतिक्रमण सरलता से नहीं हो सकता। हमारे देशवासियों में लोकतान्त्रिक परम्पराओं तथा प्रवृत्तियों के प्रति आस्था का अभाव है। साथ ही देश में पृथकतावादी, साम्प्रदायिक, एवं विघटनकारी तत्वों के कारण मूलाधिकारों के उन्मुक्त उपभोग की स्वतन्त्रता देने से प्रजातन्त्र के लिये खतरा उपस्थित हो सकता है। इसीलिये इन्हें निरपेक्ष नहीं रखा गया।

7—"भारतीय संविधान में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त वायवीय आदर्शवाद के ढेर हैं। जिन्हें ऐसे व्यक्तियों ने संग्रहित किया है जो दीर्घकालीन स्वातन्त्र्य संघर्ष के पश्चात् स्वप्निल भावातिरेक की स्थिति में थे।" विवेचना कीजिए।

मूल अधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों में अन्तर बताइये। कुछ महत्वपूर्ण नीति-निर्देशक तत्वों का वर्णन करते हुए उनका संवैधानिक महत्व बताइये।

भारतीय संविधान में राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के महत्व का परीक्षण कीजिए।

भारतीय संविधान में नीति-निर्देशक तत्वों के समावेश करने का क्या उद्देश्य था? वे बिल्कुल महत्वहीन हैं?

मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीति-निर्देशक तत्व में क्या अन्तर है? राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का क्या महत्व तथा उपयोगिता है?

The Directive Principles of State Policy in the Constitution of India are heaps of vapoury idealism recorded by those who were in the state of dreamy emotional outbrust after a long drawn struggle for freedom." Discuss

Distinguish between fundamental rights and the directive principles of State Policy. Also examine critically the right of liberty as provided in the constitution.

राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व
(The Directive Principles of State Policy)

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों का अर्थ (Meaning of the Directive Principles of States Policy)—संविधान की प्रस्तावना में वर्णित उद्देश्यों—सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय को मूर्त रूप देने के लिए हमारे संविधान के अन्तर्गत नीति निर्देशक तत्वों की व्यवस्था की गयी है। ये तत्व वस्तुतः संविधान द्वारा राज्य को दिए निर्देश हैं जिनके अनुसार ही राज्य अपनी नीतियों का निर्माण करेगा। राज्य की सफलता तथा असफलता का उत्तरदायित्व इन्हीं सिद्धान्तों पर रहता है। राज्य के इन्हीं सिद्धान्तों को नीति निर्देशक सिद्धान्त कहा जाता है। एल० जी० खेडकर के शब्दों में, "ये सिद्धान्त वे आदर्श हैं, जिनकी पूर्ति का सरकार प्रयत्न करेगी।" संक्षेप में ये सिद्धान्त राज्य के नैतिक आदर्श हैं। इन सिद्धान्तों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं होती है। यह राज्य की इच्छा पर है कि वह इसका पालन करे या न करे, परन्तु फिर भी इनका पालन करना प्रत्येक राज्य का नैतिक कर्त्तव्य है। डा० अम्बेडकर ने इनके प्रयोग के औचित्य पर बल देते हुए कहा था, "संविधान निर्माताओं की यह इच्छा थी कि परिस्थिति अथवा समय कितना भी प्रतिकूल क्यों न हो, इन तत्वों की पूर्ति के लिए सदैव प्रयास करते रहना चाहिए।"

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy)—भारतीय संविधान में राज्य के निम्नलिखित नीति निर्देशक सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है जो निम्नलिखित हैं—

(1) लोक-कल्याण के हेतु न्याय पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना (Establishment of a just social order for common welfare)—संविधान के अनुसार राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयत्न करेगा, जिसमें अधिक से अधिक लोक कल्याण सम्भव हो।

(2) राज्य द्वारा कतिपय आर्थिक नीति के तत्वों का पालन (State shall enforce certain economic principles)—संविधान के अनुसार राज्य विशेष रूप से नीति का निर्देशन निम्नलिखित विषयों की सुरक्षा में करेगा—(1) भारत के

सभी नागरिकों को समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो। (2) समाज के भौतिक साधनों का न्यायसंगत विभाजन हो। (3) उत्पादन व्यवस्था ऐसी हो, जिससे धन का एकत्रीकरण न हो। (4) पुरुषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिये समान वेतन देने की व्यवस्था हो। (5) शैशव तथा किशोरावस्था का शोषण से रक्षण हो।

(3) ग्राम पंचायतों का संगठन—(Organization of Village Panchayats)—संविधान के अनुसार राज्य ग्राम पंचायतों के संगठन का प्रयत्न करेगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियां प्रदान करेगा, जिससे वह स्वायत्त इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।

(4) नागरिकों के काम तथा निःशुल्क शिक्षा (State shall provide free education and employment)—राज्य अपनी आर्थिक क्षमता की सीमा के अन्दर ऐसी व्यवस्था करेगा, जिससे शारीरिक रूप से सक्षम सभी व्यक्तियों को योग्यतानुसार काम मिल सके। सभी व्यक्तियों को निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था और वृद्धावस्था में तथा बीमारी के समय में राज्य द्वारा सहायता प्रमुख हैं।

(5) कार्य तथा प्रसूति सहायता के लिये न्यायोचित स्थितियों का उपबन्ध (Prvision for maternity facilities)—राज्य कार्य तथा प्रसूति सहायता के लिये न्यायोचित एवं मानवीय स्थितियों को सुरक्षित करने का प्रयत्न करेगा।

(6) श्रमिकों के लिये जीवन यापन के लिये उचित पारिश्रमिक (Proper remuneration for Workes)—राज्य को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि प्रत्येक श्रमजीवी को इतना वेतन अवश्य मिलना चाहिये कि वह अपना जीवन आराम से व्यतीत कर सके तथा अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके।

(7) नागरिकों के लिये समरूप व्यवहार संहिता (Equal laws for all citizens)—राज्य समस्त भारतीय क्षेत्र के नागरिकों के लिये समरूप व्यवहार संहिता सुरक्षित करने का प्रयत्न करेगा। इसका तात्पर्य यह है कि समस्त भारत के नागरिकों के लिये नियम समान होंगे चाहे वे किसी धर्म जाति अथवा सम्प्रदाय के हों।

(8) शिशुओं के लिये निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा (Free education for children)—राज्य 14 वर्ष तक की आयु के बालकों के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

(9) जनसाधारण के स्वास्थ्य को सुधारने का प्रयत्न (Provision for the Protection of Public Health)—संविधान के द्वारा राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि राज्य अपने नागरिकों का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिये तथा नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये मादक पदार्थों पर नियन्त्रण लगाएगा तथा लोगों का स्वास्थ्य सुधारने के लिये विभिन्न रोगों की रोकथाम का प्रबन्ध करेगा।

(10) कृषि तथा पशुपालन का संगठन वैज्ञानिक आधार पर (Scientific basis of Agriculture and animal husbandary)—राज्य कृषि तथा पशु-पालन का संगठन नई वैज्ञानिक पद्धति पर करने का प्रयत्न करेगा। दूध देने वाले पशुओं तथा कृषि योग्य पशुओं के वध को रोकने का तथा उनकी नस्ल की उन्नति का प्रयास करेगा।

(11) राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों तथा अन्य इसी प्रकार की वस्तुओं का संरक्षण (Protection for historical places and National memorials)—राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि वह राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों तथा अन्य प्रकार की वस्तुओं के संरक्षण की व्यवस्था करे।

(12) कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का पृथक्करण (Separation of Executive and Judiciary)—राज्य न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने का प्रयत्न करेगा। इनका एक दूसरे से पृथक् होना नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये अनिवार्य है।

(13) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं विश्व बन्धुत्व के लिये प्रयासरत् रहना (To strive for International Peace and Brotherhood)—राज्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निम्नलिखित लक्ष्यों की पूर्ति का प्रयास करेगा—

(i) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापना।
(ii) राष्ट्रों में न्यायपूर्ण एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध रखना।
(iii) अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना।
(iv) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने के लिये प्रोत्साहन देना।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों का कार्यान्वयन (The directive principles of states Policy into action)—भारत के वर्तमान संविधान को लागू हुये लगभग 32 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस दौरान सरकार ने अनेक कानून बनाये हैं जिनके माध्यम से इन नीति निर्देशक तत्वों को कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया है। आर्थिक नीति सम्बन्धी सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये अनेक राज्यों में जमींदारी उन्मूलन कानून, न्यूनतम वेतन कानून, बच्चों से शारीरिक श्रम न कराने के लिये अनेक कानून बनाये जा चुके हैं। अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों के कल्याण के लिये सरकार ने अनेक योजनायें कार्यान्वित की हैं। सामाजिक एव शिक्षा विषयक सिद्धान्तों को भी व्यावहारिक रूप प्रदान करने का पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। शासन सम्बन्धी नीति के निर्देशक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर प्राय: सभी राज्यों में ग्राम पंचायतों को गतिशील बनाया गया है तथा उन्हें अधिकार प्रदान किये गये हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सरकार नीति निर्देशक तत्वों को व्यावहारिक रूप देने के लिए संकल्पशील है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों को हमारे संविधान निर्माताओं ने बहुत सोच विचार करके संविधान में सम्मिलित किया था। नीति निर्देशक तत्वों के महत्व को स्पष्ट करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश कानिया ने कहा है "राज्य के नीति निर्देशक तत्व संविधान का अंग है, इसलिए वे केवल बहुमत दल की इच्छामात्र नहीं है, बल्कि ये तत्व तो सारे राष्ट्र की बुद्धि के प्रतीक हैं, जिनको उस संविधान सभा द्वारा प्रकट किया गया, जिनको सारे देश के लिए सर्वोच्च कानून बनाने की आज्ञा दी गयी थी।"[1]

नीति निर्देशक तत्वों का मूल्यांकन (Evaluation of the Directive Principles of State Policy)—आलोचकों का कहना है कि राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त कोरे आदर्श मात्र हैं, क्योंकि इनकी पूर्ति के लिये न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया जा सकता। इसलिये संविधान में इनका उल्लेख करना एक प्रकार का दिखावा है। प्रो० के० टी० शाह के अनुसार, "ये सिद्धान्त उस चैक के मानिन्द हैं जिसका भुगतान केवल बैंक समर्थ होने की स्थिति में ही कर सकता है।" वास्तव में राज्य तभी इन सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत कर सकता है, जबकि वह स्वयं आर्थिक दृष्टि से मजबूत हो। ये सिद्धान्त पवित्र घोषण (Pious declaration) मात्र हैं। ये निर्देशक तत्व उद्देश्य की घोषणा तो करते हैं, परन्तु इनकी प्राप्ति के साधनों का कहीं उल्लेख नहीं है।

यह सही है कि इन नीति निर्देशक सिद्धान्तों के पीछे न्यायालय की शक्ति नहीं है तथापि इनके संवैधानिक महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। डा० अम्बेडकर ने इनके महत्व को स्पष्ट करते हुये संविधान सभा में कहा था, "मेरे विचार से निर्देशक सिद्धान्तों का बहुत महत्व है, क्योंकि वे इस तथ्य को प्रतिष्ठित करते हैं कि हमारा लक्ष्य आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना है। हम यह नहीं चाहते थे कि संविधान में उल्लिखित विभिन्न व्यवस्थाओं के माध्यम से केवल संसदीय प्रणाली की स्थापना हो जाये और हमारे आर्थिक आदर्श तथा सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई निर्देश न रहे। इसीलिये हमने जानबूझकर निर्देशक तत्वों को अपने संविधान में स्थान दिया है।"

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त एवं मौलिक अधिकारों में अन्तर (Distinction between the Directive Principles and the Fundamental rights)—राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों एवं मौलिक अधिकारों में अग्रलिखित

—

1. "The directive principles do not represent a temporary will of majority but the deliberate, wisdom of the nation expressed through the constituent assembly entrusted writh the duty of setting the paramount and permanent law of the country."
—Chief Justice Kania

(1) मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की राज्य द्वारा गारण्टी दी गई है। सरकार यदि इनका अतिक्रमण करती है तो नागरिक इनकी रक्षा के लिये उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकते हैं परन्तु नीति निर्देशक सिद्धान्तों की सुरक्षा की ऐसी कोई गारण्टी नहीं है। यदि राज्य इन पर अमल न करे तो उसे बाध्य नहीं किया जा सकता। इन पर अम्ल करना राज्य का नैतिक कर्त्तव्य है।

(2) नीति निर्देशक सिद्धान्तों का क्षेत्र मूल अधिकारों की तुलना में अधिक व्यापक है। इनमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख है।

(3) मौलिक अधिकार नागरिकों की वैधानिक माँग है, परन्तु नीति निर्देशक सिद्धान्त वैधानिक माग नहीं हैं।

(4) मौलिक अधिकारों के माध्यम से देश में राजनीतिक स्वतन्त्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु नीति निर्देशक सिद्धान्तों के द्वारा आर्थिक स्वतन्त्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

(5) प्रो० ग्लेडहिल ने दोनों का अन्तर बतलाते हुये लिखा है कि, "मौलिक अधिकार वे निषेध आज्ञायें हैं जो राज्य को कुछ कार्य करने से रोकती हैं, नीति निर्देशक सिद्धान्त राज्य को कुछ निश्चित कार्य करने के लिये निश्चित आदेश हैं।"[1]

5 संघीय कार्यपालिका : राष्ट्रपति एवं प्रधानमन्त्री

(The Union Executive : President and the Prime Minister)

प्रश्न 8—भारत के राष्ट्रपति के अधिकारों एवं कार्यों की विवेचना कीजिये।

"भारत का राष्ट्रपति एक उदास शून्यमात्र है।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

1. "The fundamental rights are injunction to prohibit the government form doing certain things, the directive principles are affirmative instructions to the government to do certain things." —Allen Gledhill

"भारत का राष्ट्रपति यदि चाहे तो राज्य का केवल एक वैधानिक प्रमुख रहने की अपेक्षा एक वास्तविक शासक बन सकता है।" इस कथन के दृष्टिकोण से भारत के राष्ट्रपति के अधिकारों की आलोचना करो।

राष्ट्रपति का चुनाव कैसे होता है? उसकी वैधानिक शक्तियाँ क्या हैं? क्या राष्ट्रपति सदैव अपने मंत्रि-मंडल के परामर्श के अनुसार कार्य करने को बाध्य है? यदि ऐसा है तो उसके पद का महत्व किसमें निहित है?

"राष्ट्रपति का पद प्रभाव का है, शक्ति का नहीं" उक्त कथन की व्याख्या कीजिये।

"हमारा राष्ट्रपति राज्य का प्रधान है, कार्यकारिणी का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधि है, पर राष्ट्र पर शासन नहीं करता।" मीमांसा कीजिये।

"The President of India is a liberal zero" discuss critically this statement ?

We have not given our President any real power but we have made his position one of the great authority and dignity" Discuss

भारत का राष्ट्रपति
(President of India)

संविधान के अनुसार संघ की कार्यकारिणी का प्रधान राष्ट्रपति है। परन्तु देश में संसदात्मक व्यवस्था होने के कारण शासन की वास्तविक शक्ति मंत्रि-परिषद के हाथों में है। राष्ट्रपति संवैधानिक प्रमुख (Constitutional Head) है। उसकी समस्त शक्तियों का प्रयोग मंत्रि परिषद् के द्वारा किया जाता है। वह मंत्रि परिषद के परामर्श के अनुसार ही कार्य करता है। वह मंत्रि परिषद का परामर्श मानने के लिये बाध्य है।

राष्ट्रपति पद के लिये आवश्यक योग्यतायें (Qualifications for the Office of the President)—संविधान में राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के होने के लिए निम्न योग्यतायें आवश्यक हैं—

(1) भारत का नागरिक होना चाहिये, (2) कम से कम 35 वर्ष की उम्र पूरी कर चुका हो, (3) लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो, (4) संघ सरकार, राज्य सरकार या स्थानीय सरकार के अन्तर्गत किसी लाभ के पद पर कार्य न कर रहा हो। यदि कोई व्यक्ति सरकार के अन्तर्गत लाभ के पद पर है तो वह अपने पद से त्यागपत्र देकर ही निर्वाचन में खड़ा हो सकता है। उल्लेखनीय कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, गवर्नर और केंद्रीय अथवा राज्य के मंत्रियों के पदों को लाभ का पद नहीं माना गया है। अतः सभी विना त्याग पत्र दिये हो निर्वाचन में उम्मीदवार हो सकते हैं।

राष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of the President)—भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन परोक्ष रूप से होता है। यह निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचक मण्डल

(Electoral College) द्वारा होता है। जिसमें (1) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और (2) राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य सम्मिलित होते हैं।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संसद सदस्यों के कुल मतों के बराबर ही राज्य विधान सभाओं के सदस्यों को मत देने का अधिकार दिया गया है जिससे कि अकेली संसद या अकेली राज्य विधान सभायें ही किसी एक दलगत उम्मीदवार को राष्ट्रपति निर्वाचित करने में सफल न हो सकें। राष्ट्रपति का निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के माध्यम से (Proportional Representation System) द्वारा होता है। यह निर्वाचन गुप्त-मतदान द्वारा होता है। राष्ट्रपति के निर्वाचन में सफलता प्राप्त करने के लिये किसी उम्मीदवार को निश्चित संख्या में मत प्राप्त करने होते हैं, इसे न्यूनतम कोटा कहते हैं। इसको निकालने के लिये निम्नलिखित फार्मूला अपनाया जाता है—

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये मतों की संख्या}}{\text{निर्वाचन में खड़ा होने वाले उम्मीदवारों की संख्या}} + 1$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन की एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि विभिन्न राज्य विधान सभाओं के सदस्यों की मत संख्या बराबर-बराबर नहीं होती है। प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या उसी अनुपात से निर्धारित की जाती है जितनी आबादी का वह सदस्य प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक सदस्य को राष्ट्रपति के निर्वाचन में कितने मत देने हैं अर्थात् उसके एक मत का मूल्य कितने मतों के बराबर है इसका निश्चय करने के लिये निम्नलिखित फार्मूला अपनाया जाता है—

किसी भी राज्य की विधान सभा के एक सदस्य की मत संख्या

$$= \frac{\text{उस राज्य की जनसंख्या}}{\text{उस राज्य की विधान सभा में कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या}} \div 1000$$

संसद के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य की मत संख्या (Value of the Vote of the elected member of Parliament)—राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यों के कुल मतों और संसद के कुल मतों की संख्या बराबर-बराबर रखी गई है। यह इसलिये कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद और राज्यों का प्रभाव एक समान रहे इसलिये संविधान में व्यवस्था की गई है कि, "संसद के प्रत्येक सदन के निर्वाचित सदस्यों के लिये नियत समस्त संख्या को संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की समस्त संख्या से भाग देने पर आये।"

सन् 1962 ई० तक तो प्रायः ऐसा था कि कांग्रेस का केन्द्र तथा राज्यों ... प्रबल बहुमत होने के कारण कांग्रेसी प्रत्याशी प्रथम मतगणना में बहु...क प्रतिनिधि के

हो जाता था, परन्तु 1967 के आम चुनाव के पश्चात् स्थिति एकदम बदली तथा कांग्रेस को केंद्र तथा कई राज्यों में स्पष्ट महुमत न मिल सका। सन्1 967 में कांग्रेस ने डॉ० जाकिर हुसैन को इस पद के लिये अपना प्रत्याशी घोषित किया। डॉ जाकिर हुसैन के प्रतिद्वन्द्वी के रूप से सभी विरोधी दलों ने संयुक्त रूप से के० सुब्बाराव (सर्वोच्च न्यायधीश) को खड़ा किया। यद्यपि जाकिर हुसैन प्रथम मत-गणना में ही विजयी हो गये, परन्तु उन्हें इतना बहुमत नहीं मिला जितना कि प्रायः कांग्रेस उम्मीदवार को मिला करता था। जाकिर हुसैन की मृत्यु के पश्चात् सन् 1969 में पुनः आम चुनाव हुये। कांग्रेसी प्रत्याशी के रूप में श्री संजीवा रेडडी खड़े हुए तथा श्री वी० वी० गिरि स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में श्रीमती गांधी तथा उनके सहयोगियों ने श्री वी० वी० गिरि को अपना समर्थन दिया। श्री वी० वी० गिरि दूसरी मतगणना में विजयी हुए। इसके पश्चात् सन् 1974 में पुनः राष्ट्रपति पद हेतु चुनाव हुआ। इस चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशी श्री फखरुद्दीन अली अहमद भारी बहुमत से विजयी हुए। 1977 में श्री संजीवा रेड्डी छटवें राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। 1982 में ज्ञानी जैलसिंह सातवें राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

राष्ट्रपति का वेतन, भत्ते और अन्य सुविधायें (Salary and Allowances)—संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को दस हजार रुपये मासिक वेतन देने की व्यवस्था की गई है। उसे वे भत्ते तथा अन्य सुविधायें भी मिलेंगी जिनका निर्धारण समय-समय पर संसद करेगी। राष्ट्रपति को रहने के लिए सरकारी निवास स्थान मिलता है जिसे 'राष्ट्रपति भवन' कहते हैं। अवकाश ग्रहण करने के बाद उसे 15 हजार रु० वार्षिक पेंशन की भी व्यवस्था की गयी है। राष्ट्रपति के वेतन और भत्ते भारत की संचित निधि पर पारित हैं जिनमें उसके कार्यकाल में कमी नहीं की जा सकती है।

उन्मुक्तियाँ (Immunities)—राष्ट्रपति का पद केवल सम्मान एवं गौरव का है वरन् कानूनी विशेषाधिकारों से भी मुक्त है। अपने पद के कर्त्तव्यों का निर्वहन करते समय उसे किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। उस पर न तो कोई फौजदारी कार्यवाही की जा सकती है और न उसकी गिरफ्तारी वारण्ट जारी किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति का उस पर कोई दावा भी है तो दो माह की लिखित सूचना देने के बाद ही उसके विरुद्ध दीवानी कार्यवाही की जा सकती है।

राष्ट्रपति का कार्यकाल (Tenure of Office)—संविधान के द्वारा राष्ट्रपति का कार्य काल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है। राष्ट्रपति इससे पूर्व स्वेच्छा से [illegible]गपत्र भी दे सकता है और उसे संसद द्वारा महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा पदच्युत [illegible]या जा सकता है। उसका पद किसी कारण से रिक्त हो जाता है तो नये [illegible]ति का निर्वाचन पहले राष्ट्रपति के शेष काल के लिए न होकर 5 वर्ष के लिए [illegible]। रिक्त स्थान की पूर्ति 6 माह के भीतर नये निर्वाचन द्वारा हो जानी

चाहिये। पूर्ति होने तक उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का कार्य सम्भालता है और उसे राष्ट्रपति का वेतन मिलता है। उपराष्ट्रपति इस कार्य के लिये उपलब्ध न हो तो संसद कोई विधि बनाकर इसका प्रबन्ध करती है। पाँच वर्ष पूरे हो जाने पर भी वह उस समय तक अपने पद पर रहेगा जब तक कि नव-निर्वाचित राष्ट्रपति अपने पद को ग्रहण न कर ले।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ (Powers of President)—संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति का पद अत्यन्त प्रतिष्ठित एवं सम्मानित बनाया गया है। संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियां संवैधानिक रूप से उसी के हाथ में हैं। इन शक्तियों का प्रयोग वह या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के माध्यम से कर सकता है। राष्ट्रपति की शक्तियां एवं अधिकारों को निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियां (Executive Powers)—राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियां निम्नलिखित हैं—

(i) हमारे वर्तमान संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति ही प्रधानमंत्री परामर्श से मंत्रि-मंडल के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है।

(ii) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, उच्चन्यायालय के न्यायाधीश, राज्यों के राज्यपाल, संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों के केंद्र में एटार्नी जनरल, भारत के महालेखा परीक्षक तथा विदेशों में राजदूतों की नियुक्तियां भी राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती हैं।

(iii) वित्तीय आयोग, निर्वाचन आयोग, राज्य भाषा आयोग—अंतर्राज्यीय परिषद, पिछड़े वर्गों की दशा सुधारों आयोग की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है।

(iv) राष्ट्रपति संघीय सेनाओं का सर्वोच्च कमाण्डर होता है—सेना के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति उसी के द्वारा की जाती है। वह युद्ध की घोषणा कर सकता है और अन्य देशों के साथ संधियों की घोषणा भी उसी के द्वारा की जाती है।

(v) संविधान के अनुसार भारतीय सरकार के समस्त कार्य राष्ट्रपति के नाम में किये जाते हैं।

(vi) राष्ट्रपति उपरोक्त अधिकारियों में कुछ को छोड़कर जिन्हें विशेष प्रक्रिया के द्वारा हटाया जाता है, शेष को स्वयं हटा सकता है।

(vii) दूसरे देशों के राजदूतों के प्रमाण-पत्रों को देखने के पश्चात् उनकी पुष्टि राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है।

(viii) किसी भी राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा के पश्चात् उस राज्य का शासन सीधे राष्ट्रपति के अधीन हो जाता है। राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल उस राज्य के शासन का संचालन करता है।

(ix) राष्ट्रपति अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का प्रतिनिधित्व करता है। विदेशों से आये राजदूतों का स्वागत करता है तथा उनके प्रमाण-पत्र को स्वीकार करना राष्ट्रपति का ही कार्य है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा राष्ट्र की भावनाओं तथा आकांक्षाओं का प्रतीक है।

व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियाँ (Legislative Powers)—राष्ट्रपति को व्यवस्थापन सम्बन्धी अनेक अधिकार प्राप्त हैं, जो इस प्रकार हैं—

(i राष्ट्रपति राज्य सभा के 12 सदस्यों को मनोनीत करता है। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार वह दो एंगलो इण्डियन सदस्यों को भी लोक सभा के सदस्य के रूप में मनोनीत कर सकता है।

(ii) संसद द्वारा स्वीकृत विधेयक उस समय तक कानून का रूप धारण नहीं कर सकता, जब तक कि राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति न दे दे। वित्तीय सम्बन्धी विधेयकों के अतिरिक्त वह अन्य विधेयकों को पुनर्विचार के लिये लौटा सकता है, परन्तु यदि संसद उसे दूसरी बार पास कर देती है तब वह उस पर अपनी स्वीकृति देने के लिये बाध्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी विधेयक का उद्देश्य भारत के वर्तमान राज्यों की सीमाओं व क्षेत्रों में परिवर्तन करना या कोई नया राज्य बनाना हो तो उसे संसद में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति लेना अनिवार्य है।

(iii) राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन में किसी भी समय भाषण दे सकता है। वह किसी भी सदन को किसी भी समय आमन्त्रित कर सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर किसी भी सदन को स्थगित कर सकता है। वह संसद को किसी भी विषय पर विचार करने के लिये सन्देश भेज सकता है। यदि आवश्यकता हो तो वह लोक सभा को भंग करके नये निर्वाचन का आदेश दे सकता है। वह दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है।

(iv) ऐसी दशा में जब संसद का अधिवेशन न हो रहा हो, राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने का अधिकार है। इस प्रकार के अध्यादेश संसद के कानून के समान प्रभावशाली होंगे। संसद का अधिवेशन शुरू होने के 6 सप्ताह तक इस प्रकार के अध्यादेश जारी रहेंगे। संसद चाहे तो इस अवधि से पूर्व भी इन्हें रद्द कर सकती है। राष्ट्रपति यदि स्वयं भी चाहे तो इन अध्यादेशों को वापिस ले सकता है।

(v) यदि राज्य किसी व्यापार आदि पर प्रतिबन्ध लगाना चाहता है, तब उसे राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेनी पड़ती है। राज्य द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये पेश किये जाने वाले विधेयक अथवा कुछ विशिष्ट प्रकार के कर लगाने वाले विधेयकों पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति अनिवार्य है। संकटकाल में राज्य के विधान मण्डलों के समस्त अधिकार राष्ट्रपति अपने हाथ में लेकर भारतीय संसद को सौंप सकता है।

(3) राष्ट्रपति की वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers of the President)—संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को निम्नलिखित वित्त सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हैं—

(i) राष्ट्रपति को प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में आगामी वर्ष के लिये बजट मन्त्रिपरिषद् के द्वारा संसद में प्रस्तुत कराने का अधिकार प्राप्त है।

(ii) राष्ट्रपति नये कर लगाने की सिफारिश करता है तथा अनुदान की मांग का कोई भी प्रस्ताव राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद में पेश नहीं किया जा सकता।

(iii) आकस्मिक निधि पर भी राष्ट्रपति का नियन्त्रण होता है। इस निधि से वह किसी खर्चे के लिये संसद की स्वीकृति के पूर्व ही धन-राशि प्रदान कर सकता है।

(iv) संघ तथा राज्यों के बीच आय का वितरण करना भी राष्ट्रपति का कार्य है।

(v) राष्ट्रपति को प्रति पांचवें वर्ष एक वित्त आयोग की नियुक्ति करने का अधिकार है।

(4) राष्ट्रपति की न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers of the President)—राष्ट्रपति की न्यायिक शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) क्षमादान करने का अधिकार (Right to Pardon)—राष्ट्रपति निम्न दशाओं में अपराधी के दण्ड को क्षमा कर सकता है- (1) जब दण्ड किसी सैनिक न्यायालय ने दिया हो। (2) जब अपराधी को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। (3) जब अपराधी को संसद के कानून का उल्लघन करने के लिये दण्ड दिया गया हो।

(ii) न्यायाधीशों को नियुक्त एवं पदच्युत करने का अधिकार (Right to appoint and dismiss the Judges)—राष्ट्रपति सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है तथा संसद के दोनों सदनों द्वारा प्रार्थना करने पर सर्वोच्च तथा किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को पदच्युत कर सकता है।

(5) राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers of the President)—संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ अत्यन्त व्यापक हैं। संविधान में तीन प्रकार के संकटों का उल्लेख किया गया है—(1) युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न संकट। (2) राज्यों में वैधानिक शासन की असफलता से उत्पन्न संकट। (3) वित्तीय संकट। राष्ट्रपति उपरोक्त तीनों संकटों का पूर्वाभास होने पर संकटकाल की घोषणा कर सकता है। संकटकालीन घोषणायें 2 माह तक चलती हैं, जब तक कि संसद इन्हें स्वीकृति न प्रदान कर दे। यदि इस समय लोक सभा भंग होगी तो संकटकालीन घोषणा की

स्वीकृति राज्य सभा के सम्मुख रखी जायेगी। संकटकालीन घोषणा के समय देश का शासनतन्त्र राष्ट्रपति के आधीन होगा।

राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति (Constitutional Position of the President)—संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति की स्थिति अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। संविधान के अन्तर्गत ऐसा कोई भी अनुच्छेद नहीं है जो उसकी शक्तियों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाता हो। संवैधानिक दृष्टि से तो उसकी स्थिति एक तानाशाह के समान है।

संविधान के अनुच्छेद 53 (1) की व्यवस्था के अनुसार, "संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा।" इस अनुच्छेद के द्वारा राष्ट्रपति को स्वयं शासन करने का अधिकार प्राप्त है। यदि वह शासन करता है तो यह संविधान का उल्लंघन नहीं है, इस प्रकार उस पर महाभियोग भी नहीं लगाया जा सकता है। इसलिये डा० वी० एम० शर्मा इस अनुच्छेद की गम्भीरता का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं कि, "अनुच्छेद 53 (1) के अनुसार, यदि राष्ट्रपति चाहे तो वह वास्तविक शासक बन सकता है।"

संविधान का अनुच्छेद 74 (1) कहता है कि "राष्ट्रपति को अपने कार्यों का सम्पादन करने में सहायता और परामर्श देने के लिये एक मन्त्रि-परिषद् होगी, जिसका प्रधान, प्रधानमन्त्री होगा।" स्पष्ट है कि यह अनुच्छेद भी राष्ट्रपति को मन्त्रि-परिषद् का परामर्श मानने के लिये बाध्य नहीं करता है। श्री डी० एन० बनर्जी का कहना है कि, "क्या राष्ट्रपति को अनुच्छेद 74 (1) के उपबन्ध मानने पर बाध्य किया जा सकता है? क्या राष्ट्रपति प्रत्येक स्थिति में अपने मन्त्रियों के परामर्श मानने को बाध्य है? मैं कहता हूं कि ऐसा नहीं।" ग्लैडहिल ने भी इसी प्रकार का मत प्रकट करते हुये कहा कि, "इस बात की पर्याप्त सम्भावना है कि राष्ट्रपति संविधान का उल्लंघन हुये बिना तानाशाह बन बैठे।"

संविधान प्रारूप समिति के वैधानिक सलाहाकार श्री बी० एन० राव के मतानुसार, "संविधान राष्ट्रपति के लिये ऐसा कोई वैधानिक उत्तरदायित्व निश्चित नहीं करता कि वह मन्त्रियों की मन्त्रणा के आधार पर कार्य करेगा। वह किस सीमा तक ऐसा करने के लिये बाध्य होगा, परम्परा का विषय है।"

उपर्युक्त अनुच्छेदों के आधार पर तथा उन शक्तियों के आधार पर जो अमेरिकन राष्ट्रपति की भांति भारतीय राष्ट्रपति को प्राप्त हैं, विचारकों का मत यह है कि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान मात्र नहीं है। भारत के राष्ट्रपति को अमेरिकन राष्ट्रपति की भांति संसद् को कानून विषय सम्बन्धी सन्देश भेजने का अधिकार है। वह धन विधेयकों को छोड़कर अन्य विधेयकों को संसद् के पुनर्विचार के लिये लौटा सकता है और उन पर स्वीकृति देने से मना भी कर सकता है। स्मरणीय है कि ऐसी शक्तियाँ ब्रिटेन के सम्राट या सम्राज्ञी को प्राप्त नहीं हैं।

इसके अलावा ब्रिटेन के सम्राट के आदेश पर सम्बन्धित मन्त्री के हस्ताक्षर आवश्यक हैं, परन्तु भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं है। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति मन्त्रियों की इच्छा के विरुद्ध भी कार्य कर सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि भारत के राष्ट्रपति की स्थिति पूर्ण रूप से ब्रिटिश सम्राट के समान नहीं है। वह एक निर्वाचित राज्याध्यक्ष है। एक सीमा तक वह मन्त्रि-परिषद् पर अपने प्रभाव का उपयोग भी कर सकता है।

राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति (Actual Position of the President)

संवैधानिक दृष्टि से तो भारत के राष्ट्रपति की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ है। सविधान का ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जो उसे अपनी निर्बाध शक्ति के प्रयोग से रोकता हो, परन्तु सामान्यतया भारतीय राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार ही कार्य करता है। हमारे सविधान के लागू होने के पश्चात् 30 वर्ष का विगत अनुभव यह बताता है कि 'भारतीय राष्ट्रपति संवैधानिक प्रमुख है, कार्यपालिका प्रमुख नहीं।' (The President of India is the Constitutional Head; Not the Executive head) राष्ट्रपति की शक्तियों को लेकर समय-समय पर विवाद तो उठाया गया परन्तु यह विवाद सारहीन ही सिद्ध हुआ।

राष्ट्रपति भारतीय संविधान के अन्तर्गत मनमानी नहीं कर सकता (President of India cannot act arbitrarily)—केवल अनुच्छेदों के कानूनी दृष्टिकोण के आधार पर विश्लेषण से राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति का बोध नहीं हो पाता है। राष्ट्रपति की स्थिति जानने का मुख्य आधार वह शासन प्रणाली है, जिसकी स्थापना सविधान के द्वारा की गई है। सविधान सभा में डा० अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि, "राष्ट्रपति की स्थिति वही है, जो ब्रिटिश संविधान में सम्राट की है। वह राज्य का प्रधान है न कि कार्यपालिका का। वह राष्ट्र का प्रतिनिधि है, परन्तु शासक नहीं। वह राष्ट्र का प्रतीक है प्रशासन में उसकी स्थिति मुद्रा पर अंकित शोभा चिन्ह के समान है जो राष्ट्र के निर्णयों की घोषणा करता है।"[1] डा० राजेन्द्र प्रसाद ने भी संविधान सभा में यही कहा था कि, "यद्यपि संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है कि जिसके कारण राष्ट्रपति मन्त्रि-मण्डल के परामर्श को मानने के लिए बाध्य हो फिर भी आशा की जाती है कि जैसे इगलैंड का सम्राट् सदैव अपने मन्त्रियों के परामर्श को मानता है वैसी ही परम्परायें इस देश में उत्पन्न हो जायेंगी और राष्ट्रपति सभी मामलों में केवल नाम मात्र का शासक रहेगा।"

---

1. "The president occupies the same position as the king under the English constitution. He is the head of the state but not of the Executive. He represents the nation but does not rule the nation, he is the symbol of the nation. His place in the administration is that of a ceremonial device by which the nation's decisions are made known." —Dr. Ambedkar

पं० नेहरू ने संविधान सभा में कहा था कि, "हमें सरकार की इस मन्त्रि-मण्डलीय विशेषता पर बल देना पड़ता है कि वास्तविक शक्ति मन्त्रि-मण्डल और संसद में निहित है, कि राष्ट्रपति में। हमने अपने राष्ट्रपति को वास्तविक शक्तियाँ प्रदान नहीं की हैं, वरन् हमने उसके पद को गौरव एवं प्रभुत्व का बनाया है।"

टी० टी० कृष्णमाचारी ने कहा था कि, "उत्तरदायी शासन में राष्ट्रपति की वह स्थिति नहीं है जो अमेरिका जैसी प्रतिनिध्यात्मक सरकार में एक राष्ट्रपति की है। सभा में यह तर्क देने वाले कि राष्ट्रपति एक तानाशाह बन सकता है, यह भूल रहे हैं कि राष्ट्रपति को प्रधान मन्त्री के परामर्श पर ही कार्य करना होगा।"

संविधान सभा के उपर्युक्त वाद-विवादों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माताओं का इरादा राष्ट्रपति को वही स्थिति प्रदान करना था जो ब्रिटेन में सम्राट की है। इसके अतिरिक्त, यह तथ्य आंखों से ओझल नहीं किया जाना चाहिए कि संविधान ने संसदीय प्रणाली की स्थापना की है। हमारी सम्पूर्ण संवैधानिक व्यवस्था संसदीय है। अत: संसदीय शासन-व्यवस्था में राज्याध्यक्ष की जो स्थिति होती है, वही राष्ट्रपति की है। लोक सभा के प्रति उत्तरदायित्व मन्त्रि-परिषद का है न कि राष्ट्रपति का। अत: राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद का परामर्श मानने को बाध्य है। ए० बी० लाल के शब्दों में "संसदीय प्रणाली का सिद्धान्त यही है कि समस्त शक्तियों का प्रयोग मन्त्रि-परिषद ही करती है, जो अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। संसदीय प्रजातन्त्र का सिद्धान्त है कि राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद के परामर्श से कार्य करे और यह मन्त्रि परिषद लोकसभा की विश्वासपात्र रहे।"

उपर्युक्त के अतिरिक्त संविधान के कुछ उपबन्ध और संविधान का व्यावहारिक रूप भी यही सिद्ध करता है कि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान मात्र ही है। संविधान में राष्ट्रपति का निर्वाचन परोक्ष इसलिये रखा गया है कि वह वास्तविक शासक बन सके।

विगत 30 वर्षों का अनुभव भी यही बताता है कि भारत के राष्ट्रपतियों ने संवैधानिक प्रधान के रूप में ही कार्य किया है। डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० राधाकृष्णन और डा० जाकिर हुसैन, श्री वी० वी० गिरी, श्री फखरुद्दीन अली अहमद, कार्यकारी राष्ट्रपति बी० डी० जत्ती, नीलम सजीवा रेड्डी आदि सभी ने दलगत भावना से ऊपर उठकर संवैधानिक प्रधान के रूप में कार्य किया। उन्होंने कभी मन्त्रि-परिषद और संसद की इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं किया। वर्तमान राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह इस पद पर निर्वाचित होने के पश्चात् अपना यह संकल्प व्यक्त ही किया था कि वे संवैधानिक मर्यादाओं तथा परम्पराओं के अनुसार ही कार्य करेंगे।

जनता पार्टी के शासन काल में कार्यकारी राष्ट्रपति श्री० बी० डी० जत्ती ने 9 राज्यों की विधान सभाओं को भंग करने और केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के निर्णय पर

हस्ताक्षर करने से मना कर दिया था परन्तु उस समय 42वें संशोधन विधेयक के अनुरूप उन्हें मन्त्रि-परिषद का निर्णय मानने को बाध्य होना पड़ा । अन्ततोगत्वा श्री जत्ती को मन्त्रिमण्डल के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने पड़े ।

जनता पार्टी ने सत्ता में आने के पश्चात् 44वें संशोधन विधेयक के द्वारा यह व्यवस्था कर दी थी कि राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं होगा । परन्तु व्यवहार में राष्ट्रपति ने केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार ही कार्य किया है । श्री नीलम संजीव रेड्डी का चुनाव जनता पार्टी के समय में हुआ था तथा वे जनता पार्टी के समर्थन से ही राष्ट्रपति पद पर चुने गये । इस बीच जनवरी 1980 के लोक सभा के मध्यावधि चुनाव ने श्रीमती गांधी को सत्ता में ला बिठाया । तथापि श्री रेड्डी तथा श्रीमती गांधी के मध्य टकराव की स्थिति नहीं आयी । अप्रैल 1980 में श्रीमती गांधी के नेतृत्व में केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद ने राज्य विधान सभाओं को भंग करने का निर्णय लिया तो राष्ट्रपति श्री रेड्डी ने हस्ताक्षर करने में देर नहीं लगायी ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारत के राष्ट्रपति की स्थिति अमेरिकन राष्ट्रपति की भांति वास्तविक शासक की नहीं है । डा० अम्बेडकर के शब्दों में, "राष्ट्रपति साधारणतया मन्त्रियों के परामर्श को मानने के लिए बाध्य होगा । वह न तो उनके परामर्श के विरुद्ध कुछ कर सकता है और न उनके परामर्श के बिना कुछ कर सकेगा ।" अन्त में हम पं० जवाहर लाल नेहरू के उस वक्तव्य को उद्धृत कर रहे हैं जो उन्होंने जुलाई 1959 में दिया था । पं० नेहरू ने कहा था कि "हमारा संविधान राष्ट्रपति को इंगलैंड के सम्राट या सम्राज्ञी जैसी स्थिति प्रदान करता है । यदि ऐसा नहीं हो तो मन्त्रि-मण्डल और संसद के उत्तरदायित्व के प्रश्न को हानि पहुंचेगी ।"

स्पष्टतः राष्ट्रपति की स्थिति प्रभाव की है, शक्ति की नहीं । यदि राष्ट्रपति उच्च चरित्र और आकर्षक व्यक्तित्व वाला हो तो उसका प्रभाव भी बढ़ जाता है । परन्तु 'प्रभाव' और शक्ति में अन्तर है, ऐसा होने पर भी उसका प्रभाव अवश्य ही स्वस्थ होगा यदि वह निर्वाचन के बाद अपने को दलगत राजनीति से ऊपर रखे तथा पूर्ण ईमानदारी और निष्पक्षता के साथ संविधान के अनुसार कार्य करे ।

प्रश्न 9—राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों की प्रकृति तथा क्षेत्र का परीक्षण कीजिये ।

भारत के राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों का वर्णन कीजिये और उन पर संक्षिप्त आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिये ।

भारतीय राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का आलोचनात्मक विवरण दीजिये । किन परिस्थितियों में उनका प्रयोग किया जा सकता है तथा उसका क्या परिणाम होगा ?

. राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों का वर्णन कीजिये।

भारत के राष्ट्रपति की संकटकालीन घोषणाओं को करने की शक्तियों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये। इन घोषणाओं के संवैधानिक परिणाम क्या होते हैं?

भारत के राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों को स्पष्ट कीजिये। क्या वह तानाशाह बन सकता है?

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ
(The Emergency Powers of the President)

भारत के राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियां सबसे महत्वपूर्ण हैं। संविधान के अन्तर्गत 3 प्रकार के संकटों का उल्लेख है—

(1) युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अशांति उत्पन्न से हुआ संकट (Emergency due to external attack or internal disorder)—संविधान के अनुसार यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाये कि भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा खतरे में है या संकटकालीन स्थिति की युद्ध या बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक उपद्रवों के कारण सम्भावना है, तो वह संकटकालीन घोषणा कर सकता है। इस प्रकार की घोषणा को संसद के प्रत्येक सदन में प्रस्तुत करना अनिवार्य है। यह घोषणा दो महीने तक लागू रहेगी। दो महीने के बाद उसका प्रभाव समाप्त हो जायेगा, यदि संसद के दोनों सदन दो महीने के अन्दर इसे स्वीकृति न दें।

परन्तु यदि संकटकाल की घोषणा ऐसे समय में की गई हो, जबकि लोक सभा भंग कर दी गई हो अथवा दो महीने के अन्दर वह भंग हो जायेगी, तो ऐसी दशा में घोषणा राज्य सभा के सम्मुख रक्खी जायेगी। यदि राज्य सभा ने उस घोषणा को स्वीकार कर लिया है, तो वह नई लोक सभा के प्रथम अधिवेशन के आरम्भ होने से 30 दिन तक लागू रहेगी। यदि 30 दिन की अवधि के अन्दर लोक सभा उसे स्वीकार कर ले, तो यह घोषणा एक बार में 6 माह और अधिक से अधिक तीन वर्ष के लिये बढ़ाई जा सकती है। राष्ट्रपति स्वयं संकटकालीन घोषणा को दो माह पूर्व भी समाप्त कर सकता है।

(1) घोषणा का प्रभाव (Effects of the proclamation)—इस प्रकार की संकटकालीन घोषणा के प्रभाव इस प्रकार हैं—

(1) इस प्रकार की संकटकालीन स्थिति में राज्य पूर्णतया एकात्मक शासन का रूप धारण कर लेता है। (2) संसद सम्पूर्ण देश या देश के किसी भी भाग के लिये किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। (2) राष्ट्रपति राज्य की कार्यपालिका को किसी भी विषय में आदेश दे सकता है। (4) राष्ट्रपति नागरिकों के

मौलिक अधिकारों को कुछ समय अथवा पूरी अवधि के लिये स्थगित कर सकता है। (5) राष्ट्रपति केन्द्र तथा राज्यों के राजस्व वितरण में संशोधन कर सकता है। (6) इस काल में राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह किसी भी पदाधिकारी को किसी प्रकार के अधिकार सौंपे।

(2) राज्यों में संवैधानिक तन्त्र के असफल हो जाने से उत्पन्न संकट (Due to the failure of the costitutional machinary)—यदि राष्ट्रपति को किसी प्रदेश के राज्यपाल से यह सूचना मिल जाये अथवा किसी अन्य प्रकार, यह विश्वास हो जाये कि राज्य में वैधानिक रूप से शासन करना असम्भव है तो वह संकटकाल की घोषणा कर सकता है। इस घोषणा को जारी रखने की वही प्रक्रिया है, जो संकटकाल में है।

घोषणा का प्रभाव (Effects of the . Proclamation)—(1) राज्यपाल या राज्य प्रमुख की शक्तियों सहित राष्ट्रपति राज्य के समस्त शासन कार्य को अपने हाथ में ले सकता है। (2) राष्ट्रपति राज्य के विधान मण्डल के समस्त अधिकारों को संघ, संसद अथवा उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी को सौंप सकता है। (3) संविधान के किसी भाग को राज्य पर कार्यान्वित होने से रोक सकता है, परन्तु इस संकटकाल में वह राज्य के उच्च न्यायालय के अधिकार अपने हाथ में नहीं ले सकता।

(3) आर्थिक संकट (Due to the economic crises)—यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाये कि भारत या उसके किसी भाग की आर्थिक स्थिरता खतरे में है, तो वह आर्थिक संकट की घोषणा कर सकता है। इस घोषणा को जारी रखने की वही प्रक्रिया है, जो प्रथम और द्वितीय संकटकाल में है।

घोषणा के प्रभाव (Effects of the Proclamation)—(1) आवश्यक निर्देश प्रसारित कर राष्ट्रपति राज्य तथा संघीय सरकारों के कर्मचारियों के वेतन और भत्तों में कटौती कर सकता है (2) वह सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन में भी कमी कर सकता है। (3) वह समस्त राज्य के वित्तीय विधेयकों को अपने पास स्वीकृति के लिये भेजे जाने का आदेश दे सकता है।

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों की आलोचना (Criticism of the emergency Powers)--(1) राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ वाद-विवाद का एक अच्छा विषय रही हैं। आलोचकों का कहना है कि संसार के किसी भी संविधान में, केवल जर्मनी वीमेर (Weimar) संविधान, जिसके अनुसार हिटलर तानाशाह बन गया था, को छोड़कर ऐसी शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं। संविधान सभा में राष्ट्रपति संकटकालीन शक्तियों पर बहस में भाग लेते हुए श्री हरि विष्णु कामथ ने कहा था, "हम ऐसे निरंकुश एवं पुलिस राज्य की नींव रखने का प्रयत्न कर रहे हैं जो उन

सब सिद्धान्तों का पूर्णतया विरोध करता है जिन्हें हमने पिछली कुछ शताब्दियों में उच्च आदर्शों के रूप में प्रतिष्ठित किया है ।"[1]

(2) संकटकालीन शक्तियों के विरुद्ध एक आलोचना यह की गई है कि यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन करता है। इन शक्तियों के द्वारा मौलिक अधिकारों को सरलतापूर्वक स्थगित किया ही जा सकता है, परन्तु साथ ही राष्ट्रपति संवैधानिक उपचारों के अधिकार को भी स्थगित कर सकता है। इसी से यह कहा गया है कि "संकटकालीन प्रावधान राष्ट्रपति के हाथ में भरी हुई पिस्तौल के समान और उनसे मौलिक अधिकारों का हनन बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।"

(3) राष्ट्रपति के ये अधिकार इतने व्यापक हैं कि इनमें राष्ट्रपति के निरंकुश तथा तानाशाह बन जाने की सम्भावना है। इस सम्बन्ध में डा० एम० पी० शर्मा ने लिखा है, "राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों की कागज सूची बड़ी ही विशाल है और यह सन्देह किया जा सकता है कि यदि राष्ट्रपति वास्तव में उन सब शक्तियों का प्रयोग करेगा, तो वह विश्व का सबसे बड़ा स्वेच्छाचारी शासक बन जायेगा।

25 जून, 1975 को आन्तरिक आपातकालीन की राष्ट्रपति की घोषणा
(President's declaration of Internal Emergency on 25 June, 1975)

25 जून 1975 को राष्ट्रपति ने केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की सिफारिश पर आन्तरिक आपात्काल की घोषणा की थी। इस घोषणा के पीछे देश में अव्यवस्था फैलाने, मुद्रा स्फीति तथा जमाखोरों एवं काला बाजारियों द्वारा समानान्तर अर्थ-व्यवस्था कायम करने आदि कारण दिए गए थे। राष्ट्रपति की आपातकालीन घोषणा के पश्चात् नागरिकों के मूलाधिकारों का निलम्बन कर दिया गया था। 'आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम भारतीय सुरक्षा अधिनियम' के अन्तर्गत समाज विरोधी तत्वों तथा विरोधी दलों के नेताओं तथा कार्यकर्त्ताओं की व्यापक पैमाने पर गिरफ्तारियां की गयीं। कोफापोसा के अन्तर्गत आर्थिक अपराधियों को गिरफ्तार किया गया था। मूलाधिकारों के निलम्बन के पश्चात् कोई भी व्यक्ति अपने मूलाधिकारों की रक्षा के लिये न्यायालयों का दरवाजा नहीं खटखटा सकता था। राज्यों की सरकारें भी केन्द्र सरकार के निर्देशानुसार कार्य कर रही थीं। समाचार-पत्रों पर सेन्सरशिप लागू कर दी गयी थी। केवल वे ही समाचार प्रकाशित किए जा सकते थे जिन्हें प्रकाशित करने की सरकार द्वारा आज्ञा दी जाती थी। संसद की कार्यवाहियों को प्रकाशित करने की अनुमति नहीं थी। इस प्रकार की आपात्-कालीन शक्तियों की आड़ में एक दलीय तानाशाही की स्थापना कर दी गयी।

---

1. "We are seeking to lay the foundation of a totalitaion and police, state, completely opposed to all pinciples that we have held aloft during the last few decades."
—H. V. Kamatts

आपात्काल की घोषणा के पश्चात् मार्च 1977 में लोकसभा के चुनाव हुए। इन चुनावों में मतदाताओं ने आपात्काल के विरुद्ध अपना निर्णय दिया तथा श्रीमती गान्धी एवं कांग्रेस को सत्ता से उखाड़ फेंका। जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई। श्रीमती गान्धी ने स्वयं जनता के सामने स्वीकार किया कि यदि वे दुबारा सत्ता में आईं तो आपात्काल नहीं लगायेंगी। अतः यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति की आपात्कालीन शक्तियों के प्रयोग को भारतीय मतदाताओं ने अस्वीकार कर दिया। भविष्य में इस बात की कम सम्भावना है कि कोई सरकार राष्ट्रपति की आपात्-कालीन शक्तियों का प्रयोग करे। जागरुक मतदाताओं के रहते ऐसा सम्भव नहीं है।

6 संघीय कार्यपालिका : मन्त्रि-परिषद एवं प्रधानमन्त्री

(The Union Executive : The Council and The Prime Minister)

प्रश्न 10—केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद के संगठन और कार्यों की व्याख्या कीजिये।

केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के संगठन तथा कार्यों की व्याख्या कीजिए तथा उसके लोकसभा एवं राष्ट्रपति के साथ सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिये।

संसद मन्त्रिमण्डल पर किस प्रकार नियन्त्रण रखती है ? यह नियन्त्रण किस सीमा तक लागू होता है ? भारतीय मन्त्रिमण्डल की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद
(Union Council of Ministers)

संविधान के अनुच्छेद 74 के अनुसार "राष्ट्रपति को अपने कार्यों के सम्पादन में सहायता एवं मन्त्रणा देने के लिये एक मन्त्रि-परिषद होगी। उसका प्रधान, प्रधान-मन्त्री होगा। संविधान के 75 वें अनुच्छेद के अनुसार "मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।" संविधान के अन्तर्गत मन्त्रिपरिषद् के

राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायित्व का कहीं भी उल्लेख नहीं है। संविधान में राष्ट्रपति के उत्तरदायित्व का भी कहीं उल्लेख नहीं है। मन्त्रिपरिषद राष्ट्रपति को जो परामर्श देती है, उसके लिये वह लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसका अर्थ यह है कि वास्तविक शक्ति मन्त्रिमण्डल में निहित है। राष्ट्रपति की समस्त शक्तियों का व्यवहार में प्रयोग वही करती है।

मन्त्रिपरिषद् का गठन (Composition of the Council of Ministers)—संविधान के अनुसार राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की नियुक्ति करेगा और प्रधानमन्त्री के परामर्श से वह अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करेगा। किन्तु व्यवहार में राष्ट्रपति लोक सभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। प्रधानमन्त्री अपने दल के प्रमुख एवं योग्य नेताओं की सूची जिन्हें वह मन्त्री बनाना चाहता है, राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इस सूची को राष्ट्रपति स्वीकार कर लेता है। इसका अर्थ यह है कि मन्त्रिमण्डल के गठन में राष्ट्रपति अपने विवेक का प्रयोग नहीं कर सकता। उसे अपनी मर्यादा के अनुसार ही कार्य करना पड़ेगा तथा लोकसभा में बहुमत दल के नेता को सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित करना होगा।

मन्त्रिपरिषद् का कार्यकाल (Tenure of the Council of Ministers)—संविधान के अनुसार मन्त्री लोग राष्ट्रपति की इच्छा पर्यन्त अपने पदों पर बने रहेंगे परन्तु यह मात्र औपचारिकता है। मन्त्रीगण अपने पदों पर तब तक बने रह सकते हैं जब तक उन्हें प्रधानमन्त्री तथा लोकसभा का विश्वास प्राप्त है। यदि मन्त्रिपरिषद के विरुद्ध लोकसभा अविश्वास का प्रस्ताव ले आती है तथा बहुमत से उसे पारित कर देती है तो मन्त्रियों को त्यागपत्र देना होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि मन्त्रिपरिषद् का जीवन तथा अस्तित्व राष्ट्रपति के परसाद पर्यन्त नहीं वरन् लोकसभा के विश्वास पर्यन्त बना रहता है।

मन्त्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective responsibility of the cabinet)—मन्त्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। सामूहिक उत्तरदायित्व का अर्थ है, सभी मन्त्री एक दूसरे के कार्यों के लिये उत्तरदायी हैं। यदि लोकसभा में मन्त्रिपरिषद् के किसी मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है, तो वह समस्त मन्त्रिपरिषद् के प्रति समझा जायेगा। इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् के सदस्य एक टीम के रूप में कार्य करते हैं।

मन्त्रियों की विभिन्न श्रेणियाँ (Various Categories of the ministers)—मन्त्रिपरिषद में तीन प्रकार के मन्त्री होते हैं—कैबिनेट स्तर के मन्त्री, राज्य मन्त्री तथा उपमन्त्री। इन मन्त्रियों के अतिरिक्त मन्त्रिपरिषद् में संसदीय सचिव भी होते हैं। ये संसदीय मामलों में मन्त्रियों की सहायता करते हैं।

भारतीय मन्त्रिमण्डल प्रणाली की विशेषतायें (Characteristics of Indian Cabinet System)—भारतीय मन्त्रिमण्डल व्यवस्था की वही विशेषतायें हैं जो ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की हैं। इन विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

(1) राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है (President is the Constitutional Head)—भारत का राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट की भाँति संवैधानिक या नाममात्र का ही प्रधान है। ब्रिटेन की भांति भारत में समस्त प्रशासन राष्ट्रपति के नाम में चलाया जाता है परन्तु ये सभी कार्य व्यवहार में उत्तरदायी मन्त्रि-मण्डल द्वारा किये जाते हैं। ब्रिटिश सम्राट की भांति भारत का राष्ट्रपति भी मन्त्रिमण्डल के परामर्श मानने के लिए बाध्य है। इस प्रकार राष्ट्रपति मन्त्रि-मण्डल के परामर्श को मानता है तथा उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। वह संवैधानिक प्रधान है, कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान नहीं है।

(2) राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल का भाग नहीं (President is outside the Cabinet)—जबसे इंगलैंड में संसदीय प्रणाली की स्थापना हुई है सम्राट अथवा सम्राज्ञी मन्त्रिमण्डलों की बैठकों का सभापतित्व नहीं करते। भारत में भी राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल से दूर रखा गया है। वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों में भाग नहीं ले सकता है। अमेरिका के राष्ट्रपति की भाँति भारत का राष्ट्रपति मन्त्रि-मण्डल का नेतृत्व नहीं करता। वह मन्त्रिमण्डल से बाहर रहता है।

(3) संसद और कार्यपालिका के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध (Close Co-operation between Parliament and Executive)—ब्रिटेन की भाँति भारत में भी व्यवस्थापिका (संसद) तथा कार्यपालिका के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। मन्त्री, संसद के किसी न किसी सदन के सदस्य अवश्य होते हैं। यदि कोई ऐसा व्यक्ति मन्त्री नियुक्त किया गया है जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है तो वह 6 माह तक ही इस प्रकार मन्त्री रह सकता है, इस समय के भीतर यदि वह संसद के किसी सदन का सदस्य बन जाता है, तभी वह आगे मन्त्री रह सकता है। मन्त्री, संसद के अधिवेशनों में भाग लेते हैं, महत्वपूर्ण विधेयक और प्रस्ताव मन्त्रियों के द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। वे ही सरकारी नीतियों को स्पष्ट करते हैं और सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देते हैं। मन्त्रिपरिषद के सदस्य लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। संसद के प्रति उनकी जवाबदेही होती है। इस प्रकार संसद अर्थात् लोकप्रिय सदन (लोक सभा) का मंत्रिपरिषद पर अंकुश रहता है।

(4) मन्त्रि-परिषद का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective responsibility of the Cabinet to the Parliament)—ब्रिटेन और भारत दोनों ही देशों में मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता मन्त्रियों का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व है। सामूहिक उत्तरायित्व का अर्थ यह है कि, यदि लोकसभा किसी एक मन्त्री द्वारा रखे गये प्रस्ताव अथवा विधेयक को अस्वीकार

कर देती है तो सारे मन्त्रिमण्डल को त्याग पत्र देना होगा। इस प्रकार भारतीय मन्त्रि-परिषद सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर गठित होती है।

भारत में भी संविधान के लागू होने से आज तक केन्द्र में लगभग सभी प्रधानमन्त्रियों तथा सरकारों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव रखे गए परन्तु केवल मोरारजी देसाई को दल में विभाजन के कारण त्याग-पत्र देना पड़ा। इसके पश्चात् चौ० चरणसिंह ने लोकसभा का विश्वास समाप्त हो जाने के कारण सदन का सामना करने से पूर्व ही त्याग-पत्र दे दिया तथापि मन्त्रि-मण्डल ने आज अनेक कारणों से अपनी स्थिति सुदृढ़ बना ली है। दलीय अनुशासन, मन्त्रिपरिषद् का सामूहिक उत्तरदायित्व, प्रधानमन्त्री द्वारा लोकसभा को भंग किये जाने का परामर्श देने का अधिकार, महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ मन्त्रि-मण्डल के हाथों में होना, संसद के सदैव अधिवेशन न होना, संसद के अधिकाँश सदस्यों का अनुभवहीन होना आदि अनेक ऐसे कारण है जिन्होंने लोकसभा की अपेक्षा मन्त्रिमण्डल को अधिक शक्तिशाली बना दिया है।

(5) मन्त्रिमण्डल में प्रायः एक ही राजनीतिक दल के सदस्यों का होना (Generally the cabinet members belong to one Political Party)— इसका अर्थ यह है कि मन्त्रि-मण्डल के सभी सदस्य एक ही राजनीतिक दल (लोकसभा में जो दल बहुमत प्राप्त कर लेता है) के सदस्य होते हैं। इसलिये उनके राजनीतिक विचार व सिद्धान्त समान होते हैं। भारत में संविधान लागू होने के प्रारम्भिक काल में मिला जुला मन्त्रिमन्डल बना था, परन्तु वह सफल नहीं हो सका। इसके पश्चात सन् 1977 के चुनावों से पूर्व तक केवल कांग्रेस ही मन्त्रिमन्डल बनाती रही। सन 1977 में जनतापार्टी के नाम से विभिन्न गैर कांग्रेसी दलों की मिली-जुली सरकार बनी। परन्तु उसके सुखद परिणाम नहीं निकले। परिणाम यह हुआ कि लोकसभा के कार्य काल से पूर्व जनता सरकार गिर गयी। इसके पश्चात् लोकदल तथा कांग्रेस (स्वर्णसिंह) की सरकार बनी परन्तु उसका भी पतन हुआ। राजनीतिक एकरूपता के सिद्धान्त के पालन करने से मन्त्रिपरिषद में विभिन्न विरोधी विचार-धारा वाले व्यक्ति नहीं आ पाते। एक ही राजनीतिक दल के सदस्य एकजुट होकर लोकसभा में विरोधी दलों की आलोचनाओं का सामना करते हैं।

(6) गोपनीयता (Secrecy) – संविधान के अनुच्छेद 75 (4) के द्वारा प्रत्येक मन्त्री के लिए पद ग्रहण करने से पूर्व गोपनीयता की शपथ (Oath of secracy) लेनी आवश्यक है। ब्रिटेन और भारत दोनों ही देशों में मन्त्रियों के लिए सरकार के गुप्त रहस्यों को प्रकट करने की मनाही है। मन्त्रि-मण्डल के सामूहिक उत्तरदायित्व के पालन के लिए यह उचित ही है कि मन्त्रिमण्डल की कार्यवाहियों को गुप्त रखा जाय। कोई मन्त्री, मन्त्री-मण्डल से त्यागपत्र देने के बाद ही संसद में या उसके बाहर अपनी स्थिति स्पष्ट कर सकता है। मन्त्रि-मण्डल में रहते हुए वह मन्त्रि-मण्डल की नीतियों की आलोचना नहीं कर सकता।

(7) प्रधानमन्त्री का नेतृत्व (Leadership of the Prime Minister)—

भारतीय मन्त्रि-मण्डलीय व्यवस्था की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि मन्त्रि-मण्डल में प्रधानमन्त्री का सर्वोच्च स्थान होता है। लार्ड मार्ले ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के लिए कहा है कि "वह मन्त्रि-मण्डल रूपी महराब की आधारशिला है।" यह कथन भारतीय प्रधानमन्त्री के लिए भी सही है। आजकल तो संसदीय सरकार को 'कैबीनेट सरकार' के बजाय 'प्रधानमन्त्री की सरकार' कहा जाने लगा है। इंगलैंड की तरह हमारे देश में भी यह कथन पूर्णतया लागू होता है। प्रधानमन्त्री की मन्त्रि-मण्डल में सर्वोच्च स्थिति होती है। वह मन्त्रि-मण्डल के वरिष्ठतम सदस्य को त्याग-पत्र देने को कह सकता है। बैंक राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने मोरारजी देसाई से त्याग-पत्र मांग लिया था। मन्त्रि-परिषद का कोई भी सदस्य सरकारी नीतियों से मतभेद रखते हुए मन्त्रि-परिषद में नहीं रह सकता।

मन्त्रि-परिषद के कार्य (Functions of the Cabinet)—मन्त्रि-परिषद के निम्नलिखित कार्य हैं—

(1) राष्ट्रपति को मन्त्रणा देना (To advise the President)—संविधान के अनुसार मन्त्रिपरिषद का कार्य राष्ट्रपति को मंत्रणा एवं सहायता देना है। यद्यपि यह अनिवार्य नहीं कि राष्ट्रपति उसकी मंत्रणा माने, परन्तु व्यवहार में वह मन्त्रि-परिषद के परामर्श की उपेक्षा नहीं करता।

(2) नीति निर्धारण करना (To decide the Policies)—मन्त्रिपरिषद का सबसे मुख्य कार्य राष्ट्र की नीति का निर्धारण करना है। आन्तरिक तथा बाह्य मामलों में राज्य किस नीति का पालन करे, इसका निर्धारण मन्त्रि-परिषद करती है।

(3) प्रशासकीय कार्य (Administrative Functions)—देश के शासन को सुचारू रूप से चलाने का दायित्व मन्त्रि-परिषद का है। इस दायित्व को निभाने के लिये वह शासन के कार्यों को अनेक विभागों मे विभाजित करती है। प्रधान-मन्त्री विभागों का वितरण करते समय प्रत्येक मन्त्री को एक या एक से अधिक विभाग सौंपता है। प्रत्येक विभाग के कार्य को सम्पन्न करने के लिये बहुत से उच्च नागरिक अधिकारी होते हैं। इनमें सचिव, अतिरिक्त सचिव, उपसचिव एवं निर्देशक आदि प्रमुख हैं। इन पदाधिकारियों के कार्यों के लिए भी मन्त्रिपरिषद को ही उत्तर-दायी माना जाता है। ये पदाधिकारी सम्बन्धित विभाग के मन्त्री के निर्देशानुसार ही कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त शासन के विभिन्न विभागों में सहयोग स्थापित करना मन्त्रि-परिषद का ही कार्य है।

(4) विधायिनी कार्य (Legislative functions)—संसद के सम्मुख जो भी प्रस्ताव प्रस्तुत होते हैं, वे किसी न किसी मंत्री द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। संसद में जो भी विधेयक प्रस्तावित किये जाते हैं, उनका प्रारूप उस विभाग के मंत्री के निर्देशन के विभाग मे उच्चाधिकारी तैयार करते हैं। प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation) के कारण विधि निर्माण में मन्त्रिपरिषद ही संसद का नेतृत्व

करती है। संसद तो कानून को मूल रूप में पारित कर देती है परन्तु उस कानून को मन्त्रिपरिषद ही व्यापक रूप प्रदान करती है।

(5) वित्तीय कार्य (Financial functions)—देश की आर्थिक नीति का निर्धारण भी मन्त्रिपरिषद द्वारा किया जाता है। बजट का निर्माण, नए करों का लगाना एवं व्यय, धन सम्बन्धी विधेयक आदि विषय उसी के नियन्त्रण में हैं। देश का वार्षिक बजट मन्त्रिपरिषद ही तैयार करती है तथा वित्त मंत्री उसे सदन के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

(6) नियुक्ति सम्बन्धी कार्य (Cabinet makes the Important appointments)—राज्यपाल, सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एटार्नी जनरल, महालेखा निरीक्षक, विभिन्न आयोगों के अध्यक्ष तथा सदस्य, सेना के सर्वोच्च अधिकारी तथा राजदूतों, आदि की नियुक्तियाँ व्यवहार में मंत्रिपरिषद द्वारा ही की जाती हैं। राष्ट्रपति तो मन्त्रिपरिषद द्वारा की गई सिफारिशों की घोषणा मात्र ही करता है।

(7) विदेशों के साथ सम्बन्ध निर्धारण करना (Cabinet decides the Foreign Policy and relations with Foreign Countries)—विदेशों से किस प्रकार के सम्बन्ध हों, यह मन्त्रि-परिषद ही निर्धारित करती है। अन्य देशों के साथ राजनीतिक और व्यापारिक संधियां, युद्ध की घोषणा व शान्ति स्थापित करना आदि कार्य मन्त्रिपरिषद ही करती है।

निष्कर्ष (Conclusion)—संक्षेप में मन्त्रिपरिषद वह सभी कार्य करती है, जो संविधान द्वारा राष्ट्रपति को दिये गये हैं। कैबिनेट के प्रशासन में महत्व के कारण ही मैरियट ने कहा है, "कैबीनेट ही वह धुरी है जिसके चारों ओर राजनीतिक मशीनरी घूमती है।" (Cabinet is the pivot around which the political machinery revolves.")

प्रश्न 11—"प्रधानमन्त्री वह नींव का पत्थर है, जिस पर मन्त्रिमण्डल रूपी महराब टिका होता है।" यह वक्तव्य क्या भारतीय प्रधानमन्त्री के लिये भी उतना ही सच माना जा सकता है, जितना ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के लिये।" इस कथन के सन्दर्भ में प्रधानमन्त्री के अधिकार और उत्तरदायित्वों की विवेचना कीजिये।

भारत के प्रधानमन्त्री की विधायिनी तथा कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों का वर्णन करो। उसकी तुलना ब्रिटिश प्रधानमन्त्री से कीजिये।

भारतीय संविधान में प्रधानमन्त्री के अधिकारों तथा कार्यों की विवेचना कीजिये।

प्रधानमन्त्री की नियुक्ति किस प्रकार होती है? उसके अधिकारों तथा कार्यों की विवेचना कीजिये।

भारत का प्रधानमन्त्री
(The Prime Minister of India)

संसदात्मक शासन प्रणाली में शासन की वास्तविक शक्ति मन्त्रि-परिषद में होती है जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री के हाथ में होता है। प्रधानमन्त्री कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष होता है। प्रशासन की नीतियों का निर्धारण तथा उसकी घोषणा प्रधानमन्त्री के द्वारा ही की जाती है। उसकी उपमा मंत्रिगण रूपी तारों के मध्य चन्द्रमा से की जाती है। रैम्जे म्योर ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्रीकी स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है "उसे इतनी अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं कि विश्व के किसी भी संवैधानिक प्रमुख को प्राप्त नहीं हैं, अमेरिका के राष्ट्रपति को भी नहीं। जब तक कामन्स-सभा में उसका बहुमत है, वह ऐसे कार्य कर सकता है जिन्हें विश्व का कोई भी अन्य शासक नहीं कर सकता। वह वचन दे सकता कि अमुख सन्धि कर ली जायेगी और स्वीकृत कर ली जायेगी, अमुक विधि पारित कर ली जायेगी और अमुक धन-राशि संसद द्वारा स्वीकृत कर ली जायेगी।" भारतीय प्रधानमन्त्री के बारे में ये समस्त बातें लागू होती हैं। इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध में लार्ड मोर्ले का कथन है कि "वह मन्त्रि-परिषद रूपी मेहराब की आधारशिला है" (The Prime Minister is the keystone of the Cabinet-arch) भारतीय प्रधानमन्त्री के बारे में यह सटीक है।

प्रधानमन्त्री की नियुक्ति (Appointment of the Prime Minister)—संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को यह पूर्ण अधिकार है कि वह अपनी इच्छानुसार ही प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। परन्तु व्यवहार में वह उसी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्ति करता है, जो लोकसभा में बहुमत दल का नेता हो। यदि राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त कर देगा, जो बहुमत दल का नेता न हो, तो ऐसे व्यक्ति को लोकसभा का विश्वास प्राप्त न होने पर अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ेगा। अतः राष्ट्रपति के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि वह लोकसभा के बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमन्त्री नियुक्त करे, परन्तु यदि लोकसभा में किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं है तो राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त कर सकता है, जो लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त कर सके। यदि कोई भी व्यक्ति लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त करने की स्थिति में नहीं है तो राष्ट्रपति लोकसभा को भंग करके नये चुनाव का आदेश दे सकता है। लोक सभा में किसी एक राजनीतिक दल का स्पष्ट बहुमत होने पर राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में अपने विधेयक का प्रयोग नहीं कर सकता।

भारतीय प्रधानमन्त्री के कार्य (Functions of the Indian Prime Minister)—संविधान के अनुसार भारतीय प्रधानमन्त्री के अग्रलिखित प्रमुख कार्य हैं—

(1) संवैधानिक कार्य (Constitutional functions)— प्रधानमन्त्री का कर्त्तव्य है कि वह शासन सम्बन्धी निर्णयों की सूचना राष्ट्रपति को दे। यदि राष्ट्रपति किसी विषय पर प्रधानमन्त्री से सूचना एवं परामश प्राप्त करना चाहें तो प्रधानमन्त्री को सूचना एवं परामर्श देना पड़ेगा।

(2) मंत्रि-परिषद का निर्माण (Composition of the Council of Ministers)— राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद के सदस्यों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री के परामर्श से करता है। वस्तुत: प्रधानमन्त्री ही मंत्रियों की नियुक्ति करता है। राष्ट्रपति तो केवल मुहर लगाता है। मंत्रियों में विभागों का विभाजन भी उसी के द्वारा होता है। प्रधानमन्त्री की इच्छा पर्यन्त ही कोई भी व्यक्ति मन्त्रिपरिषद का सदस्य रह सकता है। वह मन्त्रिपरिषद के किसी भी सदस्य से त्याग-पत्र मांग सकता है। प्रधानमन्त्री के त्याग पत्र देने पर मन्त्रिपरिषद का जीवन समाप्त हो जाता है। उसका त्याग-पत्र समस्त मन्त्रिपरिषद का त्याग-पत्र माना जाता है। प्रो० लास्की ने उसे मन्त्रि परिषद के जीवन तथा मृत्यु का केन्द्रबिन्दु (Central figure to the life and death of the cabinet) बताया है।

(3) मंत्रि-परिषद का सभापतित्व (He presides the cabinet meetings)—प्रधानमन्त्री कैबीनेट की बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसके आदेशानुसार ही मन्त्रिपरिषद की समस्त कार्यवाही सम्पन्न की जाती है।

(4) मंत्रियों को एकता सूत्र में बांधना (To bringout unity among the Ministers)—मंत्रि-परिषद के समस्त सदस्यों को एकता के सूत्र में बांधना प्रधानमत्री का कार्य है। यदि किसी विषय पर मंत्रियों में आपस में मतभेद उत्पन्न हो जाये, तो उसको दूर करना उसी का कार्य है।

(5) शासन की नीति का निर्माण करना (He formulates the policies of the Government,—शासन के समस्त विभागों की नीति के निर्माण में उसकी इच्छा ही सर्वोपरि होती है। कोई भी मत्री उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। सरकार की नीतियों का वह अधिकृत प्रवक्ता होता है।

(6) नियुक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को परामर्श (To advise the President about the appointment of Important officials)—राज्यों के राज्यपालों, सर्वोच्च व न्यायालयों के न्यायधीशों, एटार्नी जनरल, राजदूत आदि उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री की सिफ़ारिश पर ही राष्ट्रपति करता है। व्यवहार में ये नियुक्तियाँ प्रधानमन्त्री द्वारा की जाती हैं।

(7) लोक सभा का नेतृत्व करना (He also leads the house of the People)—प्रधानमन्त्री लोक सभा में बहुमत दल का नेता होने के कारण लोक सभा का नेता होता है। महत्वपूर्ण नीतियाँ संसद में उसी के द्वारा घोषित की जाती हैं। यदि अन्य मन्त्री अपने भाषण या नीतियों से संसद को सन्तुष्ट नहीं कर पाते, तो प्रधानमन्त्री ही संसद को सन्तुष्टि करता है। बहुमत दल के नेता के रूप में वह

संसद के भीतर सरकारी विधेयकों के लिए समर्थन जुटाता है। कौन सा विधेयक किस सदन में तथा किस क्रम में प्रस्तुत किया जाये, इसका निश्चय भी प्रधानमन्त्री करता है। समय-समय पर संसद के दोनों सदनों के अध्यक्ष भी प्रधानमन्त्री से परामर्श लेते हैं।

(8) दल के नेता के रूप में कार्य (His functions as a party leader)—संसद के बहुमत दल का नेता होने के साथ-साथ प्रधानमन्त्री अपने दलीय संगठन का नेता भी होता है। वह अपने दल की नीतियों एवं कार्यक्रमों को संसद में तथा संसद के बाहर जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। दल की महत्वपूर्ण नीतियाँ उसी के द्वारा निर्धारित की जाती हैं। अपने दल की नीतियों तथा कार्यक्रमों को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए वह प्रयत्नशील रहता है।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व (He Represents the international field)—प्रधानमन्त्री राष्ट्र का नेता होता है। वह देश की विदेश नीति का प्रमुख प्रवक्ता होता है। वैदेशिक नीति के बारे में उसकी घोषणा अन्तिम होती है। वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा दूसरे देशों के महत्वपूर्ण नेताओं का स्वागत करता है तथा उनके समक्ष देश का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

प्रधानमन्त्री की स्थिति (Position of the Prime Minister)—प्रधानमन्त्री के उपरोक्त कार्यों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के प्रशासन में प्रधानमन्त्री की स्थिति वही है, जो इंगलैण्ड के शासन में प्रधानमन्त्री की है। वह कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका का नेतृत्व करता है परन्तु साथ ही साथ यह भी सत्य है कि प्रधानमन्त्री की स्थिति और शक्ति उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। "प्रधानमंत्री के पद का वही महत्व है, जो इस पर आसीन व्यक्ति इसे प्रदान करना चाहता है।"

संवैधानिक रूप से तो प्रधानमन्त्री की स्थिति संसद, अपने दल के अन्दर तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर निर्विवाद होती है परन्तु प्रधानमंत्री के पद की गरिमा उस व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है जो इस पद को सम्भाले हुए है। हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तित्व इतना प्रबल था कि संसद में उनके विरोधी भी उनके समक्ष खुलकर नहीं बोल पाते थे। दल के अन्दर तो उन्हें चुनौती देने का सवाल ही नहीं था। अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर उनके विचार तथा उनकी राय को सभी देश मान्यता देते थे। लगभग यही स्थिति आज श्रीमती गांधी की है।

क्या प्रधानमन्त्री तानाशाह बन सकता है (Can Prime Minister become a dictator)—प्रधानमंत्री की स्थिति कभी भी एक तानाशाह के समान नहीं हो सकती क्योंकि बिना लोक सभा तथा जनता के समर्थन के वह अपने पद पर

नहीं बना रह सकता। यदि अपने कार्यकाल में प्रधानमंत्री तानाशाह के रूप में कार्य करता है तो आने वाले चुनाव में मतदाता उसे तथा उसके दल को हरा देंगे। उसकी शक्ति इस बात में निहित है कि वह अपने मन्त्रिमण्डलीय सहयोगियों, संसद सदस्यों तथा जनता को साथ में लेकर चले। प्रधानमंत्री शासन चक्र की धुरी के समान है। वह मन्त्रिपरिषद रूपी नाव का मल्लाह है। परन्तु तानाशाह शब्द का प्रयोग उसके लिए उचित नहीं है।

7 संघीय संसद
(Union Parliament)

प्रश्न 12—राज्य सभा के संगठन का वर्णन कीजिये। भारतीय संविधान के अनुसार राज्य सभा के कार्यों तथा महत्व को स्पष्ट कीजिये।

राज्य सभा के संगठन तथा कार्यों की एक द्वितीय सदन की दृष्टि से विवेचना कीजिये।

संसद का गठन (Organization of the Parliament)—संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार "संघ के लिये एक संसद होगी, जिसमें राष्ट्रपति, राज्य सभा (Council of States) तथा लोक सभा (House of People) सम्मिलित होंगे।" राष्ट्रपति संसद से सम्बन्धित न होते हुए भी इस दृष्टि से उसका अभिन्न अंग है कि संसद द्वारा पारित विधेयक कानून का रूप तभी धारण कर सकेगा जबकि उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो जायें। भारतीय संसद एक द्विसदनीय व्यवस्थापिका है।

राज्य सभा
(Council of States)

भारतीय संसद के द्वितीय सदन का नाम राज्य सभा है। यह संघ की इकाईयों का प्रतिनिधित्व करती है। संविधान के अनुसार इस सदन के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 हो सकती है जिनमें 238 सदस्य निर्वाचित होते हैं और 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होते हैं। राज्य सभा में अमेरिकी सीनेट की भाँति सब राज्यों को समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। प्रतिनिधित्व का आधार जनसंख्या है। वर्तमान समय में राज्य सभा में 244 सदस्य हैं। इनमें 232 सदस्य तो निर्वाचित होते हैं तथा शेष 12 सदस्यों का मनोनयन राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।

राज्य सभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व

राज्य	सदस्य संख्या
1. असम	7
2. आन्ध्र प्रदेश	18
3. बिहार	22
4. गुजरात	11
5. हरियाणा	5
6. जम्मू कश्मीर	4
7. केरल	9
8. मध्य प्रदेश	16
9. तमिलनाडू	18
10 महाराष्ट्र	19
11. कर्नाटक	12
12. नागालैण्ड	1
13. उड़ीसा	10
14. पंजाब	7
15. राजस्थान	10
16. उत्तर प्रदेश	34
17. पं० बंगाल	16
18. हिमाचल प्रदेश	3
19. मणीपुर	1
20. त्रिपुरा	1
21. मेघालय	1
22. सिक्किम	1
केन्द्र शासित प्रदेश	
1. दिल्ली	3
2. पांडेचेरी	1
3. अण्डमान निकोबार	—
4. चंडीगढ़	—
5. दाद व नगर हवेली	—
6. गोवा, दमन-दीव	—
7. लंकादिव, मिनीकाय व अमनदीवी द्वीप	—
8. मिजोरम	1
9. अरुणाचल प्रदेश	1
राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत	12
कुल योग	244

राज्य सभा के सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications of the Members of Rajya Sabha)—संविधान के अनुसार राज्य सभा की सदस्यता के लिये किसी सदस्य में निम्नलिखित योग्यतायें होनी चाहियें—

(1) भारत का नागरिक हो।

(2) 30 वर्ष से कम आयु का न हो।

(3) उसमें वह सब योग्यतायें हों जो भारतीय संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित करती है।

राज्य सभा के सदस्यों का निर्वाचन (Election of the Members of Rajya Sabha)—राज्य सभा में समस्त राज्यों के प्रतिनिधित्व का निर्वाचन उन राज्यों के विधान मण्डलों (जहां दो सदन है, वहा प्रथम सदन) द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा एक संक्रमणीय मत प्रणाली से किया जाता है। जिन राज्यों का शासन, केन्द्रीय शासन के अधीन है, उनके प्रतिनिधियों के निर्वाचनों की पद्धति भारतीय संसद निर्धारित करती है।

राज्य सभा का कार्यकाल (Tenure)—राज्य सभा एक स्थायी सदन है। वह कभी भी भंग नहीं होती, परन्तु इसके एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते हैं। इसके सदस्यों का निर्वाचन 6 वर्ष के लिए किया जाता है।

गणपूर्ति (Qorum)—राज्य सभा की बैठकों की कार्यवाही चलाने के लिए उसकी कुल सदस्य संख्या का $\frac{1}{10}$ भाग उपस्थित होना आवश्यक है।

राज्य सभा के पदाधिकारी (Officials of the Rajya Sabha)—भारत का उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है। इसके अतिरिक्त राज्य सभा अपने सदस्यों में से एक उपसभापति चुनती है, जो सभापति का पद खाली होने की स्थिति में उसका पद ग्रहण करता है। सभापति का कार्य सदन में अनुशासन रखना, मतदान कराना तथा निर्णय की घोषणा करना है। समान मत आने की स्थिति में सभापति निर्णायक मत देता है। राज्य सभा के सभापति को 2250 रु० और उपसभापति को 2000 मासिक वेतन मिलता है। सभापति को राज्य सभा उपस्थित सदस्यों के बहुमत से हटा सकती है। परन्तु लोक सभा का समर्थन भी आवश्यक है। उपसभापति को राज्य सभा बिना लोक सभा के समर्थन के हटा सकती है।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियाँ (Powers and Functions of the Rajya Sabha)—राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियों को हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) विधायनी शक्तियाँ (Legislative Powers)—भारतीय संविधान के अनुसार वित्तीय विधेयकों के अतिरिक्त अन्य सभी विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कोई भी विधेयक कानून का रूप तब धारण करता

है, जबकि संसद के दोनों सदन उसे पारित कर दें। यदि किसी विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद हो जाये तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलायेगा। इस बैठक में दोनों सदनों के बहुमत से जो निर्णय होगा, वही अन्तिम निर्णय समझा जायेगा, अतः औपचारिक रूप से दोनों सदनों की शक्तियां इस क्षेत्र में समान हैं, परन्तु व्यवहार में लोक सभा अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि लोक सभा के सदस्यों की संख्या राज्य सभा से बहुत अधिक है। अतः दोनों सदनों में गतिरोध होने पर संयुक्त अधिवेशन में लोक सभा की जीत होना निश्चित है।

(2) वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)–वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में राज्य सभा की शक्ति नाममात्र की है। वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं। लोकसभा में पारित होने के बाद विधेयक राज्य सभा में आता है। राज्य सभा को विधेयक में संशोधन एवं अस्वीकार करने का अधिकार नहीं है। उसे 14 दिन के अन्दर ही विधेयक को स्वीकार करना या अपने सुझावों के साथ लोक सभा को वापस भेजना पड़ता है। राज्य सभा के सुझावों को मानने के लिये लोकसभा बाध्य नहीं है।

(3 संविधान में संशोधन करने की शक्तियाँ (Powers relating to the amendment of the constitution)—संवैधानिक संशोधन के क्षेत्र में राज्य सभा को लोक सभा के समान अधिकार प्राप्त हैं। संविधान में संशोधन तभी हो सकता है, जब दोनों सदन 2/3 बहुमत से संशोधन प्रस्ताव को पारित कर दें।

(4) कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over the Executive)—यद्यपि मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है, फिर भी राज्य सभा प्रश्नों, काम रोको प्रस्तावों, वाद-विवादों आदि के द्वारा मन्त्रिपरिषद पर अपना नियन्त्रण रख सकती है। मन्त्रियों को राज्य सभा के सदस्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं। के० वी० राव के शब्दों में, "राज्य सभा कुछ निश्चित परिस्थितियों के अन्तर्गत मन्त्रिपरिषद को हटा नहीं सकती परन्तु उसे परेशानी में अवश्य डाल सकती है।"

(5) विविध शक्तियाँ (Other Powers)—(i) राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं।

(ii) राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने के समय दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त हैं।

(iii) सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को तभी पद से हटाया जा सकता है, जबकि लोकसभा भी उसका समर्थन करे।

(iv) राज्य सभा को 2/3 बहुमत से राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित करने का अधिकार है।

(v) राष्ट्रपति की संकटकालीन घोषणा को दो माह से अधिक जारी रखने के लिये राज्य सभा की स्वीकृति आवश्यक है।

राज्य सभा का महत्व (Importance of Rajya Sabha)—हमारे संविधान निर्माताओं का उद्देश्य संघीय व्यवस्था की स्थापना करना था। संघीय व्यवस्था के लिए संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन एक आवश्यक शर्त है। इसी उद्देश्य से संसद का द्विसदनात्मक रूप निश्चित किया गया था तथा राज्य सभा की रचना संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदन के रूप में की गयी। इसके अतिरिक्त हमारे संविधान निर्माताओं का उद्देश्य राज्य सभा को लोकसभा द्वारा जल्दबाजी तथा भावावेश में पारित विधेयकों पर पुनर्विचार करने वाले सदन के रूप में प्रतिष्ठित करना था। इन दोनों दृष्टिकोणों से राज्य सभा की उपयोगिता अपनी जगह आज भी बनी हुई है। राज्य सभा में प्रायः देश के वरिष्ठ एवं अनुभवी राज नेता ही चुनकर आते हैं जो अपनी सूझ-बूझ एवं दूरदर्शिता से लोक सभा की उच्छृंखलता पर अंकुश रखते हैं।

प्रश्न 13—लोक सभा के संगठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिये। क्या इस सदन को एक लोकप्रिय सदन माना जा सकता है?

लोक सभा के कार्यों तथा अधिकारों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

संसद के दोनों सदनों का नाम लोकसभा तथा राज्य सभा कहाँ तक उचित है? दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।

संघीय संसद के निम्न सदन को लोक सभा कहा जाता है। लोक सभा देश के नागरिकों का प्रतिनिधि सदन है। संविधान के 1962 में हुए चौदहवें संशोधन के अनुसार लोक सभा में अधिक से अधिक 525 सदस्य हो सकते थे, जिनमें से अधिक से अधिक 500 राज्यों की जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर चुने जाते थे और शेष 25 संघ प्रदेशों से चुने जाते थे। अनुसूचित जातियों तथा आदि-निवासियों के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था अगले 10 वर्षों के लिये बढा दी गयी। सन् 1973 के संशोधन के अनुसार लोक सभा की सदस्य संख्या 544 कर दी गयी। इनमें से निर्वाचित सदस्यों की संख्या 542 है। 2 लोकसभा सदस्य राष्ट्रपति द्वारा आंग्ल-यूरोपियन समुदाय से मनोनीत किये जाते हैं।

सन् 1980 के लोकसभायी चुनावों में कुल 525 स्थानों के लिए चुनाव हुए। असम में आन्दोलन के कारण 12 स्थानों पर चुनाव नहीं हो सके। इसी प्रकार जम्मू-काश्मीर, मेघालय, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल में एक-एक स्थान के चुनाव नहीं हुए।

लोक सभा में राज्यों व संघ क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व

राज्यों के नाम	सदस्यों की संख्या
आन्ध्र प्रदेश	42
असम	14
बिहार	54
गुजरात	26
त्रिपुरा	2
सिक्किम	1
मेघालय	2
नागालैण्ड	1
हरियाणा	10
जम्मू व काश्मीर	6
केरल	20
मध्य प्रदेश	40
तमिलनाडु	39
महाराष्ट्र	48
कर्नाटक	28
उड़ीसा	21
पंजाब	13
राजस्थान	25
उत्तर प्रदेश	85
पश्चिमी बंगाल	42
हिमाचल प्रदेश	4
मणीपुर	2
केन्द्र शासित प्रदेश	
दिल्ली	7
चण्डीगढ़	1
पांडेचेरी	1
अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह	1
गोवा, दमन दीव, लक्षद्वीप समूह	1
दादर व नगर हवेली	1
उत्तर पूर्वी सीमा प्रदेश (मिजोरम)	1
अरुणाचल प्रदेश	2
राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत आंग्ल भारतीय समुदाय के सदस्य	2
कुल योग	544

लोक सभा के सदस्यों का निर्वाचन (Election of the members of Lok Sabha)—लोक सभा के सदस्यों के निर्वाचन के लिये भारत में परोक्ष निर्वाचन प्रणाली अपनाई गई है। लोक सभा के सदस्यों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। 21 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु का प्रत्येक स्त्री अथवा पुरुष मत डाल सकता है। एक निर्वाचन क्षेत्र से एक ही लोकसभा सदस्य निर्वाचित होता है। प्रत्येक लोक सभा सदस्य कम से कम 5 लाख तथा अधिक से अधिक 7,50000 लाख मतदाताओं का प्रतिनिधित्व कर सकता है। प्रत्येक मतदाता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से करता है। जैसे-जैसे भारत की जनसंख्या बढ़ती जायेगी, लोक सभा के सदस्य अधिक व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करेंगे। संविधान के अनुसार लोक सभा के सदस्यों की संख्या 550 से अधिक न बढ़ायी जा सकेगी।

वयस्क मताधिकार के कारण भारत में गत चुनावों में मतदाताओं की संख्या 33 करोड़ के लगभग थी।

भारतीय संविधान से पूर्व भारत में निर्वाचन साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली (Communal Representation) के आधार पर हुआ करता था। मुसलमान केवल मुस्लिम प्रतिनिधियों को चुनते थे और पंजाब की विधान सभा के सिख प्रतिनिधियों का चुनाव सिखों द्वारा किया जाता था। परन्तु नये संविधान द्वारा इस दूषित प्रणाली का अन्त कर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को जन्म दिया गया है। अब मुसलमान, सिखों व ईसाइयों को अपने पृथक् प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं है और न उनके लिये कोई पृथक् स्थान सुरक्षित हैं। केवल 26 जनवरी 1990 तक के लिये यह व्यवस्था की गई है कि अनुसूचित तथा पिछड़ी हुई जातियों के लिये कुछ स्थान सुरक्षित रखे जायें। पर इन जातियों के प्रतिनिधियों का चुनाव भी सर्व-साधारण जनता द्वारा किया जाता है। इसके साथ ही यह भी व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति यदि यह अनुभव करे कि लोक सभा में आंग्ल भारतीयों को पर्याप्त मात्रा में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है, तो वह दो आंग्ल भारतीयों को मनोनीत कर सकता है। यह व्यवस्था भी केवल इसी अवधि तक के लिये है।

लोक सभा का कार्यकाल (Tenure)—संविधान के अनुसार साधारणतया लोक सभा का कार्यकाल 5 वर्ष है। यदि कोई भी दल स्थायी सरकार बनाने की स्थिति में नहीं है तो राष्ट्रपति लोक सभा को भंग कर नये चुनावों का आदेश दे सकता है। संकटकाल की घोषणा के समय लोक सभा अपना कार्यकाल 1 वर्ष के लिये बढ़ा सकती है। आवश्यकतानुसार इस विस्तार की पुनरावृत्ति की जा सकती है, परन्तु संकटकालीन घोषणा के समाप्त होने के पश्चात् 6 माह से अधिक कार्यकाल नहीं बढ़ाया जा सकता।

लोकसभा के सदस्यों की योग्यतायें (Qualification)–संविधान के अनुसार लोकसभा की सदस्यता के लिये निम्नलिखित योग्यतायें होनी चाहियें––

(1) भारत का नागरिक हो।

(2) वह 25 वर्ष से अधिक आयु का हो।

(3) वह संसद द्वारा निर्धारित योग्यताओं को पूरा करता हो।

लोकसभा की सदस्यता के लिये अयोग्यतायें (Disqualifications)—वही अयोग्यतायें हैं, जो राज्य सभा के सदस्यों के लिये हैं, परन्तु 1951 के जन प्रतिनिधित्व कानून (Representation of the Peoples Act) के अनुसार निम्नलिखित अयोग्यतायें और जोड़ दी गई हैं—

(1) यदि वह निर्वाचन सम्बन्धी किसी अपराध का अपराधी हो।

(2) यदि वह किसी अपराध के लिये दो वर्ष से अधिक सजा पा चुका हो तथा उसको छूटे हुए 5 वर्ष का समय न हुआ हो।

(3) यदि वह दिवालिया घोषित किया गया हो।

(4) यदि वह सरकार के अन्दर किसी लाभ के पद पर हो।

लोकसभा के सदस्यों के विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियाँ (Immunities)—लोक सभा के सदस्यों को संविधान के अन्तर्गत कुछ विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इनका वर्णन संविधान के अनुच्छेद 105 में किया गया है।

लोक सभा के पदाधिकारी (Officials of Lok Sabha)—लोक सभा अपने सदस्यों में से ही एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष निर्वाचित करती है। परन्तु व्यावहारिक रूप में प्रधानमन्त्री अपनी मन्त्रि-परिषद् के परामर्श से अध्यक्ष पद के लिये व्यक्ति का निर्णय करता है, ऐसा करते समय वह विरोधी दलों से भी विचार-विमर्श करता है। लोकसभा का अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष तभी तक अपने पद पर बना रहेगा, जब तक कि वह सदन का सदस्य है। दोनों ही अपनी इच्छा से त्यागपत्र भी दे सकते हैं तथा लोक सभा समस्त सदस्यों के बहुमत द्वारा अनुमोदित प्रस्ताव से दोनों को हटा सकती है। परन्तु ऐसा प्रस्ताव पारित करने से पूर्व 14 दिन पहले सूचना देना अनिवार्य है। यदि लोक सभा भंग होने की स्थिति में हो तो अध्यक्ष नई लोक सभा के प्रथम अधिवेशन के प्रथम दिन तक अपने पद पर बना रहेगा।

लोकसभा के अधिवेशन (Sessions)—संविधान के अनुसार वर्ष में कम से कम दो बार लोकसभा का अधिवेशन होना अनिवार्य है। एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक और दूसरे अधिवेशन की प्रथम बैठक में 6 माह से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिये। संसद में दोनों या एक सदन को बुलाना, उसका सत्रावसान करना तथा लोकसभा का विघटन करना राष्ट्रपति का कार्य है।

लोकसभा की सर्वोच्चता (Supremacy of the Lok Sabha)—भारत में

संसद की सर्वोच्चता का अर्थ लोक सभा की सर्वोच्चता से है। क्योंकि विधि-निर्माण में अन्तिम शक्ति उसी को प्राप्त है, उसका वित्त पर भी पूर्ण नियन्त्रण तथा मन्त्रि-परिषद् भी सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है, अतः लोक सभा किसी बाहरी शक्ति व सत्ता के नियन्त्रण में नहीं है। डॉ० एम० पी० शर्मा के अनुसार, "यदि संसद राज्य का सर्वोच्च अंग है, तो लोकसभा संसद का सर्वोच्च अग है।" वस्तुतः व्यावहारिक दृष्टिकोण से लोकसभा ही संसद है।"

प्रश्न 14—लोकसभा के अध्यक्ष पर टिप्पणी लिखिये।

लोकसभा का अध्यक्ष
(The Speaker of Lok Sabha)

लोक सभा के अध्यक्ष की नियुक्ति (Appointment of the Speaker)—लोक सभा स्वय अपने सदस्यों में से अध्यक्ष का चुनाव करती है। व्यवहार में प्रधान-मन्त्री अध्यक्ष के बारे में विरोधी दलों के नेताओं से विचार-विमर्श करके निश्चित कर लेता है किस व्यक्ति को अध्यक्ष चुना जाय। प्रायः अध्यक्ष शासक दल से चुना जाता है क्योंकि सदन में उसी का बहुमत होता है। ब्रिटेन में अध्यक्ष सर्वसम्मति से चुना जाता है परन्तु हमारे यहाँ भी ऐसी ही परम्परा है। हमारे यहाँ अध्यक्ष का चुनाव दलीय आधार पर होता है। लोकसभा उपस्थित सदस्यों के बहुमत से अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा अध्यक्ष को पद से हटा सकती है, परन्तु ऐसा प्रस्ताव पेश करने से 14 दिन पूर्व अध्यक्ष को सूचना देना अनिवार्य है। यदि जब कभी लोक सभा का विघटन किया जाये, तो विघटन के पश्चात् होने वाले लोक सभा के प्रथम अधिवेशन के प्रथम दिन तक अध्यक्ष अपना पद रिक्त न करेगा। अध्यक्ष की अनु-पस्थिति में उपाध्यक्ष अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा।

अध्यक्ष के कार्य (Functions of the Speaker)—(1) वह लोक सभा की बैठकों का सभापतित्व करता है तथा सदन की कार्यवाही का सचालन करता हैं। (2) लोक सभा के नेता से परामर्श करके वह निश्चित करता है कि लोकसभा का कार्यक्रम क्या हो, किस क्रम से विविध बिलों और प्रस्तावों आदि पर विचार किया जाये। राष्ट्रपति के भाषण पर वाद-विवाद के लिये समय निर्धारित करना, उसके भाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर जो संशोधन पेश किया जाये आदि कार्य अध्यक्ष ही करता है। (3) सदन में अनुशासन स्थापित करना भी उसी का कार्य है। (4) यदि कोई सदस्य सदन में अव्यवस्था उत्पन्न करता है, अध्यक्ष उसे चेतावनी दे सकता है। यदि कोई सदस्य उसकी आज्ञा का उल्लंघन करे, तो वह उसे सदन से बाहर निकलवा सकता है (6) वह प्रश्नों को स्वीकार तथा नियम के विरुद्ध होने पर अस्वीकार करता है। (7) काम रोको प्रस्ताव भी उसकी अनुमति मिलने पर पेश हो सकता है। (8) वह ही यह निर्णय करता है कि कौन सा विधेयक वित्तीय विधेयक है और कौन सा नहीं. (9) प्रवर समितियों के सभापतियों की नियुक्ति

भी उसी के द्वारा होती है। (10) लोक सभा के सत्र भाषण उसी को सम्बोधित करके दिये जाते हैं। (11) संसद और राष्ट्रपति के बीच सारा पत्र-व्यवहार उसी के माध्यम से होता है। (12) बजट पर होने वाले भाषणों की सीमा भी उसी के द्वारा निर्धारित होती है। (13) जब कोई विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है, तो अध्यक्ष ही उस पर हस्ताक्षर करता है। (14) जब दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन होता है, तो अध्यक्ष ही सभापतित्व करता है। (15) समान मत होने की स्थिति में अध्यक्ष निर्णायक मत देता है। (16) लोक सभा के सदस्यों के विशेषाधिकारों की रक्षा भी उसी का कार्य है। (17) कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं, यह निश्चित करना भी अध्यक्ष का ही कार्य है।

लोक सभा के अध्यक्ष से यह आशा की जाती है कि वह पूर्णतया निष्पक्ष होकर अपने कार्यों का सम्पादन करेगा। यद्यपि वह किसी दल के टिकट पर ही प्रायः लोक सभा में चुना जाता है, परन्तु अपना पद ग्रहण करने के पश्चात् उसे राजनीतिक दल से सम्बन्ध-विच्छेद करना होता है, फिर वह किसी राजनीतिक कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता।

प्रश्न 15—भारतीय संसद में विधि-निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करके समझाइये।

Explain clearly the law-making procedure in Indian Parliament.

विधि निर्माण की प्रक्रिया
(Law-making Procedure)

भारत में विधायी प्रक्रिया के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि संसदीय व्यवस्था होने के कारण विधि-निर्माण की सर्वोच्च शक्ति संसद में निहित है। संसद की शक्तियों का प्रयोग लोक सभा करती है। हमारे यहाँ विधि निर्माण के बारे में दो प्रकार की प्रक्रियायें काम में लायी जाती हैं—

(1) साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में प्रक्रिया (Procedure Relating to the Non Financial Bills)—जो वित्तीय विधेयक नहीं होते वे साधारण विधेयक कहलाते हैं। इन विधेयकों का पारित करने का तरीका वित्तीय विधेयकों से पूरी तरह भिन्न है।

(2) धन विधेयकों के सम्बन्ध में प्रक्रिया (Procedure Relating to the Financials Bills)—जो वित्त सम्बन्धी विधेयकों पर लागू होती हैं—

(1) साधारण विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया (Procedure relating to non-financial bills)—साधारण विधेयक दो प्रकार के होते हैं—(अ) सरकारी विधेयक (Public Bills) (ब) गैर सरकारी विधेयक (Private member's Bills) जो विधेयक सदन में मन्त्रियों द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं

सार्वजनिक विधेयक कहलाते हैं तथा जो मन्त्रियों के अतिरिक्त अन्य संसद सदस्यों द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं, निजी सदस्यों के विधेयक अथवा गैर-सरकारी विधेयक कहलाते हैं। प्रायः मन्त्रियों द्वारा प्रस्तावित विधेयक ही पारित होते हैं। जो विधेयक मन्त्रियों की ओर से पेश किये जाते हैं उनके लिये पहले नोटिस देने की आवश्यकता नहीं होती। यह सीधे सरकारी गजट में पेश कर दिये जाते हैं, पर यदि कोई और सदस्य विधेयक पेश करना चाहे, तो उसे एक माह का नोटिस देना पड़ता है। किसी भी विधेयक को पारित होने के लिये निम्नलिखित अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है।

प्रथम वाचन (First Reading)—सदन का अध्यक्ष विधेयक को सदन में प्रस्तुत करने के लिये एक तिथि निर्धारित कर देता है। निश्चित तिथि को प्रस्तावक अध्यक्ष की अनुमति लेकर विधेयक को सदन के सम्मुख पढ़ता है। यह प्रथम वाचन कहलाता है। यदि इस वाचन से पूर्व विधेयक का सरकारी गजट में प्रकाशन न हुआ हो तो प्रथम वाचन के बाद उसे गजट में प्रकाशित कर दिया जाता है।

द्वितीय वाचन (Second Reading)—प्रथम वाचन के पश्चात् निश्चित तिथि को विधेयक का द्वितीय वाचन होता है। इस वाचन में प्रस्तुतकर्त्ता यह निश्चित करता है कि विधेयक प्रवर समिति को विचारार्थ सौंप दिया जाये या उसे जनमत जानने के लिये प्रसारित किया जाये या तत्काल ही सदन में उस पर विचार किया जाये। केवल आवश्यक विधेयकों पर ही सदन में तुरन्त विचार होता है, अन्य पर नहीं। अधिकतर विधेयक प्रवर समिति को सौंप दिये जाते हैं।

समिति अवस्था (Committee Stage)—यदि सदन विधेयक को प्रवर समिति को सौंप देता है, तो प्रवर समिति विधेयक पर विचार करती है। इस समिति में विधेयक से सम्बन्धित मन्त्री अवश्य होता है। प्रवर समिति विधेयक की प्रत्येक धारा पर पूर्ण रूप से विचार करती है। विचार-विमर्श के पश्चात् समिति विधेयक के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट तैयार करती है। इस रिपोर्ट पर समिति के अध्यक्ष के हस्ताक्षर होते हैं।

रिपोर्ट अवस्था (Report Stage)—प्रवर समिति की रिपोर्ट को गजट में छाप दिया जाता है। प्रवर समिति की रिपोर्ट आ जाने पर विधेयक का प्रस्तुतकर्त्ता इनमें से एक प्रस्ताव सदन के सम्मुख पेश करता है—(1) समिति की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुये अब विधेयक पर सदन में विचार किया जाये।

(2) विधेयक को पुनः प्रवर समिति के सम्मुख विचारार्थ भेज दिया जाये।

(3) विधेयक को जनमत जानने के लिये पुनः प्रसारित किया जाये।

यदि प्रवर समिति द्वारा प्रस्तुत विधेयक को सदन विचारार्थ स्वीकार कर लेता है तो विधेयक की एक-एक धारा और खण्ड पर सदन में विचार-विनिमय होता है। सदन में उत्तेजनात्मक बहस इसी समय होती है। प्रत्येक संशोधन पर बहस

होती है। यदि संशोधन बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिये जाते हैं, तो वे विधेयक का अंग बन जाते हैं।

तृतीय वाचन (Third or Final Reading)—यह विधेयक की सदन में अन्तिम अवस्था होती है। तृतीय वाचन में एक बार और सदन को यह अवसर मिलता है कि वह विधेयक के बारे में चर्चा कर सके। यह वाचन औपचारिक होता है। केवल विधेयक की भाषा और शब्दावली में सुधार के लिये कुछ संशोधन रखे जा सकते हैं। अन्त में विधेयक पर मतदान होता है। यदि विधेयक के पक्ष में बहुमत होता है तो विधेयक उस सदन में पारित समझा जाता है।

विधेयक दूसरे सदन में (Bills in the Second House)—तृतीय वाचन के पश्चात् विधेयक दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। दूसरे सदन में पहले सदन की प्रक्रियाओं को दोहराया जाता है। दूसरे सदन द्वारा भी यदि विधेयक उसी रूप में पारित हो जाता है जिस रूप में प्रथम सदन ने पारित किया था तो वह राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिये भेज दिया जाता है, परन्तु यदि दूसरा सदन विधेयक को उसी रूप में स्वीकार न करे अथवा संशोधनों सहित पहिले वाले सदन को वापिस भेज देता है तो उस सदन में विधेयक के संशोधनों पर पुनः विचार होता है। परन्तु यदि दूसरा सदन विधेयक में ऐसे संशोधन प्रस्तुत करता है कि जिनसे पहला सदन सहमत नहीं है अथवा दूसरा सदन विधेयक को 6 माह तक पारित नहीं करता तो दोनों सदनों में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति निश्चित तिथि को दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाता है। इस अधिवेशन में बहुमत से निर्णय लिया जाता है।

राष्ट्रपति की स्वीकृति (President's Assent)—दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने पर विधेयक कानून का रूप धारण करता है और सरकारी गजट में प्रकाशित कर दिया जाता है। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह विधेयक को पुनर्विचार के लिये संसद को लौटा दे, यदि संसद दोबारा विधेयक को पारित कर देती है। तो राष्ट्रपति को इस पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं।

वित्तीय विधेयकों की प्रक्रिया (Procedure Relating to the Financial Bills)—वित्त विधेयक वह विधेयक है, जिसका सम्बन्ध संघ की आय-व्यय, निधियों, हिसाब-किताब और उसकी जाँच आदि से है। कोई विधेयक वित्तीय विधेयक है या नहीं इसका निर्णय लोक सभा का अध्यक्ष करता है। वित्तीय विधेयक केवल लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। लोक सभा में पारित होने के पश्चात् विधेयक को राज्य सभा के पास भेजा जाता है। राज्य सभा को यह विधेयक अपनी सिफारिशों के साथ 14 दिन में वापस भेजना पड़ता है। वित्तीय विधेयक के मामले में राज्य सभा की सिफारिशों को मानना न मानना लोक सभा की इच्छा पर निर्भर

है। यदि राज्य सभा 14 दिन के अन्दर विधेयक को वापिस नहीं करती, तो इस अवधि के समाप्त हो जाने के पश्चात् वह उसी रूप में पारित माना जायेगा, जिस रूप में उसे लोक सभा ने पारित किया था। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। वित्तीय विधेयकों को राष्ट्रपति अस्वीकृत नहीं करता।

प्रश्न 16—लोक सभा की प्रमुख समितियों का सक्षेप में वर्णन कीजिये।

Describe briefly the main committees of Lok Sabha.

भारत में समिति व्यवस्था

(The Committee–System in India)

वर्तमान समय में प्राय: समस्त देशों में विधान मण्डल अपने विधायी कार्यों को अधिक कुशलता तथा शीघ्रता से करने के लिये अनेक समितियों का प्रयोग करते हैं। वस्तुत: लोकसभा का अधिकांश कार्य इन समितियों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। समिति व्यवस्था द्वारा इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने के निम्नलिखित कारण हैं—

(1) वर्तमान समय में विधि निर्माण का कार्य अत्यंत जटिल एवं तकनीकी हो गया है। विधान-मण्डलों के सब सदस्य इस कार्य में निपुण नहीं होते। लोक-सभा की समितियों में प्राय: विशेषज्ञ ही रखे जाते हैं। इन विशेषज्ञों द्वारा विधि निर्माण कार्य अधिक सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

(2) वर्तमान समय में विधान मण्डल के कार्य बहुत बढ़े हुये हैं। उसके पास इतना समय नहीं है कि वह प्रत्येक विधेयक पर सूक्ष्मता से विचार कर सके। ये समितियाँ लगातार इस कार्य को करती हैं, भले ही लोकसभा का अधिवेशन हो अथवा न हो।

(3) समितियाँ विभिन्न विधेयकों पर विस्तारपूर्वक वाद-विवाद कर सकती हैं। ये सभी प्रकार के रिकार्डों और गवाहों को बुलवा सकती हैं और आवश्यक बातों की छानबीन कर सकती हैं। ये कार्य सदन में सम्भव नहीं हैं।

(4) समितियों के कारण संसद के समय की बचत होती है।

लोक सभा की कुछ महत्वपूर्ण समितियाँ (Some Important Committees of the Lok Sabha)—लोकसभा की कुछ महत्वपूर्ण समितियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) कार्य परामर्शदात्री समिति (Business Advisory Committee)—यह समिति लोक सभा के समस्त कार्यों में सहायता करती है। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं तथा लोकसभा का अध्यक्ष इस समिति का अध्यक्ष होता है। सदन के कार्य प्रारम्भ होते ही इस समिति का गठन किया जाता है। यह समिति सदन के कार्यों को संचित करके उसके लिये नियमों का निर्माण करती है।

(2) याचिका समिति (Committee of Petitions)—इस समिति में 15 सदस्य होते हैं जिनका मनोनयन अध्यक्ष द्वारा सदन के आरम्भ में ही किया जाता है। इस समिति का कार्य व्यक्तियों तथा लोकसभा द्वारा प्रेरित याचिकाओं पर सदन को परामर्श देना है। यह समिति प्रत्येक याचिका की जाँच करती है जो उसे सौंपी जाती है।

(3) प्राक्कलन समिति (Committee on Estimates)—इस समिति में 40 सदस्य होते हैं जिनका निर्वाचन प्रत्येक वर्ष लोकसभा के सदस्यों में से आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय पद्धति द्वारा होता है। इस समिति का कार्य प्रत्येक विभाग के आय-व्यय अथवा वार्षिक वित्तीय विवरण के प्राक्कलनों को समय-समय पर अनुसंधानित करना तथा सदन को मितव्ययिता के बारे में सुझाव देता है।

(4) लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee)—इस समिति का चुनाव प्रति वर्ष संसद के दोनों सदनों में से होता है। इसमें दोनों सदनों के सदस्य लिये जाते हैं। इस समिति की कुल सदस्य संख्या 22 है। 15 सदस्य लोक-सभा के तथा 7 राज्य सभा के होते हैं। इन सदस्यों का चुनाव भी समानुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर होता है। समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति लोक-सभा का अध्यक्ष करना है। इस समिति का कार्य है लेखा परीक्षण। प्रति वर्ष यह समिति नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के विवरण के अनुसार सरकार के वित्तीय विवरण की जाँच करती है तथा अपना विवरण संसद के सम्मुख रखती है। इस समिति की रिपोर्ट सरकार के लिये चेतावनी का कार्य करती है। इस समिति की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में मोरिस जोन्स लिखते हैं, "इस समिति को 3 दिशाओं मे कार्य करने में सफलता मिली है। प्रथम, यह उन खामियों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करती है जिनके बारे में प्रशासन सचेत तो है परन्तु उन्हें दूर नहीं कर पाया। द्वितीय, इस संसदीय समिति तथा महालेखा निरीक्षक का अस्तित्व अधि-कारियों को यह याद दिलाता है कि उनके कार्यों की संसद की ओर से छानबीन की जा सकती है। तृतीय, इस समिति का कार्य अधिकारियों को जनमत के प्रति उत्तर-दायी तथा राजनीतिज्ञ को रचनात्मक आलोचना के कार्य में दक्ष बनाना है।"[1]

---

1. "The fair conclusion is that the public accounts' committee is succeding in three main directions:—

First it underlines and brings to public notice the deffects which the administration is move of but which have not yet been wholly sewedied, second the mere existence of the committee and the auditor general serves to remind the officials that their actions are subject to scrutivy on behalf of parliament and the last, in India by no means least, the work of the committee and is to train the official and the politician both—the formes in responsiveness to public opinion and the latter in the task of constructive criticism."

—Moevris Jones.

(5) प्रवर समिति (Select Committee)—यह वह समिति है जो साधारणतया प्रत्येक विधेयक पर अपने विचार तथा उससे सम्बन्धित विवरण सदन के सम्मुख उपस्थित करती है। प्रवर समिति किसी विधेयक विशेष हेतु बनाई जाती है और रिपोर्ट देने के बाद वह स्वयमेव ही हो जाती है। प्रत्येक ऐसी समिति के निर्माण का प्रस्ताव, उसके सदस्यों की संख्या और उसकी सदस्यता का निर्णय विधेयक के प्रस्तावक के अनुसार होता है। विधेयक का प्रस्तावक और कानून मन्त्री ऐसी समिति के सदस्य अवश्य होते हैं। प्रवर समितियों के अध्यक्ष की नियुक्ति सदन का अध्यक्ष करता है। ये समितियाँ प्रत्येक सदन की पृथक्-पृथक् होती है।

(6) व्यक्तिगत सदस्यों के विधेयकों की समिति (Committee on Private Members' Bills)—इस समिति में 15 सदस्य होते हैं। इन सदस्यों को लोकसभा का अध्यक्ष 1 वर्ष के लिये नामजद करता है। इस समिति का मुख्य कार्य गैर सरकारी सदस्यों के द्वारा प्रस्तुत विधेयकों की जाँच करना है। समिति यह भी सुझाव पेश करती है कि गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिये कितना समय दिया जाये।

(7) विशेषाधिकार समिति (Committee on Privileges)—इस समिति की सदस्य सख्या 15 होती है। इन सदस्यों को भी सदन के प्रारम्भ में अध्यक्ष नामजद करता है। यदि संसद तथा उसके विशेषाधिकार का मामला उठ खड़ा होता है तो यह समिति उसकी जाँच करती है तथा इसके द्वारा प्रस्तुत विवरण के अनुसार ही सदन आगे की कार्यवाही करता है।

(8) नियम समिति (Committee on Rules)—इस समिति में भी 15 सदस्य होते है जिन्हें लोकसभा का अध्यक्ष एक वर्ष के लिये नियुक्त करता है। यह समिति संसद द्वारा निर्मित नियमों की जांच करती है। इस समिति को इन नियमों में संशोधन के लिये सिफारिश करने का अधिकार है।

(9) संसदात्मक समिति (Parliamentary Committee)—यह समिति संसद से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार करती है तथा सदन के समक्ष अपने विवरण को प्रस्तुत करती है।

(10) सरकार द्वारा प्रदत्त आश्वासन समिति (Committee on Government Assurences)—इस समिति का मुख्य कार्य यह जाँच करना है कि मन्त्रियों ने समय-समय पर जो आश्वासन दिये हैं वे कहाँ तक पूरे किये गये हैं। समिति सदन को रिपोर्ट प्रस्तुत करती है और बताती है कि मन्त्रियों ने अपने आश्वासनों, प्रतिज्ञाओं और वचनों का पालन किस सीमा तक किया है। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति लोकसभा का अध्यक्ष एक वर्ष के लिये करता है।

(11) अधीनस्थ विधि समिति (Committee on Delegated Legislation)—यह समिति यह पर्यवेक्षण करती है कि राज्यों तथा केन्द्र विभिन्न प्रशासनिक निकायों द्वारा विधि-निर्माण कार्य ठीक से चल रहा है या नहीं। सविधान तथा अन्य विधियों का सम्यक पालन अधीनस्थ प्राधिकारी कर रहे हैं या नहीं। इन

सब बातों की जाँच तथा सदन को इन बातों से समय-समय पर अवगत करना इस समिति का कार्य है।

निष्कर्ष (Conclusion)—विधि निर्माण में समितियों की अत्यन्त महत्व-पूर्ण भूमिका होती है। इनके बिना संसद अपना कार्य सुचारु नहीं कर सकती। विश्व के लगभग सभी लोकतांत्रिक देशों में संसद का कार्य भार इतना अधिक बढ़ गया है कि इन समितियों के न होने पर संसद अपना कार्य क्षमतापूर्वक नहीं कर पायेगी। परन्तु समितियों के सदस्यों को अपना कार्य करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उनका दायित्व संविधान तथा देश की निर्धारित विधायी प्रक्रिया के प्रति है। अत: उन्हें अपना कार्य करते समय सत्तारूढ़ दल को खुश करने की नीति नहीं अपनानी चाहिये।

प्रश्न 17—लोक सभा तथा राज्य सभा की शक्तियों की तुलना करते हुये यह स्पष्ट कीजिये कि क्या राज्य सभा विश्व के सबसे कमजोर द्वितीय सदनों में से है?

Compare the powers of the Lok Sabha with those of Rajya Sabha and executive whether it is one of the weakest second chamber of the world or not.

लोकसभा तथा राज्य सभा की शक्तियों की तुलना
(Comparasion betwen the Powers of Lok Sabha and that of Rajya Sabha)

(1) साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में (Relating to the ordinary Bills)—साधारण विधेयक किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। परन्तु किसी विधेयक पर दोनों में मतभेद होने की स्थिति में राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाता है। इस अधिवेशन में विधेयक के सम्बन्ध में निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है। क्योंकि लोकसभा की सदस्य संख्या राज्य सभा से लगभग दुगुनी है, अत: इस संयुक्त अधिवेशन में लोकसभा की ही विजय होती है।

यही विधि संविधान के संशोधन के बारे में भी अपनाई जाती है। इस प्रकार सवैधानिक दृष्टि से दोनों सदनों की समान शक्तियाँ हैं परन्तु व्यवहार में लोक सभा की शक्तियाँ राज्य सभा की अपेक्षा अधिक वास्तविक तथा व्यापक हैं।

(2) वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में (In Financial Matters)—वित्तीय मामलों में राज्य सभा की शक्तियाँ महत्वहीन हैं। वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किये जा सकते हैं और उसके द्वारा पास कर दिये जाने पर ही राज्य सभा की सिफारिश के लिये भेजे जाते हैं। राज्य सभा लोकसभा से आये हुये वित्तीय विधेयक को 14 दिन तक के लिये ही रोक सकती है। इस दौरान में राज्य सभा वित्तीय विधेयक को संशोधनों के साथ लोकसभा को पुनर्विचार के लिये लौटा सकती है, परन्तु लोकसभा इन संशोधनों को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिये स्वतन्त्र है।

इस प्रकार वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में राज्य सभा को 14 दिन की देरी करने का अधिकार है ।

(3) कार्यकारिणी पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में (Control over Executive)—इस क्षेत्र में भी राज्य सभा की शक्तियों का कोई महत्व नहीं है । मन्त्रि-परिषद के संसद के प्रति उत्तरदायित्व का अर्थ लोकसभा (लोकप्रिय सदन) के प्रति ही उत्तरदायित्व है । राज्य सभा के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न व पूरक प्रश्न पूछकर मन्त्रियों के विरुद्ध 'काम रोको प्रस्ताव' व 'निन्दा का प्रस्ताव' स्वीकृत करके अपना विरोध प्रकट कर सकते हैं । इसके अलावा शासन सम्बन्धी किसी कार्य की जाँच के लिये राज्य सभा जाँच समिति की भी नियुक्ति कर सकती है । परन्तु यदि लोकसभा में सरकार के विरुद्ध अविश्वास पारित हो जाता है तो उसे त्याग-पत्र देना पड़ता है ।

(4) अन्य मामलों में दोनों की शक्तियाँ समान हैं (Both have equal powers in other matters)—कुछ मामलों में दोनों सदनों के अधिकार एवं शक्तियाँ समान हैं । राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में तथा राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने के सम्बन्ध में दोनों सदनों की शक्तियाँ लगभग एक-सी हैं । यदि उपराष्ट्रपति को हटाने के लिये राज्य सभा बहुमत से प्रस्ताव पारित कर दे और लोकसभा भी उसका अनुममर्थन कर दे तो उप-राष्ट्रपति को पदच्युत कर दिया जायेगा । संविधान के संशोधनों में भी दोनों सदन भाग लेते हैं ।

राज्य सभा को दो ऐसी शक्तियाँ प्राप्त हैं जो लोकसभा को प्राप्त नहीं हैं (Sole Powers of Rajya Sabha)—ये हैं - (क) राज्य सभा राज्य सूची में उल्लिखित किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है । इस प्रकार ऐसे विषय पर संसद को कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है । (ख) राज्य सभा ही अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना के लिये प्रस्ताव स्वीकृत कर सकती है ।

राज्य सभा की उपयोगिता (Utility of Rajya Sabha)—लोकसभा और राज्य सभा के पारस्परिक सम्बन्धों व उनकी शक्तियों से यह निष्कर्ष निकालना तो स्वाभाविक है कि राज्य सभा लोकसभा की तुलना में एक शक्तिहीन सदन है । अमेरिकन सीनेट की तुलना में उसे बहुत कम शक्तियाँ प्राप्त हैं । सीनेट तो विश्व के द्वितीय सदनों में सर्वाधिक शक्तिशाली है जबकि राज्य सभा की शक्तियों के सम्बन्ध में डा० एम० पी० शर्मा का कथन ठीक है कि, "शक्तियों की दृष्टि से राज्य सभा विश्व के द्वितीय सदनों में सर्वाधिक कमजोर सदन है ।" कानून निर्माण में, मन्त्रि-मण्डल पर नियन्त्रण रखने के सम्बन्ध में वित्तीय क्षेत्र में अन्तिम निर्णय लोकसभा के पास ही सुरक्षित है ।

राज्य सभा की उपर्युक्त आलोचनायें एकपक्षीय हैं, राज्य सभा को भले ही लोकसभा की तुलना मे सीमित शक्तियाँ प्राप्त हों परन्तु उसकी उपयोगिता इस रूप

में अवश्य है कि वह हमारी व्यवस्था के संघीय स्वरूप का प्रतीक है। बी० एन० पायली का कथन है कि, 'राज्य सभा एक निरर्थक अथवा विधि-निर्माण पर रोक लगाने वाला सदन नहीं है। वास्तव में राज्य सभा शासन तन्त्र का एक आवश्यक अग है, केवल दिखावे मात्र का सदन नही है।" राज्य सभा में यद्यपि सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है फिर भी उसकी स्वीकृति बिना राज्यों के क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। राज्य सभा की पहल पर ही ससंद राज्य सूची के विषयों पर शान्तिकाल में भी कानून बना सकती है। राज्य सभा ही अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण कर सकती है। राष्ट्रपति पर जब लोकसभा महाभियोग लगायेगी तो राज्य सभा न्यायालय के रूप में बैठकर मामले की जाँच करेगी। राज्य सभा स्वयं भी महाभियोग लगा सकती है। राष्ट्रपति की आपातकालीन घोषणा पर राज्य सभा की स्वीकृति लेना भी आवश्यक है। इसके वाद-विवाद भी शान्तिपूर्वक और उच्चस्तरीय होते हैं। राज्य सभा में प्रायः वही व्यक्ति आते हैं जिन्हें विभिन्न क्षेत्रों का अनुभव होता है।

संसद की शक्तियों पर सीमायें (Limitations on the powers of Parliament)—यद्यपि भारतीय संसद को विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त हैं फिर भी वह ब्रिटिश संसद की तरह सम्प्रभु नहीं है। हमारे देश में संविधान सर्वोच्च है। संसद संविधान के मौलिक स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। संसद की शक्तियों की निम्नलिखित सीमायें हैं—

(1) संसद साधारणतया राज्य सूची के विषयों पर कानून नहीं बना सकती है। (2) संसद द्वारा पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर आवश्यक हैं और राष्ट्रपति साधारणतया विधेयकों को एक बार ससद के पुर्नविचार के लिये लौटा सकता है। (3) संसद ब्रिटिश संसद की भाँति साधारण कानून बनाने की विधि द्वारा ही सविधान में संशोधन नहीं कर सकती है। (4) ससद द्वारा पारित उन कानूनों को जो सविधान के विरुद्ध हैं, सर्वोच्च न्यायालय "न्यायिक समीक्षा" (Judicial Reviw) के अपने अधिकार के अन्तर्गत अवैध घोषित कर सकता है। (5) जनता के मूल अधिकार भी संसद की शक्तियों को सीमित करते हैं। (6) संचित निधि (Consolidated fund) के विषयों पर ससद वाद-विवाद तो कर सकती है परन्तु उन पर मतदान नहीं कर सकती। (7) संसद देश के संघीय ढाँचे को एकात्मक ढाँचे में नहीं बदल सकती है।

राज्य सभा की अपेक्षा लोकसभा कहीं अधिक शक्तिशाली है (Lok Sabha is more Powerful than Rajya Sabha)—यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन की तरह भारत में भी निचला सदन ही अधिक शक्तिशाली है। जिस प्रकार ब्रिटेन में संसद की सर्वोच्चता का आशय कॉमन सभा की सर्वोच्चता से है उसी प्रकार भारत में भी लोकसभा ही सर्वोच्च है। डा० एस० पी० शर्मा का कहना है

कि, "यदि संसद राज्य का सर्वोच्च अंग है तो लोकसभा ही संसद है, व्यावहारिक रूप में यही संसद है।"[1]

प्रश्न 18—भारतीय लोकसभा के अध्यक्ष पर टिप्पणी लिखिये।

Describe the powers and functions of the Speaker of the Lok Sabha.

लोक सभा का अध्यक्ष (Speaker of the Lok-Sabha)—संविधान के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि लोकसभा अपनी कार्यवाही के संचालन के लिये अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष निर्वाचित करेगी। यह निर्वाचन नयी लोक सभा के प्रथम अधिवेशन के पहिले दिन ही होता है। ब्रिटेन की भाँति हमारे यहाँ लोकसभा अध्यक्ष का पद पूरी तरह गैर राजनीतिक नहीं है। लोकसभा अध्यक्ष के चुनाव में विभिन्न राजनीतिक दल दलीय आधार पर भाग लेते हैं। लोकसभा में बहुमत दल का प्रत्याशी ही इस पद पर निर्वाचित होता है। हाँ, यह परम्परा अवश्य है कि जो व्यक्ति लोकसभा का अध्यक्ष निर्वाचित हो जाता है, वह अपने दल की सदस्यता से त्याग पत्र दे देता है। अध्यक्ष का निर्वाचन 5 वर्ष के लिये होता है। जब अध्यक्ष लोकसभा का सदस्य नहीं रहता तो वह अध्यक्ष भी नहीं रह सकता है। 5 वर्ष से पूर्व अध्यक्ष अपने पद से त्यागपत्र भी दे सकता है। अध्यक्ष को पदच्युत भी किया जा सकता है। इसके लिये आवश्यक है कि इस आशय का प्रस्ताव लोकसभा बहुमत से स्वीकार करे। इस प्रकार का प्रस्ताव लोकसभा में 14 दिन पूर्व अध्यक्ष को सूचना देने के बाद ही पेश किया जा सकता है। यदि इनमें से कोई बात नहीं होती तो 5 वर्ष के बाद लोकसभा भंग होने पर भी अध्यक्ष नयी लोकसभा की प्रथम बैठक के पहले दिन तक अपने पद पर बना रहता है। जब लोकसभा अध्यक्ष को हटाये जाने के प्रस्ताव पर विचार-विमर्श कर रही होती है तो अध्यक्ष सभापति के आसन को ग्रहण नहीं कर सकता।

अध्यक्ष को 3,000 रुपये प्रतिमाह तथा उपाध्यक्ष को 2,000 रुपये प्रतिमाह वेतन मिलता है।

अध्यक्ष के कार्य और शक्तियां (Powers and Functions of the Speaker)—लोकसभा के अध्यक्ष को विस्तृत शक्तियाँ और उत्तरदायित्व प्राप्त हैं, लोकसभा की कार्यवाही के संचालन के सम्बन्ध में उसका निर्णय अन्तिम होता है। उसे संक्षेप में निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं—

(1) वह लोकसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है और सदन की कार्यवाहियों को चलाता है। (2) वह सदन में शान्ति और सुव्यवस्था रखने के लिये उत्तरदायी है। अनुशासन भंग करने वालों को वह सभा से चले जाने की आज्ञा दे

1. "If the Parliaments is the supreme organ of the state, the Lok Sabha is the supreme organ of its Parliament. In fact, for all practical purposes it is the Parliament." —Dr. M. P. Sharma

सकता है । अध्यक्ष के इन कार्यों में सहायता देने के लिये सदन में मार्शल भी रहता है । (3) राष्ट्रपति के उद्घाटन भाषण के सम्बन्ध में किये जाने वाले वाद-विवादों आदि का समय निश्चित करता है । वही प्रश्नों को स्वीकार करता है और आपत्ति-जनक या नियम विरुद्ध होने पर उन्हें अस्वीकार भी करता है । (4) सदन के नेता के परामर्श से कार्यवाहियों का क्रम निश्चित करता है । (5) सदन में बहुत अधिक गड़बड़ी अथवा अव्यवस्था फैलने पर वह सदन की कार्यवाही स्थगित भी कर सकता है । (6) दोनों सदनों का अधिवेशन होने पर वही अध्यक्षता करता है । (7) वह सदन के सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करता है । (8) किसी प्रश्न पर सदन में पक्ष-विपक्ष में बराबर-बराबर मत आने की स्थिति में वह 'निर्णायक मत' (Casting Vote) भी देता है । (9) अध्यक्ष ही यह निर्णय करता है कि कोई विधेयक धन-विधेयक है अथवा नहीं । (10) अध्यक्ष ही किसी प्रश्न पर मतदान करता है और परिणाम की घोषणा करता है । (11) सदन में कोई भी सदस्य उसी की आज्ञा से ही भाषण कर सकता है । (12) वह सदन तथा राष्ट्रपति के मध्य विचार-विनिमय का माध्यम है । (13) यह सदन की कार्यवाही से ऐसे शब्दों को निकाले जाने का आदेश दे सकता है जिन्हें वह असंसदीय और अशिष्ट समझता है । (14) वह प्रवर-समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति करता है । (15) वह संसद की कुछ समितियों का पदेन सभापति होता है । (16) अध्यक्ष सदन में दर्शकों और प्रेस प्रतिनिधियों के प्रवेश पर भी नियन्त्रण लगा सकता है ।

लोकसभा के अध्यक्ष का मूल्यांकन (Evaluation of the Office of the Speaker)—लोकसभा का अध्यक्ष सदन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा गणमान्य व्यक्ति है । मावलंकर, जो स्वतन्त्र भारत की लोकसभा के सर्वप्रथम अध्यक्ष थे, ने कहा है, "उसकी (अध्यक्ष की) सत्ता सदन में सर्वोच्च है ।" (His authority is Supreme in the House"—Mavlanker) । सदन में उसके आदेश अन्तिम होते हैं तथा उन्हें कभी भी चुनौती नहीं दी जा सकती । वह नियम के उल्लंघन के आरोप में सदन के किसी भी व्यक्ति को सदन से बाहर निकाल सकता है । उसकी अनुमति के बिना सदन का कोई भी सदस्य प्रश्न नहीं पूछ सकता है । सदन की व्यवस्था बनाये रखना उसका कर्त्तव्य है । सदन में सभी विधेयक उसके हस्ताक्षरों के बिना न तो राष्ट्रपति के पास ही भेजे जा सकते हैं और न राज्य-सभा में ही । लोकसभा की कुछ समितियों की नियुक्ति अध्यक्ष के द्वारा ही की जाती है । वह कुछ समितियों का तो पदेन अध्यक्ष भी होता है ।

श्री मावलंकर ने 'अध्यक्ष पद' (The Office of the Speaker)—लेख में लिखा है "संसदीय लोकतन्त्र के समूचे ढाँचे में, अध्यक्ष ही एकमात्र तानाशाह है, जिसका अर्थ यह है कि वह अपनी शक्तियों का उपयोग बिना किसी पूर्व परामर्श तथा बिना किसी की सहमति के करता है । उसकी सत्ता को चुनौती नहीं दी जा सकती ।"

8 उच्चतम न्यायालय
(The Supreme Court)

प्रश्न 19—भारत के उच्चतम न्यायालय का संविधान और नागरिक अधिकारों की रक्षा में जो भाग है, उसका वर्णन कीजिये।

"भारत में सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ विश्व के किसी कोने के सर्वोच्च न्यायालय से अधिक हैं।" विवेचना कीजिये एवं उपयुक्त उदाहरण दीजिये।

भारतीय संविधान में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के महत्व की विवेचना कीजिये।

संक्षेप में भारत के सर्वोच्च न्यायालय का संगठन, अधिकार तथा कृत्यों का वर्णन कीजिये।

भारत के उच्चतम न्यायालय की रचना तथा अधिकार क्षेत्र का वर्णन कीजिये।

भारतीय उच्चतम न्यायालय के संगठन एवं शक्तियों की व्याख्या कीजिये।

उच्चतम न्यायालय के सगठन का वर्णन कीजिये तथा संविधान की सुरक्षा एवं मूल अधिकारों के संरक्षण को ध्यान में रखते हुए उसके कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

Discuss the organization and the powers of Supreme Court.

Describe the organization of Supreme Court. Also discuss its rule its safeguarding constitution and fundamental rights.

उच्चतम न्यायालय
(Supreme Court)

उच्चतम न्यायालय का संगठन (Organization)—संविधान के अनुच्छेद 123 के अनुसार भारत का एक उच्चतम न्यायालय होगा, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा सात अन्य न्यायाधीश होंगे। परन्तु संसद कानून द्वारा यह संख्या बढ़ा सकती है। सन् 1956 में यह 10 तथा 1960 में बढ़ाकर 13 कर दी गयी। सन् 1975 में संसद के द्वारा सात के स्थान पर यह संख्या 18 निर्धारित कर दी गई। अतः संविधान के अनुसार संसद आवश्यकतानुसार न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि कर सकती है।

न्यायाधीशों की योग्यतायें—उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये अग्रलिखित योग्यतायें होनी आवश्यक हैं—.

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) कम से कम 5 वर्ष तक वह किसी उच्च न्यायालय अथवा दो या दो से अधिक न्यायालयों का लगातार न्यायाधीश रह चुका हो।

(3) वह किसी उच्च न्यायालय मे अथवा दो या दो से अधिक न्यायालयों में लगातार क्रमश: 10 वर्ष तक अधिवक्ता (Advocate) रह चुका हो।

(4) राष्ट्रपति के विचार में, वह देश का प्रसिद्ध विधि-शास्त्री होना चाहिये।

न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of the Judges)–संविधान के अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है। न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेता है। यह परामर्श लेना राष्ट्रपति के लिये आवश्यक नहीं है परन्तु ऐसी परम्परा है। यदि किसी समय उच्चतम न्यायालय के अधिवेशन बुलाने के समय अथवा जारी रखने के लिये न्यायाधीशों की गणपूरक संख्या पूरी न हो तो राष्ट्रपति की अनुमति से उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय के किसी ऐसे न्यायाधीशों में से जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखता हो, नियुक्त कर सकता है। भारत का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से उच्चतम न्यायालय के किसी अवकाश प्राप्त न्यायाधीश को भी आवश्यक काल के लिये नियुक्त कर सकता है।

न्यायाधीशों के वेतन भत्ते (Salaries and allowences of the Judges)—संविधान के अनुसार उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 5000 रु० मासिक तथा अन्य न्यायाधीशों को 4000 रु० मासिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों को रहने के लिये बिना किराये का बंगला तथा अन्य भत्ते मिलते हैं। अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को किस दर से पेंशन आदि प्रदान किये जायें, इसका निर्धारण संसद कानून बनाकर करेगी। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को निष्पक्षता तथा स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिये संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के पश्चात् उसके वेतन, भत्ते तथा अन्य सुविधाओं में कमी नहीं की जा सकती है। परन्तु आर्थिक संकट की घोषणा के अन्तर्गत राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते में कटौती करने का आदेश दे सकता है।

न्यायाधीशों का कार्यकाल (Tenure of the Judges)—उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश 65 वर्ष की अवस्था पूर्ण होने तक अपने पद पर कार्य कर सकते हैं। परन्तु सेवा निवृत्ति से पूर्व भी उसे अभियोग के द्वारा हटाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सेवा निवृ से पूर्व भी कोई भी न्यायाधीश अपनी इच्छानुसार राष्ट्रपति को सम्बोधित करके स्वेच्छा से त्याग-पत्र दे सकता है।

न्यायाधीशों की पदच्युति (Termination of the Judges)—उच्चतम न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को 65 वर्ष की आयु से पूर्व भी कदाचार और अयोग्यता के कारण पद से पृथक् किया जा सकता है। इसके लिये यह विधि है कि संसद के दोनों सदन अपने सदस्यों के बहुमत से या उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से राष्ट्रपति से यह प्रार्थना करें कि अमुक न्यायाधीश के कदाचार या अयोग्यता के कारण अपने पद के योग्य नहीं रहा है। अतः उसे न्यायाधीश के पद से पृथक् कर देना चाहिये। ऐसा प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों द्वारा एक ही सत्र में स्वीकृत हो जाना आवश्यक है। ऐसा प्रस्ताव पेश होने पर न्यायाधीश को इस बात का पूरा अवसर दिया जायेगा कि वह अपनी पैरवी कर सके। उच्चतम न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को तब तक अपने पद से पृथक् नहीं किया जा सकता जब तक कि वह वास्तविक रूप में अयोग्य न हो तथा उस पर कदाचार का आरोप सिद्ध न हो गया हो। न्यायाधीश को अपदस्थ करने की प्रणाली अत्यन्त जटिल है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता एवं निष्पक्षता बनाये रखने के लिये ऐसा किया गया है।

शपथ (Oath)—अपने पद को ग्रहण करने से पूर्व प्रत्येक न्यायाधीश को राष्ट्रपति या उसके द्वारा नियुक्त किसी पदाधिकारी के सम्मुख शपथ लेनी पड़ती हैं। उसको निम्नलिखित शपथ लेनी पड़ती है—

"मैं····· अमुक·····ईश्वर की शपथ लेता हूँ, सत्य निष्ठापूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची भक्ति रखूंगा और अपनी पूर्ण योग्यता, जानकारी और विवेक से ठीक ठीक और वफादारी के साथ बिना द्वेष या प्रीति के अपने कर्त्तव्य को पूरा करूंगा और संविधान तथा कानून का मान कायम रखूंगा।"

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति सम्बन्धी विवाद (The Issue of the Chief Justice of Supreme Court)—सन् 1953 से पूर्व सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति प्रायः वरिष्ठता के आधार पर ही की जाती थी। यह एक मान्य परम्परा थी। सन् 1973 में, सर्वप्रथम, ए० एन० रे० को माननीय श्री जे० एम० शेलट, के० एम० हेगडे तथा ए० एन० ग्रोवर की वरिष्ठता क्रम का उल्लंघन करके मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। तत्कालीन सरकार के इस कार्य की तीखी आलोचना की गई। सरकार के इस कार्य के विरोध में उपरोक्त तीनों न्यायाधीशों ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। इसके पश्चात् सन् 1975 में भी माननीय न्यायाधीश बेग को भी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करते समय इस वरिष्ठता क्रम का उल्लंघन किया गया। वस्तुस्थिति यह है कि अब मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति प्रधानमन्त्री राजनीतिक आधार पर करता है। राष्ट्रपति तो उस नियुक्ति की घोषणामात्र ही करता है।

उच्चतम न्यायालय की कार्य-विधि (The Working of the Supreme Court) उच्चतम न्यायालय की कार्य-विधि के सम्बन्ध में संविधान में कुछ

व्यवस्थायें की गई हैं। इस सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार संविधान द्वारा संसद को दिया गया है और जिन बातों पर संविधान और संसद ने कोई व्यवस्था न की हो ऐसी बातों पर स्वयं उच्चतम न्यायालय की अनुमति से कानून बन सकता है। उच्चतम न्यायालय की कार्य-विधि के सम्बन्ध में निम्न व्यवस्थाये की गई हैं—

(1) जिन विषयों का सम्बन्ध संविधान की व्याख्या के साथ हो या जिनमें कोई संवैधानिक प्रश्न उपस्थित होता हो या कानून के अर्थ को समझाने की आवश्यकता हो या जिन विषयों पर विचार करने का कार्य राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को सौंपा गया हो, उनकी सुनवाई उच्चतम न्यायालय के कम से कम 5 न्यायाधीशों के द्वारा की जायेगी।

(2) उच्चतम न्यायालय के सम्मुख किसी ऐसे मुकदमे की अपील भी प्रस्तुत की जा सकती है, जिसकी सुनवाई के पश्चात् यह अनुभव किया जाये कि उसमें संविधान की व्याख्या करना अनिवार्य है या कानून के अभिप्राय को तात्विक रूप से प्रकट करना होगा। इसी प्रकार का मुकदमा प्रारम्भ में 5 से कम न्यायाधीशों के सम्मुख उपस्थित किया जायेगा और उसकी व्याख्या के अनुसार उसका निर्णय किया जायेगा।

(3) उच्चतम न्यायालय के सब निर्णय खुले तौर पर दिये जायेंगे।

(4) उच्चतम न्यायालय के निर्णय बहुमत के आधार पर होंगे। परन्तु यदि बहुमत के निर्णय से कोई न्यायाधीश सहमत नहीं है, तो वह अपना पृथक् निर्णय दे सकता है, परन्तु बहुमत से हुआ निर्णय ही मान्य समझा जायेगा।

उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार
(Jurisdiction of the Supreme Court)

उच्चतम न्यायालय का अधिकार क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। उसका क्षेत्राधिकार प्रारम्भिक (Original), अपीलीय (Appellate) तथा मन्त्रणा सम्बन्धी (Advisory) है। इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये कतिपय आदेश अथवा लेख जारी करने का अधिकार भी है। उसके अधिकार क्षेत्र की विवेचना हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं—

(1) प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र (Original Jurisdiction)—सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित विषयों पर प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है—

(i) जब कोई विवाद संघ सरकार तथा अन्य किसी राज्य की सरकार के बीच में हो।

(ii) जब कोई विवाद भारत सरकार तथा एक या एक से अधिक राज्यों के मध्य हो।

(iii) जब कोई विवाद दो राज्यों या अधिक राज्यों के बीच में हो।

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार उन विवादों तक ही सीमित है, जो भारत सरकार तथा राज्यों अथवा स्वयं राज्यों के बीच में हो।

इस प्रकार के समस्त विवाद प्रारम्भिक रूप मे सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किये जायेंगे। नागरिकों के मौलिक अधिकारों के संरक्षण के सम्बन्ध में भी उच्चतम न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं।

(2) अपील करने का अधिकार (Appellate Jurisdiction)—सर्वोच्च न्यायालय को संवैधानिक, दीवानी व फौजदारी के मामलों में सभी न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है। इस अधिकार को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(i) संवैधानिक मामले (Constitutional issues)—जब कोई उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि मुकदमे में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कोई सारमय प्रश्न है, तो उनके पुर्नविचार की प्रार्थना सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है।

(ii) दीवानी मामले (Civil matters)—दीवानी के मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में तभी अपील सुनी जा सकती है, जबकि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विवाद-ग्रस्त विषय का मूल्य बीस हजार रुपये से कम नहीं है।

(iii) फौजदारी के मामले (Criminal matters)—फौजदारी के मामलों में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध तभी अपील सुनी जा सकती है, जबकि—(अ) उच्च न्यायालय ने किसी अपराधी को मृत्यु दण्ड दिया हो। (ब) यदि किसी उच्च न्यायालय ने अपनी न्यायालय से मुकदमा मंगाकर स्वयं अपराधी को मृत्यु दण्ड दिया है। (स) या कोई उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विवादग्रस्त मामला सर्वोच्च न्यायालय में अपील योग्य है।

(iv) विशिष्ट मामले (Special issues)—उपरोक्त मामलों के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय को भारत के राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा दिये गये किसी भी निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है।

(3) मन्त्रणा सम्बन्धी क्षेत्राधिकार (Advisory Juridicting)—सर्वोच्च न्यायालय को विधि अथवा तथ्य सम्बन्धी सार्वजनिक महत्व के उन प्रश्नों पर मंत्रणा देने का अधिकार है, जो राष्ट्रपति समय-समय पर उनके विचारार्थ भेजे, परन्तु राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई मन्त्रणा को मानने के लिये बाध्य नहीं है।

(4) नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक (Protector of the fundamental Rights of the Citizens)—सर्वोच्च न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक है। नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये उसे आवश्यक आदेश, लेख एवं निर्देश जारी करने का अधिकार है। संविधान धारा 32 (1) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालग को आदेश देता है कि 'वह मूल अधिकारों को लागू कराने के लिये आवश्यक कार्यवाही करे।' सर्वोच्च न्यायालय को इस

दायित्व का निर्वाह करने के लिये पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह विभिन्न निर्देशों के द्वारा कार्यपालिका को नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करने से रोक सकता है। भारत के भूतपूर्व एटार्नी जनरल श्री सीतलवाड के अनुसार, "संविधान में मूलाधिकारों का विस्तृत वर्णन किया गया है तथा ऐसे प्रतिबन्ध भी लगाये गये हैं जो मूलाधिकारों को सीमित करते हैं। अतः सर्वोच्च न्यायालय को बड़ी ही बुद्धिमत्तापूर्वक नागरिकों के मूलाधिकारों की रक्षा के दायित्व को निर्वहन करना है। न्यायालय पर यह दायित्व है कि वह अपने अधिकारों का प्रयोग ऐसी बुद्धिमत्ता से करे कि नागरिकों की स्वतन्त्रता और देश की स्वतन्त्रता के मध्य एक उचित सामंजस्य हो सके जिससे नागरिकों, राज्य तथा समाज सभी का विकास हो सके।"

(5) पुनरावलोकन का अधिकार (Right to revise its own decisions)—सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने द्वारा किये गये किसी निर्णय का फिर से अवलोकन कर सके। वह अपने द्वारा दिये गये किसी भी निर्णय पर पुर्नविचार करके उसमें संशोधन कर सकता है। वह संसद के बनाये गये कानूनों का भी न्यायायिक पुनरावलोकन कर सकता है।

(6) संविधान की रक्षा करना (To guard the Constitution)—उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय संविधान की रक्षा करता है। यदि संसद द्वारा बनाया गया कोई कानून संविधान की उपेक्षा करता है, तो सर्वोच्च न्यायालय को उस कानून को अवैध घोषित करने का अधिकार है।

सर्वोच्च न्यायालय की स्वतन्त्रता (Independence of the Supreme Court)—सर्वोच्च न्यायालय तभी स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकता है जबकि कार्यपालिका के दबाव से मुक्त रहे। सर्वोच्च न्यायालय को कार्यपालिका के दबाव से मुक्त करने के लिये संविधान में निम्नलिखित व्यवस्थायें की गई हैं—

(1) न्यायाधीशों का वेतन संविधान द्वारा निर्धारित है। संसद को उनके वेतन तथा भत्तों में कटौती करने का अधिकार नहीं है।

(2) न्यायाधीशों को मनमाने ढंग से अपदस्थ नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका कार्यकाल संविधान द्वारा सुरक्षित है। उन्हें महाभियोग के द्वारा ही हटाया जा सकता है। महाभियोग की प्रक्रिया अत्यन्त कठिन है।

(3) संसद सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के किसी ऐसे कार्य पर विचार नहीं कर सकती, जिन्हें उन्होंने अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुये किया हो।

(4) अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् न्यायाधीशों को किसी भी न्यायालय में वकालत करने का अधिकार नहीं दिया गया है, जिससे उसके सम्मुख कोई प्रलोभन न हो और वे स्वतन्त्रतापूर्वक निष्पक्ष न्याय कर सकें।

42वाँ संविधान संशोधन तथा सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति (Forty second constitution amendment and the position of the Supreme Court)—संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार

क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये गये हैं। संविधान में 131(अ) धारा को जोड़ दिया गया है जिसके अनुसार अब सर्वोच्च न्यायालय में किसी भी केन्द्रीय कानून को चुनौती दी जा सकेगी। परन्तु साथ ही यह जोड़ दिया गया कि संसद द्वारा पारित किसी भी संवैधानिक संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस प्रकार इस संशोधन विधेयक द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को और अधिक सीमित कर दिया गया तथा संसद को सर्वोच्चता के सिद्धान्त और दृढ़ कर दिया गया।

42वें संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय में नागरिक अधिकारों को परिभाषित करने की शक्ति को सीमित कर दिया गया। इससे पूर्व सर्वोच्च न्यायालय में नागरिक अधिकारों के ऊपर कार्यपालिका द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों को आसानी से चुनौती दी जा सकती थी, परन्तु इस संशोधन विधेयक के पास हो जाने के पश्चात् अब सर्वोच्च न्यायालय की इस शक्ति पर रोक लगा दी गयी।

42वें संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत 144अ नया अनुच्छेद जोड़ा गया। इस अनुच्छेद के द्वारा यह निर्धारित कर दिया गया कि किसी भी केन्द्रीय कानून की वैधता अथवा संवैधानिकता के प्रश्न का निर्णय करने के लिये उच्चतम न्यायालय के कम से कम 7 न्यायाधीशों की पीठ (Bench) बैठेगी। ऐसे प्रश्न के ऊपर जिसमें सांवैधानिकता का प्रश्न निहित हो, 2/3 के बहुमत से ही निर्णय दिया जा सकेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 42वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों को और अधिक सीमित कर दिया गया।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय की अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से तुलना (Comparasion of India's Supreme Court with that o America)— 42वें संविधान संशोधन के द्वारा भारत के सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति में जो ह्रास हुआ था जो जनता पार्टी के शासन काल में 45वें संशोधन विधेयक के द्वारा उसे पुनः प्रतिष्ठित कर दिया गया। भारत के सर्वोच्च न्यायालय की तुलना हम अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से निम्न प्रकार कर सकते हैं—

(1) भारत के सर्वोच्च न्यायालय तथा अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार भारत के सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को संघ तथा संघ की विभिन्न इकाइयों के मध्य विवादों के अतिरिक्त राजदूतों, वाणिज्यदूतों, सचिवों, नौ सेना के अधिकारियों तथा अन्य समूहवर्ती मामलों को सुनने का अधिकार है।

(2) अपीलीय मामलों में भारत के सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षा अधिक विस्तृत हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय को दीवानी, फौजदारी तथा संवैधानिक मामलों में अपील सुनने का अधिकार है। इसके

विपरीत अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को केवल संवैधानिक मामलों में ही अपील सुनने का अधिकार है।

(3) भारत तथा अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को संसद तथा राज्य विधान सभाओं द्वारा पारित कानूनों की वैधानिकता की जांच करने का अधिकार प्राप्त है। परन्तु इस क्षेत्र में भारत के सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ सीमित हैं। भारत का सर्वोच्च न्यायालय केवल उन्हीं कानूनों की वैधानिकता की जाँच कर सकता है जो कि संसद अथवा राज्य विधान सभाओं के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं। 24वें संशोधन विधेयक द्वारा भारतीय संसद ने यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि वह संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है। इसके विपरीत अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय यह देखता है कि कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों में 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due Process of Law) अपनायी गयी है अथवा नहीं। दोनों की शक्तियों में तुलना करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि भारत में 'विधायी सर्वोपरिता' (Legislative supremacy) के सिद्धान्त को अपनाया गया है जबकि अमेरिका में 'न्यायिक सर्वोपरिता' (Judicial supremacy) को अपनाया गया है। इसलिये अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय तृतीय सदन के रूप में कार्य करता है। न्यायाधीश ह्यूज के अनुसार, "हम संविधान के अन्तर्गत अवश्य हैं परन्तु वही हैं जो न्यायाधीश कहते हैं।" "We are under a constitution but the constitution is what the judges say it is."—Justice Hughes)

(4) भारत तथा अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति के मध्य एक अन्तर यह है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय को परामर्श देने का अधिकार प्राप्त है परन्तु अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

(5) भारत तथा अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त है। यह नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिये कार्यपालिका को निर्देश जारी कर सकता है। इसके अतिरिक्त यह अभिलेख न्यायालय के रूप में भी कार्य करता है।

सर्वोच्च न्यायालय का महत्व (Importance of the Supreme Court)—सर अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर का कहना है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संसार के किसी भी सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त हैं। भारत का सर्वोच्च न्यायालय न्यायपालिका का सर्वोच्च अंग होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। संविधान तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करना इसका अत्यन्त महत्व का दायित्व है। केन्द्र तथा राज्य अथवा राज्यों के आपसी विवादों में निर्णय देने के अधिकार के कारण इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह देश में संघीय व्यवस्था का प्रतीक है तथा संघवाद का रक्षक है।

9 राज्य प्रशासन
(Administration of States)

प्रश्न 20—राज्यपाल की स्थिति तथा उसके अधिकारों की व्याख्या कीजिये ।

राज्य के प्रशासन में राज्यपाल का क्या स्थान है ?

राज्यपाल की स्थिति, शक्ति तथा कार्यों का विवेचन कीजिये ।

राज्यपाल की शक्तियों की परीक्षा कीजिये ।

भारतीय राज्य के राज्यपाल की स्थिति तथा शक्तियों का वर्णन कीजिये ? उसकी वास्तविक स्थिति क्या है ?

Examine the Powers and Position of the Governor.

Describe the Position and the Powers of Governor in a state and also assess his real positions.

राज्यपाल–राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष
(Governor–The Head of the States Executive)

राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति (Constitutional Status of the Governor)—भारतीय संविधान के अनुच्छेद 153 के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक राज्यपाल होगा । राष्ट्रपति की भाँति राज्यपाल भी राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष होता है । राज्य के समस्त कार्य उसी के नाम में होते हैं । राज्य की समस्त कार्यकारिणी की शक्ति उसके पद में निहित है। जिस प्रकार संघ का राष्ट्रपति स्वयं या अपने अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा संघ का शासन कार्य संचालित करता है, उसी प्रकार राज्यपाल भी संविधान के अधीन रहकर स्वयं या अपने अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा कार्यकारिणी की शक्तियों का उपयोग करता है । संविधान के अनुच्छेद 154 में यह स्पष्ट रूप से उपबन्धित कर दिया गया है कि राज्य की समस्त कार्यकारिणी शक्तियाँ उस राज्य के राज्यपाल में निहित होंगी । परन्तु वास्तविकता यह है कि उसकी समस्त शक्तियों का प्रयोग राज्य मन्त्रि-मण्डल द्वारा किया जाता है ।

राज्यपाल की नियुक्ति (Appointment of the Governor)—संविधान के मूल प्रारूप में राज्यपाल के जनता द्वारा निर्वाचित होने का प्रावधान था । इस प्रश्न पर संविधान सभा में बहुत वाद-विवाद हुआ और अन्त में यह निश्चय किया

गया कि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जायेगा। इस मत के पक्ष में निम्नलिखित कारण दिये गये हैं—

(1) यदि राज्यपाल पद के लिये चुनाव होता है तो वह व्यक्तिगत आधार पर संघर्ष का रूप लेकर राज्य की जनता के राजनीतिक सदाचार पर अच्छा प्रभाव न डालेगा।

(2) यदि राज्यपाल जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होगा, तो वह यह भी सोच सकता है कि वह मुख्यमन्त्री से श्रेष्ठ है। इससे संसदीय व्यवस्था की प्रतिष्ठा को खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसीलिये राज्यपाल के पद को निर्वाचित न बनाकर मनोनीत बनाया गया।

(3) राज्यपाल यदि सीधे जनता द्वारा निर्वाचित न होकर राज्य विधान-मण्डलों द्वारा निर्वाचित होता, तो उस स्थिति में उसके तथा मन्त्रि-परिषद के बीच संघर्ष अवश्य कम हो जाता, किन्तु इस व्यवस्था के अधीन राज्यपाल के उस राजनीतिक दल की कठपुतली बन जाने का डर था, जिसके समर्थन से वह निर्वाचित होता। इस प्रकार निर्वाचन में यह सम्भावना थी कि राज्य की सरकार की एकता संकट में पड़ जाती और राज्यपाल दलबन्दी में पड़ जाता।

(4) निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था से यह भी डर था कि वह संघ और राज्य के बीच में संघर्ष होने की स्थिति में राज्य का पक्ष लेता।

उपरोक्त कारणों से संविधान निर्माताओं ने बाद में राज्यपाल के पद को निर्वाचित बनाने के विचार को त्याग दिया। केन्द्र को सशक्त बनाने के विचार से राज्यपाल को राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में रखने की व्यवस्था की गयी।

योग्यतायें (Qualifications)—संविधान के अनुच्छेद 157 में राज्पाल के पद के लिये निम्नलिखित योग्यतायें उपबंधित की गई हैं—

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

(3) वह भारतीय संघ व उसके अन्तर्गत किसी राज्य के विधान मण्डल या सदन का सदस्य न हो। यदि वह नियुक्ति के समय इस प्रकार किसी विधान-मण्डल के सदन का सदस्य न हो। यदि वह नियुक्ति के समय इस प्रकार किसी विधान-मण्डल के सदन का सदस्य हो तो उसे उससे त्यागपत्र देना होगा।

(3) राज्यपाल कोई अन्य लाभ का पद धारण न करेगा।

कार्यकाल (Tenure)—संविधान के अनुच्छेद 156 में राज्यपाल की पदावधि का उपबन्ध दिया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्यपाल का कार्यकाल राष्ट्रपति के परसाद पर्यन्त तक होता है। संविधान द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति 5 वर्षों के लिये होती है, परन्तु इससे पूर्व भी राज्यपाल स्वयं भी राष्ट्रपति को सम्बोधित करके अपना त्यागपत्र दे सकता है। अपना कार्यकाल समाप्त होने पर भी वह तब तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक कि उसके उत्तराधिकारी की नियुक्ति

नहीं हो जाती । संयुक्त राज्य अमेरिका मे राज्यपाल को विधान मण्डल द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। परन्तु भारत में राष्ट्रपति ही 5 वर्ष से पूर्व उसे पद से पृथक् कर सकता है।

विमुक्तियाँ (Immunities)—संविधान के अनुसार राज्यपाल को भी कुछ विमुक्तियाँ प्राप्त हैं। अपने कर्त्तव्यों व शक्तियों का प्रयोग करते हुए, वह जो भी कार्य करे उसके लिये उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जासवेगा परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह उन कार्यों के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं है। कोई भी व्यक्ति सरकार के विरुद्ध मुकदमा चला सकता है पर व्यक्तिगत रूप से राज्यपाल के विरुद्ध नहीं। इसके अतिरिक्त राज्यपाल के विरुद्ध न तो कोई फौजदारी का मुकदमा चलाया जा सकता है, न कोई अदालत उसकी गिरफ्तारी के लिये कार्यवाही कर सकती है। यदि किसी व्यक्ति को राज्यपाल के विरुद्ध दीवानी मुकदमा करना हो तो उसे दो मास का नोटिस राज्यपाल को देना चाहिये और इस नोटिस में मामले का पूरा-पूरा विवरण दिया होना चाहिये।

शपथ (Oath)—राज्यपाल अपना पद ग्रहण करने से पूर्व निम्नलिखित शपथ लेता है—

"मैं······ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं श्रद्धापूर्वक (राज्य का नाम) राज्यपाल का कार्यपालन करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि की रक्षा करूंगा और मैं (राज्य का नाम) की सेवा और कल्याण में विरत रहूँगा।"

वेतन तथा भत्ता (Salaries and Allowences)—राज्यपाल के वेतन तथा भत्ते आदि का निर्णय करने का अधिकार भारतीय ससद को प्राप्त है, किन्तु जिस समय तक ऐसा निर्णय किसी अधिनियम द्वारा नहीं किया जाये, उस समय तक उसको 5500 रुपये मासिक वेतन मिलेगा। उसके कार्यकाल में उसके वेतन, भत्ते आदि में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती। रहने के लिये उसको एक सरकारी भवन बिना किराये का दिया जायेगा।

राज्यपाल की शक्तियाँ (Powers of the Governor)—राज्यपाल राज्य का वैधानिक अध्यक्ष है। उसके अधिकार एवं कार्य प्रायः वही हैं, जो भारतीय केन्द्र के शासन में राष्ट्रपति के हैं। डॉ॰ दुर्गादास बसु के अनुसार, "संक्षिप्त में राज्यपाल की शक्तियाँ राष्ट्रपति के समान हैं, सिर्फ कूटनीतिक, सैनिक तथा संकटकालीन अधिकारों को छोड़कर।"[1]

(1) कार्यकारिणी शक्तियाँ (Executive powers)—संविधान के अनुसार राज्य की कार्यकारिणी शक्ति राज्यपाल में निहित होती है तथा उस शक्ति का

1. "Shortly speaking, the powers of the governor of a state are analogous to those of the President, excepting that the governor has no diplomatic or military or emergency powers." —D. D. Basu.

प्रयोग राज्यपाल स्वयं या अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के द्वारा करता है। उसकी कार्यकारिणी शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित हैं, जिनका उल्लेख राज्य सूची और समवर्ती सूची में किया गया है। संघ सूची के विषयों के सम्बन्ध में उसको कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। संक्षेप में उसकी कार्यकारिणी शक्तियाँ निम्न हैं—

(i) राज्य सूची पर अधिकार (Powers Relating to the State-lest)—संविधान के अनुसार जो विषय राज्य सूची में रखे गये हैं, उनके सम्बन्ध में उसको समस्त अधिकार प्राप्त हैं। समवर्ती सूची के विषयों पर वह राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।

(ii) शासन का संचालन (Administrative powers) वह राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष है। शासन सम्बन्धी समस्त कार्यवाही उसी के नाम पर होती है। वह कार्यपालिका का संचालन करता है कार्यपालिका के सभी अधीनस्थ कर्मचारी उसके मातहत होते हैं तथा उसके निर्देशानुसार कार्य करते हैं।

(iii) नियुक्ति सम्बन्धी शक्तियाँ (Powers Relating to Appointment)—विधान सभा के बहुमत दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमन्त्री (Chief Minister) के पद पर नियुक्ति करता है और मुख्यमन्त्री के परामर्श के अनुसार मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यो की नियुक्ति करता है। राज्य के एडवोकेट जनरल, राज्य के लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों आदि की नियुक्ति करता है, यद्यपि ये सब नियुक्तियाँ भी वह मन्त्रि-परिषद के परामर्श के अनुसार करता है। जिन राज्यों में विधान-मण्डल में दो सदन हैं, उनमें उच्च सदन (विधान परिषद) के कुछ सदस्यों को भी मनोनीत करने का अधिकार संविधान द्वारा प्रदान किया गया है। लोक सेवा आयोग के सदस्यों की सेवा की शर्तों का निर्धारण और उनके कार्य के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार भी राज्यपाल को दिया गया है।

(iv) मन्त्रियों के मध्य विभागों का वितरण (Distribution of Partfolioe among the Council of Ministers)—राज्यपाल ही मन्त्रिपरिषद के मन्त्रियों के बीच कार्यों का विभाजन करता है। मन्त्रिपरिषद के सदस्यों के मध्य विभागों का वितरण वास्तव में मुख्यमन्त्री करता है। राज्यपाल तो उसकी घोषणा मात्र ही करता है।

(2) राज्यपाल की विधायी शक्तियाँ (Legislative powers of the Governor)—राज्यपाल की विधायी शक्तियों का हम निम्न प्रकार से वर्गीकरण कर सकते हैं—

(i) राज्य के विधान मण्डल का अभिन्न अंग (Inseparable part of the State Legislature)—यद्यपि राज्यपाल विधानमण्डल के किसी सदन का सदस्य नहीं हो सकता, पर उसे विधान-मण्डल का अभिन्न अंग माना जाता है। अतः विधान-मण्डल के संगठन तथा कार्य के सम्बन्ध में उसके अधिकार महत्त्वपूर्ण हैं।

(ii) विधान-मण्डल के कुछ सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार (Right to Nominate the Members of Assembly)—वह विधान परिषद के सदस्यों की पूरी संख्या के लगभग 1/6 सदस्यों को मनोनीत करता है। यदि उसको यह विश्वास हो जाये कि आंग्ल भारतीय सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व यथेष्ठ नहीं है, तो विधान सभा में भी उस सम्प्रदाय के कुछ सदस्य मनोनीत कर सकता है।

(iii) विधान मण्डल के अधिवेशन को बुलाना (Right to invoke the Session of the Assembly)—राज्यपाल समय-समय पर विधान मण्डल का अधिवेशन बुला सकता है, परन्तु अधिवेशन की अन्तिम तिथि और दूसरे अधिवेशन के प्रारम्भ होने की तिथि के बीच छः महीने से अधिक समय नहीं होना चाहिये।

(iv) विधान सभा को भंग करना एव अवधि में वृद्धि करना (To Dissolve or extend the term of the Assembly)—वह विधान सभा को उसका कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व भंग कर सकता है। इसके साथ ही कुछ विशेष कारण-वश विधान सभा की अवधि में वृद्धि कर सकता है।

(v) विधान-मण्डल में भाषण देना एवं संदेश भेजना (To address the Assembly)—वह किसी एक अथवा दोनों सदनों को सम्बोधित कर सकता है तथा उनमें संदेश भेज सकता है। वास्तव में राज्य के विधान मण्डल का प्रत्येक अधिवेशन राज्यपाल के सम्बोधन से आरम्भ होता है।

(vi) संयुक्त अधिवेशन बुलाने का अधिकार (Right to call the Joint Session)—यदि किसी समय विधान मण्डल के दोनों सदनों के मध्य विधि निर्माण सम्बन्धी गत्यावरोध उत्पन्न हो जाता है, तो राज्यपाल संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है तथा संदेश भेज सकता है।

(vii) विधेयक सम्बन्धी अधिकार. (Powers Regarding the Bills)—प्रत्येक विधेयक को अधिनियम का रूप धारण करने के पूर्व राज्यपाल की स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य है।

निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित विधेयकों को राज्यपाल को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजना अनिवार्य है।

(1) जिन विधेयकों का उद्देश्य व्यक्तिगत सम्पत्ति को राज्य द्वारा अनिवार्य रूप से हस्तगत करना हो।

(2) जिन विधेयकों का सम्बन्ध ऐसी वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर कर लगाने के साथ हो, जिन्हें संघ की संसद ने अनिवार्य वस्तु घोषित कर दिया हो।

(3) जिन विधेयकों का उद्देश्य विद्युत शक्ति के वितरण पर कर लगाना हो।

(viii) धन विधेयकों से सम्बन्धित अधिकार (Powers Regarding the money Bills)—धन विधेयक केवल राज्यपाल की सिफारिश पर ही विधान सभा

में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उस पर कोई भी संशोधन राज्यपाल की सिफारिश के बिना पेश नहीं किया जा सकता। परन्तु राज्यपाल धन विधेयकों को पुनर्विचार के लिये वापिस नहीं भेज सकता वरन् सामान्यतया उनको स्वीकृति दे देता है।

(ix) अध्यादेश जारी करने का अधिकार (Powers to Issue ordinances) – यदि राज्य में विधान मण्डल का अधिवेशन न हो रहा हो तो राज्यपाल आवश्यकता पड़ने पर उन सब विषयों पर अध्यादेश जारी कर सकता है जिन पर राज्य के विधान मण्डल को कानून बनाने का अधिकार है। ऐसे किसी अध्यादेश का प्रभाव वही होगा, जो कि राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाये हुये, किसी कानून का। परन्तु इस प्रकार के अध्यादेश विधान मण्डल के सम्मुख रखे जायेंगे और विधान मण्डल के अधिवेशन के आरम्भ होने की तिथि से 6 सप्ताह के बाद तक ही लागू रह सकेंगे। परन्तु 6 सप्ताह की अवधि के पूरा होने से पूर्व ही विधान सभा इन्हें रद्द कर सकती है। उन विषयों पर जिनके सम्बन्ध में राष्ट्रपति की आज्ञा के बिना राज्य के विधान मण्डल में कोई विधेयक उपस्थित नहीं किया जा सकता है तथा जिनके लिये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक होती है, राज्यपाल बिना राष्ट्रपति की अनुमति के अध्यादेश जारी नहीं कर सकता।

(x) लोक सेवा आयोग तथा राज्य के महालेखा निरीक्षक की रिपोर्ट राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है (To Reports of Public Service Commission and the Advocate General are Submitted to the Governor)— लोक सेवा आयोग तथा महालेखा निरीक्षक आदि की रिपोर्ट प्रति वर्ष राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है तथा वह उन्हें विधान सभा के विचारार्थ प्रस्तुत कराता है।

(3) वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)—राज्यपाल प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में राज्य के उस वर्ष का अनुमानित आय-व्यय का विवरण (बजट) विधान मण्डल के सम्मुख प्रस्तुत करता है। उसकी सिफारिश के बिना कोई भी अनुदान की मांग स्वीकृत नहीं की जा सकती और न कोई धन विधेयक ही उसकी सिफारिश के बिना विधान सभा में प्रस्तुत किया जा सकता है। किन्तु किसी कर के घटाने के लिये प्रावधान करने वाले किसी संशोधन के प्रस्ताव के लिये उसकी सिफारिश की आवश्यकता नहीं होगी। राज्य की आकस्मिक निधि उसके आधीन होती है जिसमें से वह आकस्मिक व्यय के लिये विधान मण्डल की अनुमति के पूर्व भी धन दे सकता है।

(4) न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)—संविधान के अनुच्छेद 161 के अनुसार राज्यपाल को अधिकार है कि वह उन अपराधों के लिये पाये हुये व्यक्तियों के, जिनका सम्बन्ध राज्य के अधिकार क्षेत्र से है, दण्ड को कम कर सकता है, स्थगित कर सकता है या पूर्णतया क्षमा कर सकता है। परन्तु प्राणदण्ड को क्षमा करने या कम करने का अधिकार उसे नहीं है। इसी प्रकार जिन अपराधों का सम्बन्ध संघ सरकार के अधिकार क्षेत्र में है, उनके विषय में राज्यपाल को कोई अधिकार नही है।

इसके अतिरिक्त यदि राज्यपाल यह अनुभव करता है कि राज्य पर कोई वैधानिक संकट या राज्य में आन्तरिक शांति भंग होने की सम्भावना है तो वह इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट भेजता है। यदि राष्ट्रपति उसकी रिपोर्ट से संतुष्ट होकर उस राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर देता है तो उस राज्य का प्रशासन राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में अपने हाथों में ले लेता है।

राज्यपाल की वास्तविक स्थिति (Actual Posit on of the Governor) - राज्यपाल की शक्तियों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी शक्तियाँ नाममात्र की हैं। राष्ट्रपति की भाँति उसकी शक्तियाँ नाममात्र की हैं क्योंकि दोनों ही अपनी-अपनी सरकारों के संवैधानिक मुखिया हैं। हमारे देश में संसदीय प्रणाली होने से कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल में निहित हैं। प्रो० एम० पी० शर्मा के शब्दों में, "राज्यपाल अपने राज्य का उसी प्रकार संवैधानिक अध्यक्ष है जिस प्रकार राष्ट्रपति केन्द्र सरकार का। हम यह कह सकते हैं कि वह स · टकालीन तथा अन्तरिम शक्तियों से शून्य राष्ट्रपति है।"[1]

प्रश्न 21—राज्य की मन्त्रि-परिषद का संगठन, शक्तियों और कर्त्तव्यों का उल्लेख करो।

Describe the organization, powers and the responsibilities of Council of Ministers as a state.

राज्य की मन्त्रि परिषद
(The Council of Ministers of State)

संविधान के अनुच्छेद 163 के अनुसार, "उन बातों को छोड़कर जिनमें राज्यपाल स्वविवेक से कार्य करता है, अन्य कार्यों के निर्वहन में उसे सहायता प्रदान करने के लिये एक मन्त्रि-परिषद होगी जिसका प्रधान मुख्यमन्त्री होगा।" मन्त्रि-परिषद जो भी परामर्श राज्यपाल को देती है, उसकी जाँच करने का अधिकार किसी न्यायालय को नहीं है।

मन्त्रि परिषद का संगठन (Composition of the Council of Ministers)—संविधान के अनुसार मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति वह मुख्यमंत्री के परामर्श से करेगा। परन्तु केन्द्र के समान राज्य में राज्यपाल मुख्य मंत्री की नियुक्ति में अपने विवेक का प्रयोग नहीं कर सकता। वह विधान सभा के बहुमत दल के नेता को ही मन्त्रि-परिषद के निर्माण के लिये बुलायेगा। हाँ, जब विधान सभा में किसी दल का स्पष्ट बहुमत न हो तो उस दशा में वह मिली-जुली मन्त्रि परिषद के निर्माण के लिये अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है परन्तु ऐसी स्थिति में मुख्य मंत्री ऐसे ही व्यक्ति को बनायेगा जो अन्य

---

1. "The Governor is the constitutional head of his state just as the president is of the union. We may say that he is the president shorn of his emergency and transitional powers." —M. P. Sharma.

दलों का समर्थन प्राप्त कर राज्य को स्थायी नेतृत्व देने में समर्थ हो। अन्य मंत्रियों की नियुक्ति में भी राज्यपाल स्वतन्त्र नहीं है। वह मुख्य मंत्री की इच्छा के विरुद्ध किसी भी व्यक्ति को मन्त्रि परिषद में नियुक्ति नहीं कर सकता।

सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications of the Members of the Council of Ministers)—प्रत्येक मंत्री को विधान मण्डल के किसी भी सदन का सदस्य होना चाहिये। यदि मुख्य मंत्री के परामर्श से राज्यपाल किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्री नियुक्त कर देता है जो विधान मण्डल के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है तो उसे 6 महीने के अन्दर विधान मण्डल के किसी सदन का सदस्य बन जाना चाहिये, नहीं तो उसे पद त्यागना पड़ेगा।

कार्यकाल (Tenure)—संविधान के अनुसार मंत्री अपने पदों पर राज्यपाल को इच्छा पर्यन्त तक ही रह सकते हैं। परन्तु व्यवहार में विधान मण्डल के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व के कारण मन्त्रि परिषद तब तक अपने पद पर बनी रहेगी जब तक कि उसे विधान सभा के बहुमत दल का समर्थन प्राप्त हो।

शपथ (Oath)—मन्त्रि परिषद के प्रत्येक मंत्री को पद ग्रहण करने से पूर्व राज्यपाल के समक्ष गोपनीयता की शपथ लेनी आवश्यक होती है।

मन्त्रियों के वेतन एवं भत्ते (Salaries and Allowances of the Ministers)—मंत्रियों के वेतन तथा भत्तों का निर्णय करने का अधिकार संविधान ने राज्य के विधान मण्डल को प्रदान किया है। एक बार वेतन के निश्चित हो जाने पर मंत्रित्व काल में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती। विभिन्न राज्यों के विधान मण्डलों ने इनका वेतन अलग-अलग निश्चित किया है। उत्तर प्रदेश के मंत्रियों को 1500 रुपये मासिक वेतन तथा एक सरकारी भवन बिना किराये का मिलता है।

संविधान ने मंत्रियों की संख्या कोई निश्चित नहीं की है। मंत्रियों की संख्या प्रायः विधान सभा के सदस्यों की संख्या पर निर्भर करती है। प्रायः विधान सभा के सदस्यों की संख्या का 20% मंत्रि परिषद के सदस्यों की संख्या होती है। संविधान में यह उपबंधित है कि बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश में आदिम जाति की उन्नति तथा कल्याण हेतु एक मंत्री की नियुक्ति अवश्य की जायेगी। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय मंत्रि परिषद की भाँति राज्य में भी मन्त्रियों की तीन श्रेणियाँ हैं। कैबिनेट स्तर के मंत्री, राज्य मंत्री और उपमंत्री। इसके अतिरिक्त संसदीय सचिव भी नियुक्त किये जा सकते हैं।

मन्त्रि परिषद के कार्य (Functions of the Cabinet)—संविधान के अनुसार मंत्रि परिषद का कार्य राष्ट्रपति की भाँति राज्यपाल को उसके कार्यों में परामर्श तथा सहायता देना है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। शासन का सारा कार्य मंत्रि परिषद ही करती है। संक्षेप में उसके कार्य अग्रलिखित हैं—

(1) शासन की नीति का निर्धारण करना।

(2) मंत्री ही विधान मण्डल में विधेयक पेश करते हैं और उसे वैधानिक रूप प्रदान करते हैं।

(3) मन्त्रि परिषद ही राज्य का वार्षिक बजट तैयार करती है।

(4) संघ सरकार से अनुदान की मांग पर भी मन्त्रि मण्डल ही विचार करता है।

(5) मंत्रिगण सदन में पूछे गये प्रश्नों का भी उत्तर देते हैं।

(6) महत्वपूर्ण प्रशासकीय नियुक्तियां राज्यपाल द्वारा मंत्रि परिषद के परामर्श से होती हैं। मंत्रि मण्डल जिन महत्वपूर्ण नियुक्तियों की राज्यपाल से सिफारिश करता है उन्हें वह स्वीकार कर लेता है।

(7) मंत्रि परिषद राज्य का समस्त शासन चलाती है। इसके लिये यह सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है।

साधारणतया राज्य मंत्रि परिषद के वे ही कार्य हैं जो केन्द्रीय मंत्रि परिषद के हैं।

मुख्य मन्त्री की स्थिति (Position of the Chief minister)—राज्य में मुख्य मंत्री की वही स्थिति है जो केन्द्रीय शासन में प्रधानमत्री की है। वह मंत्रि परिषद का प्रधान होता है तथा मंत्रि परिषद की बैठकों का सभापतित्व करता है। उसके कार्य निम्नलिखित हैं—

(1) वह मंत्रि परिषद का अध्यक्ष होने के नाते मंत्रि परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है।

(2) वह मंत्रियों में विभागों का वितरण करता है तथा विभिन्न मंत्रियों और विभागों के बीच एकता स्थापित करता है।

(3) मुख्य मंत्री किसी भी मंत्री से असंतुष्ट होने पर उससे त्याग-पत्र मांग सकता है। मंत्रियों के बीच जब किसी प्रश्न पर मतभेद होता है तो वह ही उसे दूर करता है।

(4) राज्यपाल और मंत्रि पषिरद के बीच सम्पर्क स्थापित करने के लिये मुख्य मंत्री एक सेतु के रूप में कार्य करता है। मुख्य मंत्री का यह कार्य है कि वह शासन के समस्त निर्णयों से राज्यपाल को अवगत कराता रहे।

(5) महत्वपूर्ण प्रशासकीय नियुक्तियाँ राज्यपाल मुख्य मंत्री के परामर्श के अनुसार ही करता है।

(6) सत्तारूढ़ दल का नेता होने के कारण वह विधान सभा में सरकार का प्रमुख प्रवक्ता (Chief Spokesman) होता है। सदन में महत्वपूर्ण नीतियों की घोषणा भी वह ही करता है।

(7) मुख्य मंत्री के परामर्श पर ही राज्यपाल विधान सभा भंग करता है।

(8) दल का नेता होने के कारण वह अपने दल के सदस्यों को आवश्यक आदेश भी देता है।

मुख्य मंत्री की उपरोक्त शक्तियों से स्पष्ट होता है कि वह राज्य का वास्तविक शासक है। मंत्रि परिषद के जीवन मरण का केन्द्र बिन्दु वही है। राज्य प्रशासन में उसकी लगभग वही स्थिति है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है।

प्रश्न 22—राज्यों के विधान मण्डल का निर्माण किस प्रकार होता है? उसकी शक्तियों तथा कर्त्तव्यों की विवेचना करो।

राज्य विधान परिषद के संगठन, शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन कीजिये। आप इसे कहाँ तक आवश्यक एवं उपयोगी समझते हैं?

Discuss the composition and the functions of State legislature.

राज्य का विधान मण्डल
(State Legislature)

संविधान के अनुच्छेद 168 में उपबंधित किया गया है कि प्रत्येक राज्य में एक विधान मण्डल होगा। कुछ राज्यों में एक सदनीय विधान मण्डल तो कुछ राज्यों मे द्विसदनीय विधान मण्डल है। जिन राज्यों में द्विसदनीय विधान मण्डल हैं, उनमें लोकप्रिय अथवा प्रथम सदंन को विधान सभा (Legislative Assembly) तथा द्वितीय सदन को विधान परिषद (Legislative Council) कहते हैं।

राज्य की विधान-परिषद

विधान परिषद की रचना (Composition of the Legislative Council)—किसी भी राज्य की विधान परिषद के समस्त सदस्यों की संख्या साधारणतया उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों की समस्त संख्या के 25 प्रतिशत से अधिक न होगी परन्तु किसी भी विधान परिषद की सदस्य संख्या 40 से कम नहीं होगी, जब तक संसद कानून द्वारा कोई अन्य व्यवस्था न करे, तब तक राज्य की विधान परिषद की रचना निम्न प्रकार से होगी—

(1) स्थानीय संस्थाओं के सदस्यों द्वारा निर्वाचित सदस्य (Members elected by thelocal self bodies)—विधान परिषद के सदस्यों की समस्त संख्या में लगभग एक तिहाई सदस्य नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं द्वारा निर्वाचित होंगे।

(2) स्नातकों द्वारा निर्वाचित सदस्य (Members elected by the Graduates)—विधान परिषद के सदस्यों की कुल संख्या का 1/12 भाग ऐसे व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित किया जायेगा, जिन्हें विश्वविद्याजय से प्रमाण-पत्र लिये कम से कम तीन वर्ष हो गये हों अथवा जिन्हें संसद द्वारा निश्चित स्नातक की घोषणा के समकक्ष कोई योग्यता हो।

(3) अध्यापकों द्वारा निर्वाचित सदस्य (Members elected by the teachers)—विधान परिषद की पूर्ण संख्या का 1/12 भाग ऐसे व्यक्तियों द्वारा

निर्वाचित होगा जो कम से कम तीन वर्ष तक हायर सेकेण्डरी तथा उच्च विद्यालयों में अध्यापन कर रहे हों।

(4) विधान सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित सदस्य (Members elected by the members of the Legislative Assembly)—एक तिहाई सदस्य उस राज्य की विधान सभा ऐसे व्यक्तियों में से निर्वाचित करेगी, जो उसके (विधान सभा के) सदस्य न हों।

(5) राज्यपाल द्वारा मनोनीत सदस्य (Members nominated by the Governors)—शेष 1/6 सदस्य राज्यपाल ऐसे व्यक्तियों में से मनोनीत करेगा, जो साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारिता तथा समाज सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखते हों।

समस्त सदस्यों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा गुप्त रीति से होगा। परन्तु स्थानीय संस्थाओं के सदस्य, स्नातक तथा शिक्षकों के लिये संसद की विधि के अनुसार समस्त राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र का निर्माण किया जायेगा।

सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications)—संविधान के अनुच्छेद 173 में विधान परिषद की सदस्यता के लिये निम्न योग्यतायें उपबन्धित की गई हैं—

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो।

(3) उसमें वे समस्त योग्यतायें होनी चाहियें जो समय-समय पर संसद विधि द्वारा निर्धारित करती है।

सदस्यों की अयोग्यतायें (Disqualification)—संविधान के अनुच्छेद 190 व 193 में विधान परिषद की सदस्यता के लिये निम्न अयोग्यतायें उपबन्धित की गई हैं—

(1) यदि वह भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभपद धारण करता हो।

(2) वह न्यायालय द्वारा पागल घोषित कर दिया गया हो।

(3) वह न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया गया हो।

(4) यदि वह ससंद की विधि द्वारा अयोग्य घोषित किया गया हो।

(5) यदि वह भारत का नागरिक न हो या उसने अपनी इच्छा से किसी अन्य राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली हो।

अयोग्यता सम्बन्धी प्रश्नों के उपस्थित होने पर राज्यपाल अन्तिम निर्णय निर्वाचन आयोग के परामर्श से देगा।

कार्यकाल (Tenure)—विधान परिषद एक स्थायी सदन है, जो भंग नहीं किया जा सकता। इसके एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते हैं

और उनका स्थान नये निर्वाचित सदस्य लेते हैं। प्रत्येक सदस्य की कार्यकाल अवधि 6 वर्ष होती है।

गणपूर्ति (Qorum)—विधान परिषद की बैठकों के लिये कुल सदस्य संख्या का दसवाँ भाग उपस्थित होना अनिवार्य है। यदि कोई सदस्य सदन की आज्ञा के बिना लगातार 60 दिनों तक परिषद की बैठकों से अनुपस्थित रहे तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है।

अधिवेशन (Sessions)—विधान परिषद के एक वर्ष में कम से कम दो अधिवेशन होने अनिवार्य हैं। एक अधिवेशन व दूसरे अधिवेशन के बीच 6 माह से अधिक समय व्यतीत नहीं होना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर विशेष अधिवेशन भी बुलाये जा सकते हैं। राज्यपाल ही परिषद के अधिवेशनों को बुलाता है तथा समाप्त करता है।

विधान परिषद के पदाधिकारी (Officials of the Legislative Council)—विधान परिषद अपने सदस्यों में से एक सभापति और एक उप-सभापति निर्वाचित करती है। सभापति के वही कार्य हैं जो केन्द्र में राज्य सभा के सभापति के हैं। समान मत होने की स्थिति में उसे 'निर्णायक मत' (Casting Vote) देने का अधिकार है। सभापति की अनुपस्थिति में उप-सभापति सदन की बैठकों का सभापतित्व करता है। सभापति व उपसभापति को परिषद द्वारा कुल सदस्यों के बहुमत से एक प्रस्ताव पारित करके पद से हटा सकता है। ऐसे प्रस्ताव की सूचना 14 दिन पूर्व देनी आवश्यक है। जिस बैठक में उसे अपदस्थ करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव प्रस्तुत हो, उस बैठक में सभापति बैठक का सभापतित्व नहीं करता।

विधान परिषद के कार्य एवं शक्तियाँ (Powers and Functions of the Legislative Council)—केन्द्रीय राज्य सभा की भाँति राज्य में विधान परिषद एक कमजोर सदन है। यहाँ तक कि विधान सभा दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके विधान परिषद को समाप्त करने के लिये संसद के समक्ष प्रस्ताव रख सकती है। केन्द्रीय संसद को ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार करना होगा। संविधान के अन्तर्गत विधान परिषद की शक्तियाँ तथा कार्य निम्न हैं—

(1) विधायी शक्तियाँ (Legislative Powers)—धन विधेयकों के अतिरिक्त कोई भी विधेयक विधान परिषद में प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् ही कोई विधेयक कानून का रूप धारण कर सकता है। विधान परिषद किसी भी साधारण विधेयक को पुनः विचार के लिये विधान सभा में भेज सकती है। यदि किसी विधेयक के विषय में विधान परिषद ने तीन मास तक निर्णय न लिया हो तो इस अवधि के बाद विधान सभा उसे पुनः पारित कर सकती है। दोबारा पारित होने के बाद विधेयक पुनः विधान परिषद के पास भेजा जाता है। यदि विधान परिषद इस बार भी इसे पारित नहीं करती तो वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जायेगा। अतः विधान परिषद किसी भी विधेयक

के पारित होने में अधिक से अधिक 4 मास की देरी कर सकती है। दोनों सदनों में किसी विधेयक पर मतभेद होने की स्थिति में विधान सभा का पलड़ा भारी रहता है। यदि किसी विधेयक को विधान सभा दोबारा पारित कर देती है तो वह पारित मान लिया जाता है। इस प्रकार विधान सभा विधान परिषद की पूर्ण उपेक्षा कर सकती है क्योंकि केन्द्र की भाँति संयुक्त अधिवेशन का राज्यों में उपबन्ध नहीं।

(2) **वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)**—वित्तीय विषयों में विधान परिषद एक शक्तिहीन सदन है। वित्तीय विषयों में समस्त शक्तियाँ विधान सभा के पास हैं। केवल विधान सभा द्वारा पारित होने के पश्चात् वित्तीय विधेयक विधान परिषद के पास उसकी सिफारिशों के लिये भेजा जाता है। परिषद् को 14 दिन के अन्दर अपनी सिफारिशों के साथ विधान सभा के पास वापिस भेजना पड़ता है। परिषद की सिफारिशों को मानने के लिये विधान सभा बाध्य नहीं है।

(3) **कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over the Executive)**—प्रशासकीय विषयों पर विधान परिषद की शक्तियाँ लगभग शून्य के बराबर हैं। विधान परिषद के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं। वे सदन में सरकार की आलोचना मात्र कर सकते हैं, परन्तु यदि सदन में किसी प्रस्ताव पर मतदान पर हार जाती है तो उसे त्याग-पत्र देने की आवश्यकता नहीं है। इस दृष्टि से भी विधान परिषद की शक्तियाँ अत्यन्त सीमित हैं।

उपरोक्त शक्तियों से स्पष्ट है कि विधान परिषद एक शक्तिहीन सदन है।

विधान सभा
(Legislative Assambly)

गठन (Composition)—संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिये एक विधान सभा की व्यवस्था की गयी है। संविधान में केवल इतना उपबन्धित किया गया है कि विधान सभा की सदस्य संख्या कम से कम 60 और अधिक से अधिक 500 होगी। विधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। निर्वाचन के लिये प्रत्येक राज्य को विभिन्न प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में इस प्रकार बाँटा जाता है कि 75,000 जनसंख्या को एक से अधिक प्रतिनिधि न प्राप्त हो।

सुरक्षित स्थान (Reserved Seats)—यद्यपि नये संविधान के अनुसार साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों का अन्त कर दिया गया है। परन्तु राज्यों की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों और असम के स्वायत-शासी जिलों (Autonomous Districts) के सम्बन्ध में 10 वर्ष के लिये जनसंख्या के आधार पर विशेष संरक्षण का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त यदि राज्यपाल के विचार में आंग्ल भारतीय सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व यथेष्ट न हो तो उसके सदस्यों को भी मनोनीत करने का विशेष प्रावधान किया जा सकता है।

सन् 1980 के आम निर्वाचन के बाद विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं में सदस्य संख्या इस प्रकार है।

राज्य	सदस्यों की संख्या
1. आन्ध्र प्रदेश	294
2. असम	126
3. बिहार	324
4. गुजरात	182
5. हरियाणा	90
6. जम्मू व काश्मीर	46
7. केरल	140
8. मध्य प्रदेश	320
9. तमिलनाडु	231
10. महाराष्ट्र	288
11. मैसूर	124
12. उड़ीसा	140
13. पंजाब	117
14. राजस्थान	200
15. उत्तर प्रदेश	425
16. प० बंगाल	294
17. नागालैण्ड	60
18. हिमाचल प्रदेश	68
19. मणीपुर	60
20. त्रिपुरा	60
21. मेघालय	60
22. सिक्किम	32

सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications of the Members)—संविधान के अनुच्छेद 173 में विधान सभा की सदस्यता के लिये निम्न योग्यतायें उपबन्धित की गई हैं—

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) वह 25 वर्ष से कम आयु का न हो।

(3) उन समस्त योग्यताओं को रखता हो जो समय-समय पर संसद विधि द्वारा निर्धारित करे।

कार्यकाल (Tenure)—विधान सभा के सदस्यों का चुनाव 5 वर्ष के लिये होता है, परन्तु इस अवधि से पूर्व भी राज्यपाल इसे भंग कर नये चुनाव का आदेश दे सकता है। संघीय संसद को यह अधिकार है कि वह कानून बनाकर संकटकाल

की घोषणा के समय विधान सभा का कार्यकाल एक वर्ष के लिये बढ़ा सकती है। परन्तु संकटकाल की घोषणा समाप्त होने के पश्चात् 6 मास से अधिक कार्यकाल नहीं बढ़ा सकती।

अधिवेशन (Sessions)—विधान सभा के एक वर्ष में दो अधिवेशन होने अनिवार्य हैं। एक अधिवेशन की अन्तिम तारीख और दूसरे अधिवेशन की पहली तारीख में 6 माह से अधिक समय व्यतीत नहीं होना चाहिये। राज्यपाल ही विधान सभा के अधिवेशनों को बुलाता व समाप्त करता है।

सदस्यों के विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां (Privileges and the immunities of the members)—प्रत्येक राज्य की विधान सभा के सदस्यों को भाषण की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है। विधान मण्डल में अथवा उसकी किसी समिति में दिये गये भाषण के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही न की जा सकेगी, जब विधान सभा का अधिवेशन हो रहा हो, उन दिनों में और उससे 40 दिन पूर्व तथा 40 दिन तक के समय में किसी सदस्य को दीवानी कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार नहीं किया जायेगा। इसके अतिरिक्त विधान सभा के सदस्यों को वे वेतन भत्ते मिलेंगे जो उस राज्य का विधान मण्डल समय समय पर कानून द्वारा निर्धारित करेगा और जब तक विधान मण्डल वह विषयक कानून नहीं बनाती तब तक सदस्यों को वे वेतन तथा भत्ते मिलेंगे, जो संविधान की प्रारम्भ तिथि से पूर्व उस राज्य की प्रान्तीय विधान सभा के सदस्यों को मिलते थे। उत्तर प्रदेश के विधान सभा के सदस्यों को अब 1,000 हजार रुपया माहवार मिलता है जिसमें दैनिक भत्ता भी सम्मिलित है। निवास स्थान बिना किराये का मिलता है। अपने प्रदेश में वे प्रथम श्रेणी में रेल की यात्रा भी बिना किराये के करते हैं।

उपरोक्त विशेपाधिकार तथा विमुक्तियाँ विधान परिषद के सदस्यों को भी प्राप्त हैं।

विधान सभा के पदाधिकारी (Officials of the Legislative Assembly)—विधान सभा अपने सदस्यों में से एक सदस्य अध्यक्ष (Speaker) तथा एक उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) निर्वाचित करती है। अध्यक्ष विधान सभा की बैठकों का सभापतित्व करता है और उपाध्यक्ष उसकी अनुपस्थिति में बैठकों का सभापतित्व करता है। साधारणतया विधान सभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के वे ही अधिकार हैं जो कि संघ की लोक सभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के हैं। इनको पद से हटाने की वही प्रक्रिया है जो लोक सभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष की है। इनके लिये वेतन, भत्ते व सुविधाओं का निर्धारण राज्य के विधान मण्डल द्वारा किया जाता है। उनके वेतन तथा भत्ते राज्य की संचित निधि से दिये जाते हैं।

विधान सभा की शक्तियां एवं कार्य (Powers and functions of the Assembly)—विधान सभा की शक्तियाँ अग्रलिखित हैं—

(1) विधायी शक्तियाँ (Lagislative Powers)—विधि निर्माण के क्षेत्र में विधान सभा की शक्तियाँ विधान परिषद से अधिक हैं। विधान सभा राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का पूर्ण अधिकार रखती है। वह समवर्ती के विषयों पर भी कानून बना सकती है, पर संसद के कानून से संघर्ष होने की स्थिति में संसद द्वारा पारित कानून को ही वैध माना जायेगा।

(2) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)—वित्तीय विधेयक केवल विधान सभा में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कोई विधेयक वित्तीय विधेयक है, या नहीं इसका निर्णय करने का अधिकार भी विधान सभा के अध्यक्ष को है। वित्तमन्त्री प्रतिवर्ष वित्तीय विवरण (बजट) विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करता है। कोई कर उस समय तक नहीं लगाया जा सकता अथवा धन का व्यय नहीं किया जा सकता जब तक विधान सभा द्वारा ऐसा विधेयक पारित नहीं हो जाता। अतः इस क्षेत्र में विधान सभा की शक्तियाँ अन्तिम हैं।

(3) प्रशासकीय शक्तियां (Administrative Powers)—संसदात्मक शासन पद्धति होने के कारण राज्य में मन्त्रि-परिषद विधान सभा के प्रति ही सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। मन्त्रियों को विधान सभा में सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। मन्त्रि-मण्डल अपने समस्त कार्यों के लिये विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। विधान सभा मन्त्रि परिषद के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसको पद-त्याग करने के लिये वाध्य कर सकती है।

राज्य विधान मण्डल की शक्तियों पर सीमायें (Limitations on the Powers of State Legislature)—राज्यों के विधान मण्डलों को राज्य-सूची के विषयों पर कानून बनाने की अन्तिम शक्ति प्राप्त है परन्तु समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने में उनकी शक्तियाँ सीमित हैं। संविधान के अन्तर्गत राज्य विधान मण्डलों के विधि-निर्माण के अधिकार पर निम्नलिखित सीमायें हैं—

(1) राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित कुछ विधियाँ अवैध माना जायेंगी यदि उन्हें विधान मण्डल में प्रस्तावित करने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त न की गई हो। जिसके अधीन निम्न विषय हैं—

(i) राज्य द्वारा किसी प्रकार की सम्पत्ति को अपने अधिकार में लाने वाले विधेयक।

(ii) समवर्ती सूची से सम्बन्धित कोई विषय, जिसका संघ संसद द्वारा निर्मित विधियों से विरोध हो।

(iii) जिन वस्तुओं को संसद ने आवश्यक घोषित कर दिया हो, उनके क्रय-विक्रय पर कर लगाने वाले विधेयक।

(2) संकटकाल की घोषणा होने पर संसद को राज्य सूची के सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है।

(3) राज्यों में संवैधानिक शासन की असफलता की घोषणा हो जाने पर राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह विधान मण्डल के सब अधिकार अपने हाथ में लेकर भारतीय संसद को सौंप दे।

(4) यदि राज्य सूची के किसी विषय को राज्य सभा दो तिहाई बहुमत से राष्ट्रीय महत्व का विषय घोषित कर दे, तो संसद उस विषय पर कानून बना सकती है।

(5) कुछ विधेयकों को विधान मण्डल में प्रस्तावित करने से पूर्व राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य है। इसके अन्तर्गत वे विषय आते हैं, जो राज्य में वाणिज्य, व्यापार की स्वतन्त्रता का विरोध करते हैं या दो राज्यों के व्यापारिक सम्बन्ध पर प्रतिबन्ध लगाते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)—राज्यों के विधान मण्डलों की शक्तियों पर संविधान द्वारा लगायी गयी सीमाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि विधि-निर्माण के क्षेत्र में इनकी शक्तियाँ सीमित हैं। केन्द्रीय संसद की भाँति राज्यों की व्यवस्थापिकायें सम्प्रभु नहीं हैं। ऐलिक जैकब के शब्दों में, "केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर विधायी प्रक्रिया विधि निर्माण के क्षेत्र में केन्द्र के प्रमुत्व को सुदृढ़ करती हैं।" ("The operation of the legislative process at the union level as well as at the state level reinforces the union predominance in the legislative field."—Alice Jacob)

प्रश्न 23—राज्यों की न्यायपालिका पर एक टिप्पणी लिखो।

राज्यों के उच्च न्यायालयों के संगठन और शक्तियों की व्याख्या कीजिये।

What are the powers of a High Court in an Indian State?

Describe the composition, powers and functions of the High Court.

उच्च न्यायालय (High Court)

संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा, जो एक अभिलेख न्यायालय (Court of Record) है तथा जिसे अपने अपमान का दण्ड देने के अधिकार सहित अभिलेख न्यायालय की समस्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। अधीनस्थ न्यायालय इसके निर्णयों को प्रमाणिक मानने के लिये बाध्य हैं।

उच्च न्यायालय का संगठन (Composition of the High Court)—प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या कितनी हो, इसका निर्धारण समय-समय पर जारी किये गये आदेशों के अनुसार किया जाता है। न्यायाधीशों की संख्या राज्य के क्षेत्रफल, जनसंख्या तथा कार्य की मात्रा को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है। न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के मुख्य

न्यायाधीश तथा उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श लेता है। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय वह राज्यपाल तथा उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेता है। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के अनुसार भारत के राज्य क्षेत्र में स्थित किसी अन्य उच्च न्यायालय में कार्य करने के लिये स्थानान्तरित (Transfer) कर सके। इस स्थिति में उस न्यायाधीश को वेतन तथा भत्ते के अतिरिक्त अन्य विशेष भत्ते भी प्रदान किये जाते हैं।

न्यायाधीशों की योग्यतायें (Qualifications of the Judges)—उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने के लिये व्यक्ति में निम्न योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(1) भारत का नागरिक हो।

(2) वह भारतीय राज्य क्षेत्र में कम से कम 10 वर्ष तक किसी न्यायिक पद पर रह चुका हो।

(3) किसी उच्च न्यायालय में कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।

न्यायाधीशों के वेतन तथा भत्ते (Salaries and the allowences of Judges)—उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 4,000 रुपये तथा अन्य न्यायाधीशों को 3,500 रुपये प्रतिमास वेतन मिलता है। मासिक वेतन के अतिरिक्त उन्हें वे समस्त भत्ते तथा सुविधायें प्राप्त होंगी, जो भारतीय संसद समय-समय पर निर्धारित करेगी। नियुक्ति के बाद केवल संकटकालीन अवस्था को छोड़कर साधारणतया उनके वेतन व भत्ते आदि में कोई कटौती नहीं की जा सकती। इनका वेतन राज्य की संचित निधि से दिया जाता है।

न्यायाधीशों के कार्यकाल (Tenure of the Judges)—संविधान के अनुसार प्रत्येक न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बना रह सकता है। इससे पूर्व भी यदि वह चाहे तो अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है। इसके अतिरिक्त संसद के दोनों सदनों के सदस्य किसी भी न्यायाधीश को दुराचरण अथवा अयोग्यता के आरोप के कारण उसे हटाने के प्रस्ताव को पृथक्-पृथक् कुल संख्या के बहुमत अथवा मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रपति से प्रार्थना करें तो राष्ट्रपति संसद की प्रार्थना पर न्यायाधीश को पदच्युत कर सकता है।

उच्च न्यायालय की शक्तियाँ तथा क्षेत्राधिकार (Jurisdiction of the High Court)—उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी उपबन्ध भारतीय शासन अधिनियम 1935 पर आधारित हैं। उनका क्षेत्राधिकार वही है कि जैसा संविधान लागू होने से पूर्व उच्च न्यायालयों का था, किन्तु राजस्व तथा उसे संग्रहीत करने से

सम्बन्धित विषयों में उनके प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार पर लगे प्रतिबन्ध हटा लिये गये हैं। साधारणतया उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार अपने राज्य तक ही सीमित रहता है, परन्तु संसद कानून द्वारा दो राज्यों के लिये एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था कर सकती है। यह उच्च न्यायालय दोनों राज्यों के लिये कार्य करेगा। सक्षेप में उच्च न्यायालय के मुख्य अधिकार इस प्रकार हैं—

(1) प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)—उच्च न्यायालय राज्य के दीवानी व फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों में पुर्नविचार का सर्वोच्च न्यायालय है। वे सभी दीवानी मामले जो खफीफा अदालत (Small Causes Court) नहीं सुन सकती, उच्च न्यायालय में ही प्रारम्भ होते हैं। इसी प्रकार फौजदारी के वे सभी मुकदमे जिनकी सुनवाई अन्य स्थानों पर सैशन्स कोर्ट में होती है, उच्च न्यायालय द्वारा सुने जाते हैं। कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास के उच्च न्यायालयों को कुछ अन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं।

मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये उच्च न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख, परमादेश, प्रतिषेध लेख, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेक्षण लेख जारी रखने का अधिकार है। उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्त राज्यों के न्यायालयों को विवाह विच्छेद, विवाह विधि, उच्च न्यायालय के अपमान आदि के विषय में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं।

(2) अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)— सभी राज्यों के उच्च न्यायालयों को दीवानी और फौजदारी के मामलों में अपने आधीन न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है। दीवानी के मुकदमों की अपील उच्च न्यायालय में उस दशा में की जाती है, जबकि किसी मामले में कम से कम 5000 रुपये की रकम का प्रश्न निहित हो। फौजदारी की अपील तभी की जा सकती है जबकि उस मुकदमे में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या जब अपराधी को सैशन कोर्ट दण्ड देती है तो उसके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। यदि सैशन कोर्ट ने अपराधी को मृत्यु दण्ड दे दिया है, इसके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय द्वारा इस दण्ड की पुष्टि कर दी जाती है तो ऐसी स्थिति में दण्ड लागू होगा।

(3) उच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय के रूप में (High Court as a Court of Record)—उच्चतम न्यायालय के समान उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालयों के रूप में भी कार्य करते हैं। अभिलेख न्यायालयों की सब शक्तियाँ उन्हें प्राप्त हैं। अपने को अपमानित करने की दशा में इस अपमान के लिये दण्ड देने का अधिकार भी उन्हें प्राप्त है।

(4) अधीक्षण का अधिकार (Power of Superintendence)—प्रत्येक

उच्च न्यायालय का एक महत्वपूर्ण अधिकार यह है कि वह अपने अधीनस्थ न्यायालयों के कार्यों का निरीक्षण करे। इस अधिकार का प्रयोग उच्च न्यायालय निम्न प्रकार से करते हैं—

(1) अपने क्षेत्र के किसी भी अधीनस्थ न्यायालय से कागजात मंगाकर वह उनकी जाँच कर सकता है।

(2) अधीनस्थ न्यायालय किस प्रकार कार्य करे, इस सम्बन्ध में वह नियम बना सकता है तथा पहले बने हुए नियमों में परिवर्तन कर सकता है।

(3) अधीनस्थ न्यायालय अपने रिकार्ड किस प्रकार रखे इसका प्रबन्ध भी उच्च न्यायालय ही करते हैं।

(4) उच्च न्यायालय अपने जिले के न्यायाधीशों तथा अन्य न्यायाधीशों के अधिकारियों की नियुक्ति, अवनति, पदोन्नति व अवकाश आदि के सम्बन्ध में नियम बना सकता है।

(5) उच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि वह किसी मुकदमे को एक न्यायालय से हटाकर किसी अन्य न्यायालय में विचार व निर्णय के लिये भेज सके।

(6) उच्च न्यायालय को अधिकार है कि वे अपने अधीनस्थ न्यायालय के शेरिफ (Sheriff) क्लर्क व अन्य कर्मचारियों तथा वकीलों आदि की फीस का भी निर्धारण कर सके।

इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 228 के अनुसार उच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि आधीन न्यायालय के विचाराधीन किसी मुकदमे मे संविधान की व्याख्या का प्रश्न है तो उस मुकदमे को वह अपने पास मंगवा सकता है। वह उसका निर्णय स्वयं कर सकता है या केवल कानून सम्बन्धी प्रश्न का निर्णय करके उसी आधीन न्यायालय को अन्तिम निर्णय के लिये वापिस कर सकता है। संसद किसी उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में अपने कानून द्वारा कमी या वृद्धि कर सकती है।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता (Independence of the Judges of the High Courts)—जिस प्रकार संविधान के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को स्वतंत्रतापूर्वक काम करने के लिये पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की गई हैं, उसी प्रकार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को भी सविधान द्वारा सुरक्षायें प्रदान की गई हैं। राज्यों की कार्यपालिकाओं का और विधान-मण्डलों का इन पर कोई नियंत्रण नहीं है। राज्यपाल प्राय: विधायकों को राष्ट्रपति की अनुमति के लिये रोक देते हैं, जिनके द्वारा उच्च न्यायालयों के अधिकारों को सीमित करने का प्रयत्न किया गया हो। न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा उनको पद से हटाने का अधिकार राष्ट्रपति और संसद को है। उनके वेतन व भत्ते उनके कार्यकाल में कम नहीं किये जा सकते। विधान-मण्डल न्यायाधीशों की कार्यवाही आदि पर

वाद-विवाद नहीं कर सकते। संविधान के द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को सुरक्षा प्रदान करने के पीछे मुख्य उद्देश्य इन्हें नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के दायित्व में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर प्रदान करना है।

प्रश्न 24—संघ राज्यों के बीच विधायी, प्रशासकीय तथा वित्तीय सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।

भारतीय संघ और राज्यों के विधायी, प्रशासकीय तथा वित्तीय सम्बन्धों की आलोचना कीजिये।

Discuss the Union-States relations in India in theory and Practice.

To what extent can the union government in India control the states?

संघ और राज्यों के मध्य सम्बन्ध
(Relations between the Union and States)

भारत का वर्तमान संविधान देश में संघीय शासन की स्थापना करता है। संघवाद के सिद्धान्तों के अनुरूप ही देश में द्वैध शासन-व्यवस्था की स्थापना की गई है। केन्द्र में संघ सरकार है तथा राज्यों में समानान्तर सरकारें हैं। संविधान के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत अपनी-अपनी शक्तियों का प्रयोग करती हैं। संविधान संघीय तथा राज्य सरकार दोनों को पृथक्-पृथक् शक्तियाँ प्रदान करता है। संविधान निर्माण सभा में बहस के समय केन्द्र को अत्यधिक सत्ता प्रदान करने के लिये आलोचनाओं का उत्तर देते हुए डा० अम्बेडकर ने कहा था, "हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि संघ तथा राज्यों के बीच विधायनी तथा कार्यपालिका शक्तियों का विभाजन केन्द्रीय सरकार के कानून द्वारा नहीं वरन् संविधान के द्वारा किया गया है। अतः किसी भी प्रकार राज्य अपनी शक्तियों के लिये केन्द्र पर निर्भर नहीं है।" परन्तु गत वर्षों में केन्द्र सरकार की शक्तियों में निरन्तर रूप से वृद्धि हुई है। इसी परिपेक्ष्य में हमें केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य सम्बन्धों को देखना है। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को हम निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं—

(1) विधायी सम्बन्ध (Legislative Relations)—भारतीय संविधान ने शासन के समस्त विषयों का विभाजन संघ और राज्यों के बीच किया है। ये विषय तीन सूचियों में विभाजित किये गये हैं—

(i) संघ सूची—संघ सूची में 98 राष्ट्रीय महत्व के विषय हैं। इन विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल संघीय संसद को प्राप्त है।

(ii) राज्य सूची—राज्य सूची में 66 विषय हैं। इस सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्य के विधान मण्डलों को है।

(iii) समवर्ती सूची—इस सूची में स्थानीय और राष्ट्रीय महत्व के 47 विषय हैं। इन विषयों पर संघ तथा राज्य दोनों की सरकारें कानून बना सकती हैं।

र.ज्य सूची के विषयों पर संसद को कानून बनाने की शक्ति (Union Parliament's powers of Legislation over the Subjects of State List)—संविधान के कुछ उपबन्धों द्वारा संघ संसद राज्य सूची पर कानून बना सकती है। ये उपबंध निम्नलिखित हैं—

(1) राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर (If the Subject of State List is of National Importance)—यदि राज्य सभा उपस्थित सदस्यों के 2/3 बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि अमुख राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का है, अत; संसद को उस पर कानून बनाना चाहिये, तो संघ संसद कानून बना सकती है।

(i) राज्यों के विधान मण्डलों की याचना पर (On the Petitions of the State Legislatures)—यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधान मण्डल यह प्रस्ताव पास करके कि राज्य सूची के किसी विषय पर संसद कानून बना दे तो संसद उस विषय पर कानून बना सकती है।

(ii) विदेशी राज्यों से संधि पालन के लिये (To honour any treaty with the foreign country)—संसद को अन्य देशों के साथ की हुई सन्धि के पालन के लिए कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है, चाहे इस प्रकार के कानून का सम्बन्ध राज्य सूची के विषय से हो।

(iii) संकटकाल की घोषणा के समय (During the Emergency)—संकटकालीन स्थिति में संघ संसद को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह भारत के किसी भी राज्य के लिये राज्य सूची में उल्लेखित विषयों पर कानून बनाये।

(iv) राज्यपाल का कुछ विषयों पर विशेषाधिकार (Governor's can without some bills for President's assent)—संविधान ने राज्यपाल को कुछ विषयों पर यह अधिकार दिया है कि वह कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये रोक सकता है। राष्ट्रपति ऐसे विधेयकों पर स्वीकृति दे भी सकता है और नहीं भी।

(v) अविशिष्ट शक्तियाँ (Residuray Powers)—अविशिष्ट विषयों पर सारी शक्तियाँ संघ सरकार को प्राप्त हैं।

(vi) समवर्ती सूची के विषय पर संघर्ष की स्थिति में केन्द्र के कानून मान्य (If there is a clash between the union law and the state law over the subject of concurrent list, the union law shall prevail)—यदि समवर्ती सूची के विषय पर संसद और राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाए गए कानून में विरोध हो, तो संसद का कानून ही वैध समझा जायेगा।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि संघ को राज्य की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं।

(2) प्रशासकीय सम्बन्ध (Administrative Relations)—प्रशासन के सम्बन्ध में संविधान ने संघीय कार्यपालिका को राज्यों की कार्यपालिका को अनेक प्रकार से निर्देशन करने का अधिकार दिया है, जो इस प्रकार हैं —

(i) संघ सरकार द्वारा राज्यों की सरकारों को आवश्यक निर्देश देना (The union government can issue directions to the state government)—अपने प्रशासन सम्बन्धी कार्यों के लिये संघ सरकार राज्यों की सरकारों को आवश्यक निर्देश दे सकती है, अतः राज्य सरकार अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार न करेगी, जिससे संघ के साथ विरोध हो।

(ii) राज्यपाल की नियुक्ति (Appointment of the Governor)—राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उसका कार्यकाल राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर रहता है। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल जिस व्यक्ति के नाम की सिफारिश राज्यपाल पद की नियुक्ति के लिये करता है, राष्ट्रपति उस सिफारिश को स्वीकार करके उसकी घोषणा कर देता है। राज्यपाल केन्द्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है।

(iii) अखिल भारतीय सेवायें (All India Services)—अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों की नियुक्ति संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है। उनकी सेवाओं पर केन्द्र सरकार का पूरा नियन्त्रण है, परन्तु इन सेवाओं के अधिकारी राज्य के उच्च पदों पर कार्य करते हैं। इन सेवाओं के माध्यम से केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार के प्रशासन पर पूरा नियन्त्रण रखती है।

(iv) राज्यों के मध्य विवादों में केन्द्र का हस्तक्षेप (Centre's interference in the disputes between the states)—भारत में अनेक नदियाँ ऐसी हैं जो विभिन्न राज्यों में से होकर गुजरती हैं। इन नदियों और नहरों के पानी के बारे में इन राज्यों में विवाद हो सकते हैं। इसी प्रकार दो अथवा अधिक राज्यों में सीमा सम्बन्धी विवाद भी हो सकते हैं। केन्द्र सरकार इन विवादों में हस्तक्षेप कर सकती है। इन विवादों के माध्यम से भी संघ सरकार राज्य के प्रशासन पर नियन्त्रण रख सकती है।

(v) केन्द्रीय सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठानों की रक्षा (Protection of the Centre's Property)—संघीय कार्यपालिका को यह शक्ति दी गई है कि वह केन्द्रीय सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठानों की रक्षा के लिये किये जाने वाले उपायों के बारे में राज्यों की सरकारों को आवश्यक निर्देश दे। यदि वह राज्य सरकार द्वारा उठाये गये कदमों से सन्तुष्ट नहीं है तो स्वयं इस सम्बन्ध में कदम उठा सकती है।

(vi) आर्थिक सहायता देना (Financial grants)—संघीय सरकार राज्यों की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उन्हें वित्तीय सहायता देती है। वित्तीय सहायता देते समय संघीय सरकार राज्यों की सरकारों को इसके उपयोग के बारे में आवश्यक निर्देश व आदेश दे सकती है।

(vii) पिछड़ी हुई जातियों के कल्याण का उत्तरदायित्व संघ पर (Centre's responsibility of welfare of backward castes and classes)—पिछड़ी हुई जातियों व अनुसूचित जातियों के कल्याण का उत्तरदायित्व भी संघ पर है। इस सम्बन्ध में भी केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को आवश्यक निर्देश जारी कर सकती है।

(3) वित्तीय सम्बन्ध (Financial Relations)—आर्थिक क्षेत्र में भी राज्य सरकार संघ सरकार के ऊपर निर्भर रहती है। इन सम्बन्धों को हम निम्न-लिखित रूप में देख सकते हैं—

(i) कुछ ऐसे कर हैं, जो संघ सरकार द्वारा लगाये जाते हैं और संघ सरकार ही उन्हें वसूल करती है।

(ii) कुछ करों को संघ सरकार निर्धारित करती है, किन्तु राज्य उन्हें वसूल करता है। इन करों को राज्यों में बाँटा जाता है।

(iii) कुछ कर ऐसे हैं, जो संघ सरकार द्वारा लगाये जाते हैं और वसूल किये जाते हैं, परन्तु इनका वितरण राज्य में कर दिया जाता है।

(iv) संघ सरकार राज्यों को आर्थिक संकट का सामना करने के लिये अनु-दान भी दे सकती है।

(v) पीड़ितों की सहायता के लिये भी केन्द्र सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है।

(vi) इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार कुछ राज्यों को निश्चित रूप से वार्षिक अनुदान तथा ऋण देती रहती है।

निष्कर्ष—केन्द्र तथा राज्यों के मध्य प्रशासनिक, विधायी तथा वित्तीय सम्बन्धों की विवेचना से यह स्पष्ट है कि सैद्धान्तिक रूप में भले ही राज्यों को स्वायत्तता प्राप्त हो परन्तु व्यवहार में केन्द्र राज्यों पर विभिन्न प्रकार से नियन्त्रण रखता है।

10 संघीय लोक सेवा आयोग
(Union Public Service Commission)

प्रश्न 25—संघीय लोक सेवा आयोग के संगठन और कार्यों का वर्णन कीजिए।

लोक सेवा आयोग पर एक टिप्पणी लिखो।

संघीय लोक सेवा आयोग पर एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखिये।

Carefully explain the organisation, powers and functions of the Union Public Services Commission.

Write a critical essay on Union Public Service Commission.

संघीय लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission)—केन्द्रीय सरकार के लिये प्रतियोगिता के आधार पर योग्य उम्मीदवारों की भर्ती की दृष्टि से संघीय लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गयी है। संविधान के योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति का कार्य लोक सेवा आयोग को सुपुर्द किया गया है। संविधान में संघ के लिये पृथक् लोक सेवा आयोग की व्यवस्था है तथा राज्यों के लिये पृथक्। पर यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधान मण्डल चाहें तो संयुक्त लोक सेवा आयोग भी स्थापित किया जा सकता है। परन्तु इस प्रकार के आयोग की नियुक्ति की आज्ञा संघ को संसद ही दे सकती है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति की स्वीकृति से संघीय लोक सेवा आयोग किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रार्थना करने पर उस राज्य की सेवाओं सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करना स्वीकार कर सकता है।

लोक सेवा आयोग का संगठन (Composition of the public servic commission)—संविधान के अनुच्छेद 316 में लोक सेवा आयोग के संगठन आदि का वर्णन है। फिर भी संविधान में इसके सदस्यों की योग्यता, संख्या आदि पर स्पष्ट नियम नहीं बनाये गये हैं। यह कार्य राष्ट्रपति और संसद की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। वर्तमान समय में संघीय लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष तथा सात अन्य सदस्य हैं।

सदस्यों की योग्यतायें—सामान्य योग्यताओं के अतिरिक्त लोक सेवा आयोग का सदस्य होने के लिये आवश्यक है कि वह व्यक्ति—

(1) 65 वर्ष से कम आयु का न हो।

(2) पागल, दिवालिया व विवेकहीन न हो।

(3) आयोग के कम से कम आधे सदस्यों के लिये आवश्यक है कि वे कम से कम 10 वर्ष तक भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन वरिष्ठ प्रशासनिक पद धारण कर चुके हों।

नियुक्ति (Appointment)—उपरोक्त योग्यता रखने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति संघीय लोक सेवा आयोग के लिये राष्ट्रपति तथा सम्बन्धित राज्यों के लिये राज्यपाल करते हैं। यदि दो या दो से अधिक राज्यों के लिये संयुक्त लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की जाये तो उसके अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

सदस्यों की पदावधि (Tenure)—आयोग के सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष नियत किया गया है, पर यदि इस अवधि को पूरा होने से पूर्व संघीय लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य 65 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और राज्य लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य 60 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो तो वह अपने पद पर न रह सकेगा। इससे पूर्व भी कोई सदस्य अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है।

लोक सेवा आयोग के सदस्यों की पदमुक्ति (Removal of the chairman and the members of the U.P S.C.)—भारत का राष्ट्रपति अथवा सम्बन्धित राज्य का राज्यपाल भ्रष्टाचार के आधार पर किसी भी सदस्य को अपने पद से हटा सकता है। परन्तु किसी सदस्य को इस प्रकार तभी हटाया जा सकता है, जब उच्चतम न्यायालय ने जाँच करने के पश्चात् सिद्ध कर दिया हो कि इस प्रकार के किसी आधार पर उसका निष्कासन उचित है। राष्ट्रपति निम्न दशाओं में किसी सदस्य को उसके पद से पृथक् कर सकता है—

(1) वह दिवालिया घोषित किया जा चुका हो।

(2) वह अपने पद धारण काल में कोई अन्य वैतनिक नौकरी कर ले।

(3) वह राष्ट्रपति की सम्मति में, मानसिक अथवा शारीरिक दुर्बलता के कारण पद धारण करने योग्य न हो।

सदस्यों के वेतन (Salaries of the members)—आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों का वेतन तथा उनकी सेवा की शर्तें राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती है। इस समय अध्यक्ष को 4,000 रुपये तथा अन्य सदस्यों को 3,000 रुपये प्रतिमास वेतन मिलता है। आयोग का सभी व्यय भारत की संचित निधि से दिया जाता है। नियुक्ति के बाद इनके वेतन आदि में कमी नहीं की जा सकती है। राज्य लोक सेवा आयोग तथा संघीय आयोग की सेवा की शर्तें समान हैं तथा पद से हटाने की प्रक्रिया भी समान है।

लोक सेवा आयोग के कार्य (Functions of the commission)—भारतीय संघ और राज्यों के लोक सेवा आयोगों का मुख्य कार्य अखिल भारतीय व संघीय सेवाओं और राज्य की सेवाओं के लिये परीक्षाओं की व्यवस्था करना और

उनके परिणामों के आधार पर सफल उम्मीदवारों की घोषणा करना है। संघीय लोक सेवा आयोग दो या दो से अधिक राज्यों की प्रार्थना पर उनकी ऐसी सेवा के लिये जिसमें विशेष प्रकार की योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों की आवश्यकता हो, संयुक्त भर्ती योजना बनाने तथा उसे कार्यान्वित करने में उसको सहायता प्रदान कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 320 द्वारा यह अनिवार्य कर दिया गया है कि निम्नलिखित विषयों पर संघीय सरकार लोक सेवा आयोग से और राज्यों की सरकारें राज्य लोक सेवा आयोग से परामर्श लें—

(1) असैनिक सेवाओं और असैनिक पदों के लिये भर्ती करने की पद्धति के साथ सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर।

(2) असैनिक सेवाओं की नियुक्ति, पदोन्नति और एक सेवा से दूसरी सेवा में बदली करने में अनुसरण किये जाने वाले सिद्धान्तों पर।

(3) असैनिक पदों पर सेवा करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध की जाने वाली अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही पर।

(4) किसी असैनिक पद पर कर्त्तव्य पालन करते समय लगने वाली चोट से सम्बन्धित दावे पर।

(5) सरकारी मुकदमों में अपनी रक्षा पर किये गये व्यय की अदायगी के लिये सरकारी कर्मचारियों द्वारा पेश किये गये दावों पर।

राष्ट्रपति अथवा राज्य का राज्यपाल ऐसे नियम बना सकता है, जिसके अनुसार परिभाषित परिस्थितियों में सेवाओं से सम्बन्धित कुछ विषयों में लोक सेवा आयोगों से परामर्श लेना आवश्यक नहीं होगा। परन्तु इस प्रकार के सारे नियम संसद अथवा राज्य के विधान मण्डलों के सम्मुख अवश्य प्रस्तुत किये जायेंगे, जिन्हें उनके विखण्डन अथवा संशोधन का अधिकार होगा। इसके अतिरिक्त अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों के सदस्यों के स्थान सुरक्षित करने के प्रश्न पर आयोग की सलाह लेना आवश्यक नहीं है। अनुच्छेद 321 में दिया गया है कि संसद एक विधि बना सकती है, जिसके अनुसार केन्द्रीय लोक सेवा आयोग को अधिक कार्य भी सौंपे जा सकते हैं।

लोक सेवा आयोगों की रिपोर्ट (Report of the Public Service Commission)—संविधान के अनुच्छेद 32 के अनुसार संघीय लोक सेवा आयोग तथा राज्य के लोक सेवा आयोगों का यह कर्त्तव्य है कि वे राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के सम्मुख वर्ष भर की रिपोर्ट प्रस्तुत करें। ये रिपोर्ट मन्त्रिमण्डल द्वारा सम्बन्धित विधान-मण्डलों के सम्मुख अवश्य रखी जायेंगी। जिन विषयों में लोक सेवा आयोगों का परामर्श स्वीकार नहीं किया जायेगा, उनकी अस्वीकृति के कारणों का विवरण भी रिपोर्ट के साथ दिया जायेगा। इससे विधान मण्डलों को यह ज्ञात होता रहेगा कि लोक सेवा आयोगों का कार्य किस प्रकार चल रहा है। मन्त्रिमण्डल को भी लोक

सेवा आयोगों से सम्बन्धित अपने कार्यों का विवरण देना पड़ता है और यह लोक सेवा आयोगों की निष्पक्षता, स्वतन्त्रता तथा ईमानदारी का अन्तिम अभिरक्षण है।

लोक सेवा आयोगों की स्वतन्त्रता (Independence of the Public Service Commissions)—जिस प्रकार न्याय विभाग के लिये स्वतन्त्र होना उपयोगी है, उसी प्रकार लोक सेवा आयोगों के लिये भी स्वतन्त्र होना अनिवार्य है। इन आयोगों का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये ही उन व्यक्तियों को नियुक्त करते हैं, जिन्हें स्थायी रूप से सरकारी सेवा में रहकर राज्य का कार्य संचालन करना होता है। यदि इन आयोगों के कार्य में मन्त्रीगण या उच्च कर्मचारी हस्तक्षेप करें, तो ये आयोग कभी भी योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों को सरकारी सेवा के लिये नहीं चुन सकते। भारत के नवीन संविधान में इन आयोगों को स्वतन्त्र बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। यदि ये आयोग उचित रूप से कार्य करेंगे तो भारतीय तथा राजकीय सेवाओं में जो व्यक्ति आयेंगे वे अपने कार्य को ईमानदारी के साथ करेंगे और देश को प्रगति की ओर ले जाने में अपना योगदान देंगे।

लोक सेवा आयोगों का महत्व (Importance of the Public Service Commissions)—लोक सेवा आयोग के कार्यों का अध्ययन करने के पश्चात् उनकी उपयोगिता स्वयं ही पता चल जाती है। श्री एम० बी० पायली के अनुसार "संविधान यह निश्चित करता है कि नियुक्तियों के सम्बन्ध में लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक है और लोक सेवा आयोग का परामर्श साधारणतया मानना ही होगा। सरकार केवल कुछ मामलों में आयोग का परामर्श अस्वीकृत कर सकती है, जहाँ किसी गम्भीर सिद्धान्त का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो और जहाँ सरकार अपने निर्णय का औचित्य विधान मण्डल के सम्मुख सिद्ध करने का साहस रखती हो।"

11 भारतीय संविधान में संशोधन
(Amendments in Indian Constitution)

प्रश्न 26—भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का परीक्षण कीजिये और 1950 से अभी तक जो प्रमुख संशोधन संविधान में किये गये हैं, उनका महत्व बतलाइये।

भारतीय संविधान में संशोधन
(Amendments in Indian Constitution)

संविधान में संशोधन प्रक्रिया (Process of Amendment)—संविधान के

अनुच्छेद 368 में संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। संविधान के समस्त अनुच्छेदों का संशोधन एक ही प्रणाली द्वारा नहीं होता। इस लिये भारतीय संविधान में संशोधन की तीन प्रणालियाँ हैं—

(i) संविधान के कुछ अनुच्छेदों में संशोधन संसद द्वारा साधारण बहुमत से किया जा सकता है। उदाहरण के लिये नये राज्यों का निर्माण अथवा वर्तमान राज्यों का पुनर्गठन, राज्यों में द्वितीय सदनों की स्थापना अथवा उनका उन्मूलन आदि ऐसे विषय हैं, जिनमें संसद कानून बनाने की सामान्य प्रक्रिया द्वारा संशोधन कर सकती है।

(ii) संविधान के अधिकांश अनुच्छेदों का संशोधन संसद के दोनों सदनों द्वारा अपने कुल सदस्यों के बहुमत से और उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पास होने पर तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने पर संविधान का अंग बन जाता है।

(2) संविधान के कुछ अनुच्छेद ऐसे हैं, जिनमें संशोधन के लिये संसद के दोनों सदनों के अतिरिक्त कम से कम आधे राज्यों के विधान-मण्डलों की स्वीकृति भी आवश्यक है। इस श्रेणी में आने वाले अनुच्छेद निम्नलिखित हैं—

(i) संविधान के 54वें तथा 55वें अनुच्छेद, जिनका सम्बन्ध राष्ट्रपति के निर्वाचन से है। (ii) संघीय न्यायालय से सम्बन्धित भाग 4 का चौथा परिच्छेद तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों से सम्बन्धित भाग 6 का पाँचवा परिच्छेद, (iii) अनुच्छेद 73 तथा 162 जिनका सम्बन्ध संघ तथा राज्यों की कार्यकारिणी शक्ति से है। (iv) संविधान के भाग 11 का पहला परिच्छेद, जिसका सम्बन्ध संघ तथा राज्यों के विधायी सम्बन्धों से है। (v) संघीय, राज्य तथा समवर्ती सूचियाँ। (vi) संसद के लिये राज्यों के प्रतिनिधित्व सम्बन्धी मामले। (vii) संविधान का 36वाँ अनुच्छेद, जिसमें संविधान के संशोधन की प्रणाली निर्धारित की गई है।

उपरोक्त संशोधन प्रक्रिया से स्पष्ट है कि भारत के संविधान में आवश्यकतानुसार संशोधन सुगमता से किये जा सकते हैं। तथापि भारतीय संविधान में संशोधन की विधि को सरल भी नहीं कहा जा सकता।

भारतीय संविधान के संशोधन

सन् 1950 से लेकर अब तक भारतीय संविधान में 50 संशोधन हो चुके हैं, जो इस प्रकार हैं—

पहला संशोधन (First Amendment)—संविधान का प्रथम संशोधन जून 1951 में पास हुआ। इस संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 15, 19, 31, 85, 87, 174, 175, 372 तथा 376 में संशोधन किया गया और संविधान में नवीं अनुसूची और बढ़ा दी गई। इस संशोधन के द्वारा राज्य को अपनी सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था तथा नैतिकता एवं पिछड़े वर्ग के लोगों की उन्नति के लिये नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त हो गया। अनुसूचित

एवं पिछड़े वर्ग के कल्याण के लिये संविधान में धारा 31 (अ) तथा 31 (ब) को जोड़ दिया गया। इस संशोधन के पश्चात् समता, वाक् स्वतन्त्रता, व्यवसाय तथा सम्पत्ति के अधिकार पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये गये। संशोधन के पश्चात् इन धाराओं के किसी भी प्रावधान को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

दूसरा संशोधन (Second amendment)—यह संशोधन 1952 में किया गया। इस संशोधन से पूर्व प्रतिनिधित्व अधिनियम (Peoples representation act) में यह व्यवस्था थी कि कम से कम 5 लाख तथा अधिक से अधिक 6 लाख व्यक्तियों पर एक लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होगा। इस संशोधन अधिनियम के पश्चात् कम से कम 7½ लाख की जनसंख्या पर एक लोकसभा सदस्य निर्वाचित होना था।

तीसरा संशोधन (Third amendment)—यह संशोधन सन् 1954 में समवर्ती सूची के तेतीसवें स्तम्भ में परिवर्तन के लिये किया गया। इस संशोधन के द्वारा व्यापार, वाणिज्य के अर्थ को अधिक व्यापकता प्रदान की गई। इससे इस स्तम्भ में खाद्य-पदार्थ, तेलहन, तेल, पशुओं का चारा, रुई, जूट आदि भी सम्मिलित कर दिये गये।

चौथा संशोधन (Fourth amendment)—यह संशोधन सन् 1955 में किया गया। इसके अनुसार अनुच्छेद 31, 31 (क) तथा 305 और नवम् सूची में संशोधन किया गया। 31, (क) के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को सीमित कर दिया गया। इस संशोधन का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक हित में राज्य को किसी भी सम्पत्ति को अधिग्रहण करने का अधिकार प्रदान करना था। साथ ही यह भी व्यवस्था की गयी कि राज्य अधिग्रहीत सम्पत्ति के बदले में मुआवजा देगा, परन्तु राज्य द्वारा निर्धारित मुआवजे की राशि को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस संशोधन का मुख्य उद्देश्य जमींदारी समाप्ति कानून को लागू करना था।

पाँचवाँ संशोधन (Fifth amendment)—यह संशोधन भी सन् 1955 में पास हुआ। इसके अनुसार कोई भी विधेयक जिसका उद्देश्य (अ) किसी वर्तमान राज्य से कोई क्षेत्र निकाल कर अथवा किसी वर्तमान राज्य के भाग में कोई क्षेत्र जोड़कर एक नये राज्य का निर्माण करना, (ब) किसी राज्य के क्षेत्र में वृद्धि करना। (स) किसी राज्य का क्षेत्र कम करना, (द) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन करना हो, राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद के किसी सदन में प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा।

छठा संशोधन (Sixth amendment)—यह संशोधन सितम्बर 1956 में पास हुआ। इसके फलस्वरूप सातवीं अनुसूची में पुनः संशोधन किया गया। अनुच्छेद 269 व 286 में संशोधन हुआ। इस संशोधन के द्वारा संघ को अन्तर्राज्य-बिक्री कर निश्चित करने का अधिकार दिया गया है।

सातवां संशोधन (Seventh amendment)—इस संशोधन (1956) के द्वारा राज्यों के पुनर्गठन कानून को कार्यान्वित किया गया। संविधान की प्रथम अनुसूची में परिवर्तन करके विभिन्न पुनर्गठित राज्यों की सीमाओं का उल्लेख किया गया है तथा संघीय क्षेत्रों की सीमाओं को भी बताया गया है। इस संशोधन के द्वारा राज्य प्रमुखों के पदों को सदैव के लिये समाप्त कर दिया गया तथा लोकसभा एवं राज्य सभा के सदस्यों की अन्तिम संख्या निश्चित कर दी गयी।

आठवां संशोधन (Eight amendment)—इस संशोधन (1959) के द्वारा अनुच्छेद 334 में संशोधन किया गया है। इस संशोधन का उद्देश्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों तथा आंग्ल-भारतीयों के लिये सुरक्षित स्थानों की अवधि को 10 वर्ष के लिये बढ़ाना था। राज्य विधान सभाओं में भी उनके प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित कर दी गयी।

नवाँ संशोधन (Ninth amendment)—यह संशोधन 1960 में उस समझौते को कार्यान्वित करने के लिये किया गया था, जो कि सीमा विवाद को निपटाने के लिये भारत सरकार तथा पाकिस्तान की सरकार के बीच हुआ था।

दसवां संशोधन (Tenth amendment)—संशोधन (1961) के द्वारा संविधान को प्रथम अनुसूची का संशोधित कर दादर तथा नगर हवेली जो पहले पुर्तगाल के अधिकार में था भारत में मिला लिया गया।

ग्यारहवां संशोधन (Eleventh amendment)—इस संशोधन (1961) के द्वारा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की आवश्यकता, जिसका प्रावधान अनुच्छेद 1956 में था, निकाल दिया गया। साथ ही अनुच्छेद 71 में भी संशोधन किया गया। इसके द्वारा यदि दोनों सदनों में कुछ स्थान खाली हों तो भी राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन वैध माना जायेगा।

बारहवां संशोधन (Twelth amendment)—संविधान संशोधन (1962) के अनुसार गोआ, दामन व दीव का भारतीय संघ में एकीकरण हो गया।

तेरहवां संशोधन (Thirteenth amendment)—संविधान के तेरहवें संशोधन (1962) के द्वारा नागालैंड नामक 16वें राज्य का निर्माण हुआ।

चौहदवां संशोधन (Fourteenth amendment)—संविधान के संशोधन (1962) से कई संघीय क्षेत्रों में छोटी-छोटी विधान सभायें स्थापित की गईं और लोक सभा मे संघीय क्षेत्रों के प्रतिनिधियों की अधिकतम संख्या 25 निर्धारित की गई।

पन्द्रहवां संशोधन (Fifteenth amendment)—संविधान के संशोधन के अनुसार उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की अधिकतम आयु 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई। उच्च न्यायालयों के अधिकारियों के अधिकारों में भी कुछ वृद्धि

कर दी गई। इस संशोधन अधिनियम के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया कि किसी भी नागरिक अधिकारी के विरुद्ध एक बार ही जांच की जा सकेगी।

सोहलवाँ संशोधन (Sixteenth amendment)—इसके पश्चात् सोलहवाँ संशोधन भी सन् 1962 में पारित हुआ। इस संशोधन ने राज्यों को यह शक्ति प्रदान की कि वे भारत की प्रभुता और अखण्डता के हित में मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर उचित प्रतिबन्ध लगाने हेतु आवश्यक कानून बना सकते हैं। इस संशोधन के द्वारा यह भी निश्चित हुआ कि संसद और राज्यों के विधान मण्डलों के लिये खड़े होने वाले उम्मीदवार भारत की अखण्डता व प्रभुता को बनाये रखने की शपथ लेंगे।

सत्रहवां संशोधन (Seventeenth amendment)—यह संशोधन 1964 में पारित हुआ। इसके द्वारा सम्पत्ति शब्द को पुनः परिभाषित किया गया। साथ ही भूमि सुधार के मार्ग में आने वाली वैधानिक बाधाओं को दूर कर दिया गया।

अठाहरवां संशोधन (Eighteenth amendment)—इस संशोधन का उद्देश्य संघीय संसद को किसी भी नये राज्य अथवा 'संघीय क्षेत्र' के निर्माण का अधिकार प्रदान करना था।

उन्नीसवाँ संशोधन (Ninteenth amendment)—संविधान में उन्नीसवां संशोधन प्रस्ताव भी सन् 1966 में ही प्रस्तुत किया गया। इस संशोधन के द्वारा चुनाव याचिका पर विचार करने का उच्च न्यायालयों का चुनाव ट्रिब्यूनल्स अधिकार समाप्त कर दिया गया। धारा 324 में संशोधन करके यह व्यवस्था की गयी कि चुनाव याचिकाओं को सुनने का कार्य उच्च न्यायालय करेंगे।

बीसवाँ संशोधन (Twenteeth amendment)—यह सशोधन 1966 में पारित किया गया। इसके द्वारा 233वें अनुच्छेद में कुछ नई व्यवस्थायें जोड़ी गई। इस विधेयक का उद्देश्य उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना उत्तर-प्रदेश में राज्यपाल द्वारा नियुक्त जिला न्यायाधीशों की नियुक्तियों और उनके निर्णयों को वैधानिक रूप देना है।

इक्कीसवाँ संशोधन (Twenty-first amendment)—इसके अनुसार सिन्धी को संविधान की आठवीं अनुसूची में राष्ट्रभाषा की सूची में जोड़ दिया गया।

बाईसवाँ संशोधन (Twenty-second amendment)—यह संशोधन 15 अप्रैल 1969 को पास किया गया। इस संशोधन के अनुसार संसद आसाम के आदिवासी प्रदेशों को मिलाकर पृथक् राज्य का निर्माण कर सकती थी। यह वास्तव में राज्य के अन्तर्गत प्रादेशिक तथा क्षेत्रीय भावनाओं को सन्तुष्ट करने का प्रयास था।

तेईसवाँ संशोधन (Twenty-third amendment)—23वां संशोधन 9 दिसम्बर 1969 को पास किया गया। इस संशोधन का उद्देश्य संविधान द्वारा पिछड़ी जातियों तथा जन-जातियों के लोगों के लिये प्रदान की गयी सुरक्षाओं को

अवधि आगे 10 वर्ष के लिये बढ़ाना था। इस संशोधन के द्वारा यह भी व्यवस्था की गयी कि किसी भी राज्य का गवर्नर 'आँग्ल भारतीय समुदाय' के केवल एक सदस्य को राज्य विधान सभा में मनोनीत कर सकता है।

चौबीसवाँ संशोधन अधिनियम 1971 (Twenty-fourth amendment Act 1971)–24वें संविधान संशोधन अधिनियम के सम्बन्ध में 'गोलक नाथ बनाम पंजाब सरकार' (Golak Nath V/s State of Punjab) नामक केस को उद्धरित करना आवश्यक हो जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ V/s पंजाब सरकार नामक मामले में यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती। पिछले लगभग 4 वर्ष से यह विवाद का विषय रहा है कि संसद को संविधान के मूल अधिकारों से सम्बन्धित भाग को सशोधित करने का अधिकार है अथवा नहीं। कुछ संविधान विशेषज्ञों का मत था कि ससद को अधिकारों में संशोधन करने का अधिकार है, जबकि अन्य विद्वानों का मत था कि ससद को मूल अधिकारों में संशोधन का अधिकार प्राप्त नहीं है। संसद ने एक अध्यादेश के द्वारा "प्रिवी पर्सो" तथा उनकी मान्यताओं को समाप्त कर दिया। परन्तु राजे-महाराजे इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में ले गये। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले को 'व्यक्तिगत सम्पत्ति' (Private Property) का अधिकार माना। अतः संसद के लिये यह आवश्यक हो गया कि वह संविधान में संशोधन के लिये अधिकार प्राप्त करे। परन्तु मध्यावधि चुनाव से पूर्व तक सत्तारूढ़ दल का ससद में 2/3 बहुमत नहीं था जो कि संविधान में सशोधन के लिये आवश्यक था। इसीलिये सत्तारूढ़ दल ने मध्यावधि चुनाव कराये तथा मध्यावधि चुनावों में 2/3 बहुमत प्राप्त हुआ।

प्रिवी पर्सों को समाप्त करने के लिये यह आवश्यक हो गया कि संसद में विधेयक पास करके संसद मूलाधिकारों में संशोधन का अधिकार प्राप्त कर ले। 28 जुलाई, 1971 को केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल ने विधि मन्त्री श्री हरिराम गोखले को यह अधिकार प्रदान किया कि वे संसद को मूलाधिकारों में संशोधन करने का विधेयक प्रस्तुत करें। विधि मन्त्री गोखले ने एक अधिनियम संसद में प्रस्तुत किया, जिसे 24वें संशोधन अधिनियम का नाम. दिया गया। इस अधिनियम का आशय ससद के मूलाधिकारों के किसी भी भाग में सशोधन प्रदान करना था। 4 अगस्त, 1971 को यह अधिनियम 384 के प्रबल बहुमत से पारित कर दिया। 23 मत इसके विपक्ष में आये। इस अधिनियम के द्वारा अनुच्छेद 7 तथा 268 में संशोधन कर दिया गया तथा संसद को मूलाधिकारों में संशोधन प्रदान कर दिया गया।

पच्चीसवाँ संशोधन (Twenty-fifth amendment)—25वाँ संशोधन अगस्त 1971 में पास हुआ। इस संशोधन के द्वारा संसद को सार्वजनिक हित में किसी भी व्यक्तिगत सम्पत्ति को अधिग्रहण करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

छब्बीसवाँ संविधान संशोधन (Twenty-sixth amendment)—21 दिसम्बर को लोक सभा ने 26वाँ संविधान संशोधन विधेयक पारित किया। इस संशोधन

का उद्देश्य भूतपूर्व राजाओं तथा महाराजाओं को प्राप्त सभी प्रकार की उन्मुक्तियाँ तथा सुविधायें समाप्त करना था। अब उनकी स्थिति साधारण नागरिक की भाँति हो गयी।

सत्ताइसवां संशोधन (Twenty-seventh amendment)—इस विधेयक का उद्देश्य अन्य बातों के अलावा केन्द्र शासित क्षेत्र मिजोरम के लिये विधान सभा तथा मन्त्रि परिषद की व्यवस्था करना था।

अट्ठाइसवाँ संविधान संशोधन (Twenty-eighth amendment)—सत्तारूढ़ कॉंग्रेस सरकार प्रेस में निहित स्वार्थों के एकाधिकार को समाप्त करना चाहती थी। इसके लिये संविधान में संशोधन आवश्यक था। अतः तत्कालीन विधि मन्त्री गोखले ने 'समाचार पत्र स्वामित्व विधेयक' (Press Control Act) लोक सभा में प्रस्तुत किया। इस विधेयक का भारी बहुमत से समर्थन हुआ और राष्ट्रपति की भी स्वीकृति मिल गई। इस संशोधन का उद्देश्य प्रैस पर से पूंजीपतियों के एकाधिकार को समाप्त करना था।

उन्तीसवाँ संविधान संशोधन (Twenty-ninth amendment)—अप्रैल 1972 को विधि मन्त्री श्री हरिराम गोखले ने संविधान में 29वें संशोधन हेतु लोक सभा में एक विधेयक प्रस्तुत किया। इस संशोधन के द्वारा सरकार से यह अधिकार दिलवाना था कि जोत की निर्धारित सीमा से अधिक जिस भूमि का अधिग्रहण किया जाये, उसके लिये बाजार दर पर मुआवजा नहीं दिया जायेगा।

तीसवाँ संविधान संशोधन (Thirtieth amendment)—मई, 1972 को विधि मन्त्री गोखले ने ही संविधान में 30वें संशोधन हेतु एक विधेयक लोक सभा के समक्ष प्रस्तुत किया। इसका उद्देश्य दीवानी मामलों में अपील योग्य होने के प्रमाण पत्र के आधार पर उच्चतम न्यायालय में अपील करने के विषय में विधि आयोग की 44वीं तथा 45वीं रिपोर्ट को लागू करना था।

इकत्तीसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-first amendment)—मई, 19 2 में लोक सभा द्वारा 31वाँ संविधान संशोधन विधेयक पारित हुआ। इस संशोधन के द्वारा संसद ने भूतपूर्व अथवा वर्तमान आई० सी० एस० अफसरों के विशेषाधिकारों, सुविधाओं तथा उनकी सेवा की शर्तों को समाप्त कर दिया। इस संशोधन के द्वारा लोक सभा की सदस्य संख्या 505 से बढ़ाकर 545 कर दी गयी तथा संघ शासित प्रदेशों के प्रतिनिधियों की संख्या 20 निश्चित कर दी गयी।

बत्तीसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-second amendment)—अगस्त 1972, में ही एक और संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया गया। यह विधेयक राष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्धित था। इस संशोधन के अन्तर्गत राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को कम से कम चालीस विधायकों का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक माना गया। इन चालीस विधेयकों में से कम से कम 12 सदस्य लोक सभा के और

28 सदस्य विधान सभा के होने चाहियें। इसी प्रकार उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को भी कम से कम दस सदस्यों का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक है। उपरोक्त दोनों ही पदों के उम्मीदवारों को 2,500 रु० की धनराशि की जमानत (Security) जमा करनी पड़ेगी और यदि कोई उम्मीदवार कुल पड़े मतों (Votes) का $\frac{1}{6}$ भाग प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाता है, तो उसकी धनराशि जब्त कर ली जायेगी।

तेतीसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-third amendment)—भूतपूर्व विधि मन्त्री श्री एच० आर० गोखले ने 3 मई, 1974 को लोकसभा के समक्ष तेतीसवाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया और लोकसभा ने इसे 17 मई को ही पारित कर दिया। इस संशोधन के अन्तर्गत लोक सभा के अध्यक्ष और राज्यों के विधान-मण्डलों के सभापतियों को यह अधिकार दिया गया कि जब तक उन्हें किसी सदस्य के त्याग-पत्र के बारे में यह पूर्ण विश्वास न हो जाये कि त्याग-पत्र स्वेच्छा से दिया गया है, वे त्याग-पत्र को स्वीकार करने से इन्कार कर सकते हैं। गोखले जी ने इस संशोधन की व्याख्या करते हुये कहा था कि त्याग-पत्रों के स्वरूप को तय करते समय अध्यक्ष और सभापति निष्पक्ष तथा न्यायपूर्ण दृष्टि से ही निर्णय करेंगे।

चौतीसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-fourth amendment)—मई 1974 को भूतपूर्व कृषि राज्य मन्त्री अन्ना साहब शिन्दे ने लोक सभा में चौतीसवाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया जिसे लोक सभा ने भारी बहुमत से पारित कर दिया। इस संशोधन के द्वारा 13 राज्य सरकारों के भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों को संविधान की 9वीं सूची में शामिल कर लिया गया जिससे कि भारत के किसी भी न्यायालय में इन कानूनों को चुनौती न दी जा सके।

पेंतीसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-fifth amendment)—4 सितम्बर, 1974 को भारतीय संसद में तत्कालीन विदेश मन्त्री श्री स्वर्णसिंह द्वारा पेंतीसवाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया गया। इस संशोधन विधेयक के पक्ष में 310 मत और विरुद्ध में 7 मत पड़े। फलतः यह विधेयक पास हो गया। इस संशोधन के द्वारा सिक्किम को भारतीय गणतन्त्र के सहराज्य का दर्जा दिया गया। साथ ही यह व्यवस्था की गई कि भारतीय संसद के दोनों सदनों लोकसभा और राज्य सभा में सिक्किम का प्रतिनिधि होगा जिनका चुनाव प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर होगा। उन्हें केवल राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव में मत देने का अधिकार नहीं होगा, अन्य सभी विषयों पर मत देने का अधिकार होगा।

छत्तीसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-sixth amendment)—सन् 1975 को लोक सभा के समक्ष एक संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसे लोक सभा ने भारी बहुमत से 23 अप्रैल, 1975 को पारित कर दिया। इस संशोधन का उद्देश्य अरुणाचल में विधान सभा एवं मन्त्रि-मण्डल की व्यवस्था करना था। इस संशोधन के फलस्वरूप अरुणाचल प्रदेश के प्रशासन का काम-काज देखने के लिये जो

काउन्सलर थे उन्हें मन्त्री का दर्जा दे दिया गया। इस संशोधन के पश्चात् अरुणाचल को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हो गया।

सैंतीसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-seventh amendment)—21 अप्रैल, 1975 को तत्कालीन विदेश मन्त्री श्री वाई० वी० चव्हाण ने सिक्किम को भारत संघ में पूर्ण राज्य का दर्जा दिलवाने के लिये सैंतीसवाँ संविधान संशोधन विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत किया। 26 अप्रैल, 1975 को लोक सभा ने सिक्किम को भारतीय गणतन्त्र का 22वाँ पूर्ण राज्य घोषित करके सैंतीसवाँ संविधान विधेयक भारी बहुमत से पारित कर दिया।

अड़तीसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-eight amendment)—23 जुलाई, 1975 को लोकसभा ने भारी बहुमत से अड़तीसवाँ संविधान संशोधन पारित किया। इस संशोधन के द्वारा आपातकालीन घोषणा करने से पूर्व उस पर 'राष्ट्रपति की सन्तुष्टि' (Satisfaction of the President) को अदालत के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखने की व्यवस्था की गई। इसी भाँति संसद विधान-मण्डलों की बैठक न चलने के समय राष्ट्रपति, राज्यपालों व केन्द्रशासित प्रदेशों के प्रशासकों द्वारा जारी अध्यादेशों को भी न्यायालयों की कार्यवाही की सीमा से बाहर रखने की व्यवस्था की गई है। इस विधेयक के माध्यम से संविधान की और धाराओं में संशोधन किये गये हैं।

उनतालिसवाँ संविधान संशोधन (Thirty-ninth amendment)—7 अगस्त, 1975 को लोकसभा ने 39वाँ संविधान संशोधन विधेयक भारी बहुमत से पारित कर दिया। इसके द्वारा यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री तथा लोकसभा के अध्यक्ष के चुनाव को अदालतों में चुनौती नहीं दी जा सकेगी, अर्थात् उक्त व्यक्तियों के चुनाव सम्बन्धी विवाद न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर, किसी अधिकरण (Forum) को सौंपे जायेंगे। अधिकरण की स्थापना संसद कानून द्वारा की जायेगी। इस विधेयक को भूतपूर्व विधि मन्त्री हरिरामचन्द्र गोखले ने पेश किया था।

इस संशोधन के द्वारा यह व्यवस्था की गई कि प्रधानमन्त्री को किसी कार्य-वाही के लिये न्यायालय द्वारा न तो दण्डित किया जा सकेगा और न ही उसे गिरफ्-तार किया जा सकेगा। उसे किसी भी अदालत में पेश होने का आदेश भी नहीं दिया जा सकेगा। किन्तु कार्यकाल की समाप्ति के बाद दीवानी के मामलों से सम्बन्धित मुकदमे अदालत में उठाये जा सकेंगे।

चालीसवाँ संविधान संशोधन (Fortyeeth amendment)—1975 में लोकसभा ने चालीसवाँ संविधान संशोधन विधेयक पारित किया। यह संशोधन संविधान के अनुच्छेद 297 में किया गया। इस संशोधन के अनुसार भारत के समुद्र तल की सभी मूल्यवान वस्तुयें, खनिज तथा भूमि केन्द्र के अधिकार में होंगे और केन्द्र के लिये उनका उपयोग होगा। इस संशोधन के द्वारा संसद को प्रादेशिक जल

सीमा, तटवर्ती क्षेत्र एवं विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र व अन्य सामुद्रिक क्षेत्र की सीमायें निर्धारित करने का अधिकार मिल गया।

इकतालीसवाँ संविधान संशोधन (Forty-first amendment)—इस संविधान विधेयक को लोकसभा द्वारा पारित किया गया। इस संशोधन के द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों के सेवा निवृत्त होने की आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई।

बयालिसवाँ संविधान संशोधन (Forty-second amendment)—यह संशोधन विधेयक भूतपूर्व केन्द्रीय विधि मन्त्री श्री हरिरामचन्द्र गोखले ने 21 मई, 1976 को लोकसभा में पेश किया था। इस विधेयक में 59 धारायें थीं और यह अब तक का सबसे बड़ा संशोधन विधेयक था। यह विधेयक भारी बहुमत से पारित हो गया। इस विधेयक के द्वारा संविधान में अनेक संशोधन किये गये। संविधान की प्रस्तावना में निम्नलिखित संशोधन किये गये—

(i) भारत को 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' के स्थान पर 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक धर्मनिरपेक्ष समाजवादी गणराज्य' घोषित किया गया।

(ii) संविधान में नागरिकों के लिये 10 मूल कर्त्तव्य सम्मिलित किये गये।

(iii) राष्ट्र विरोधी गतिविधियों या संस्थाओं को रोकने के लिये संसद को कानून बनाने का अधिकार दिया गया।

(iv) लोकसभा और राज्य विधान सभाओं की अवधि को 5 वर्ष से बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया।

संविधान की धारा 74 में संशोधन किया गया, जिसके अनुसार राष्ट्रपति के लिये मन्त्रि-परिषद की सलाह को स्वीकार करना आवश्यक होगा। राष्ट्रपति को देश के किसी भी भाग में सुरक्षा की दृष्टि से आपात-स्थिति लागू करने का अधिकार प्रदान किया गया।

इस संशोधन के अतिरिक्त इस 42वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा संविधान के बारे में और भी अनेक संशोधन हुए।

तेतालिसवाँ संविधान संशोधन (Forty-third amendment)—यह 43वाँ संविधान संशोधन विधेयक संविधान विधि एवं न्यायमन्त्री श्री शान्ति भूषण ने 1976 को लोकसभा में पेश किया था। इस विधेयक का उद्देश्य संविधान की धारा 83 और 172 में संशोधन करके लोकसभा और राज्य की विधान सभाओं का कार्यकाल 6 वर्ष से कम करवा कर 5 वर्ष करवाना था।

चवालिसवाँ संविधान संशोधन (Forty-fifth amendment)—तत्कालीन विधि एवं न्यायमन्त्री शान्ति भूषण ने 16 मई, 1978 को 44वाँ संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किया था। इस संविधान संशोधन विधेयक में 49 धारायें थीं। लोकसभा ने इन सभी धाराओं को 23 अगस्त, 1978 को पारित कर दिया था, किन्तु राज्य सभा ने इसकी 5 धाराओं को रद्द कर दिया था।

पैंतालिसवाँ संविधान संशोधन विधेयक (Forty fifth amendment)— जनता सरकार ने सत्तारूढ़ होते ही गत कांग्रेस द्वारा संविधान में किये गये संशोधनों को रद्द करने का निर्णय किया। इसी उद्देश्य से जनता पार्टी ने 45वें संशोधन विधेयक द्वारा संविधान के मूल स्वरूप में परिवर्तन, लोकसभा एव विधान सभाओं के चुनावों की अवधि में परिवर्तन तथा न्यायपालिका की स्वाधीनता आदि में संशोधन के लिये 'जनमत संग्रह' की व्यवस्था की।

इस संशोधन विधेयक के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया कि आपातकाल की घोषणा केवल विदेशी हमले अथवा देश मे सशस्त्र संघर्ष की स्थिति में ही लागू की जा सकेगी।

इस संशोधन विधेयक में यह व्यवस्था कर दी गई कि किसी भी हालत में जीने के अधिकार को समाप्त अथवा निलम्बित नहीं किया जा सकेगा।

इस विधेयक के द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री एवं लोकसभाध्यक्ष के चुनाव सम्बन्धी मामलों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी। इस संशोधन विधेयक के द्वारा राष्ट्रपति केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद की सलाह मानने के लिये बाध्य नहीं होगा।

छियालिसवाँ संविधान संशोधन (Forty-sixth amendment)—गृह राज्य मन्त्री श्री धनिकलाल मण्डल ने 4 अगस्त, 1978 को लोकसभा में (46वाँ) संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तावित किया। इस विधेयक का उद्देश्य संविधान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित आदिम जाति के लिये आयोग का उपबन्ध करना है।

सैंतालीसवाँ संविधान संशोधन (Forty-Seventh amendment)— इस संशोधन विधेयक के अन्तर्गत दिल्ली के लिये विधान सभा की व्यवस्था की गई है। इस विधेयक को लोकसभा में प्रस्तावित किया जा चुका है तथा लोकसभा के गत सत्र में इस पर विचार हो रहा था। परन्तु सदस्यों की कम उपस्थिति के कारण इसे स्थगित कर दिया गया। इस विधेयक मे दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा देने का प्रस्ताव था तथा स्वतन्त्र विधान सभा की व्यवस्था की गई।

अड़तालीसवाँ संविधान संशोधन (Forty-eighth amendment)—अगस्त 1978 में सरकार ने लोकसभा में दल-बदल विधेयक प्रस्तुत किया। यह 48वाँ संविधान संशोधन विधेयक था परन्तु जनता पार्टी के ही प्रभावशाली सांसदों ने, जिनमें श्री मधुलिमये तथा श्री रविराय का नाम उल्लेखनीय है, इस विधेयक का विरोध किया। जनता पार्टी के सदस्यों द्वारा विरोध के कारण प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई को इस विधेयक को वापिस लेना पड़ा।

उनन्चासवाँ संविधान संशोधन विधेयक (Forty-ninth amendment)— 15 मार्च, 1979 को 49वाँ संशोधन विधेयक तत्कालीन वित्त राज्य मन्त्री श्री सतीशचन्द्र अग्रवाल द्वारा लोक सभा में प्रस्तुत किया गया था। इसका उद्देश्य

वस्तुओं की खरीद एवं बिक्री के ऊपर कर की परिभाषा करना था। इस विधेयक का उद्देश्य सरकार को खाद्य वस्तुओं पर पुन: कर लगाने का अधिकार प्रदान करना था।

पचासवाँ संविधान संशोधन विधेयक (Fiftyeeth amendment)—आचार्य विनोबा भावे ने केरल एवं पश्चिमी बंगाल की सरकारों द्वारा अपने-अपने राज्यों में गो-वध बन्द करने में अपनी असमर्थता प्रकट करने पर अपना आमरण अनशन शुरू किया था। गौ-हत्या राज्य सूची का विषय होने के कारण केन्द्रीय सरकार को गौ-हत्या बन्द करने के लिये देशव्यापी कानून बनाने में कठिनाई थी। गौ-हत्या रोकने के लिये देशव्यापी कानून बनाने की दृष्टि से इस संशोधन विधेयक को लोक सभा में जनता सरकार द्वारा प्रस्तुत किया गया।

12 भारत में राजनीतिक दल (Political Parties in India)

प्रश्न 27—वर्तमान समय में भारत में कौन-कौन से प्रमुख राजनीतिक दल हैं? इनके उद्देश्यों तथा कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिये। क्या बहुदलीय व्यवस्था भारत की परिस्थितियों के लिये उपयुक्त है?

What are the Present Political Parties in India? Discuss the objective and programmes of the leading Political Parties of India. Is Multi Party System suited to the India conditions?

आधुनिक लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका (Role of Political Parties in a modern democracy)

आधुनिक लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका को राजशास्त्र के सभी विद्वानों ने एकमत से स्वीकार किया है। लोकतन्त्र में मतदाताओं के पास ही सर्वोच्च सत्ता होती है। राजनीतिक दल अपनी नीतियों तथा कार्यक्रमों के आधार पर चुनावों में भाग लेते हैं। मतदाता इन विभिन्न राजनीतिक दलों की नीतियों तथा कार्यक्रमों का अध्ययन करने के पश्चात् अपना मत देते हैं। जिस दल को मतदाताओं का सर्वाधिक समर्थन प्राप्त होता है वही दल सरकार बनाता है तथा सरकार के माध्यम से अपने दल की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करने का प्रयत्न करता है। अत: स्पष्ट है कि राजनीतिक दल लोकतन्त्र में सत्ता तक पहुँचने की सीढ़ी है। आधुनिक लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों के अग्रलिखित महत्वपूर्ण कार्य हैं—

(1) जनमत निर्माण में सहायता करना (Political parties help in the formation of public opinion)—आधुनिक लोकतन्त्र में जनमत के निर्माण के अनेक साधन हैं जिनमें राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीतिक दल ससद तथा विधान सभाओं में सरकारी नीतियों के विभिन्न पहलुओं की आलोचनायें करते हैं तथा उन्हें जनता के सामने रखते हैं। जनता राजनीतिक दलों के इन विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् सरकार की नीतियों पर अपना मत स्थिर करती है।

(2) मतदाताओं को शिक्षित करना (To Educate the Voters)—आधुनिक लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों का एक महत्वपूर्ण दायित्व मतदाताओं को शिक्षित करना है। राजनीतिक दल विभिन्न राजनीतिक समस्याओं पर मतदाताओं को सूचना प्रदान करते हैं। अपने दल के समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं तथा दल की नीतियों से सम्बन्धित साहित्य को मतदाताओं के मध्य वितरित करते हैं। दल के प्रमुख वक्ता समय-समय पर मतदाताओं के समक्ष दल के विचार रखते हैं। प्रैस तथा सार्वजनिक मंचों के माध्यम से दल के नेता मतदाताओं के समक्ष अपने विचार रखते हैं तथा विभिन्न विषयों पर उन्हें शिक्षित करते हैं।

(3) सार्वजनिक समस्याओं में मतदाताओं की रुचि जागृत करना (To Create Voters, interest in public affairs)—लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों का एक महत्वपूर्ण कार्य सामान्य मतदान की सार्वजनिक मामलों के प्रति रुचि जागृत करना है। राजनीतिक दलों के प्रचार के कारण ही लोकतन्त्र में लोग सार्वजनिक जीवन के प्रति उत्सुकता प्रदर्शित करते हैं। यदि राजनीतिक दलों को मानचित्र से हटा दिया जाये तो सम्भवतः कोई भी व्यक्ति सार्वजनिक समस्याओं के प्रति न तो जागरूक होगा और न इन समस्याओं को हल करने में रुचि ही लेगा।

(4) सरकार तथा जनता के मध्य कड़ी (Link between the Government and the people)—आधुनिक लोकतन्त्र में राजनीतिक दल सरकार तथा जनता के मध्य कड़ी के रूप में कार्य करते हैं। संसद अथवा विधान सभाओं में सत्तारूढ़ दल का संगठन सरकार को जनता की समस्याओं से अवगत कराता रहता है तथा सदन में सत्तारूढ़ दल के सदस्य मन्त्रियों से जनहित सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछते हैं। वे सरकार की नीतियों में अपने सुझाव तथा संशोधन प्रस्तुत करते हैं जो सरकार के लिये मूल्यवान साबित होते हैं। विरोधी दल भी संसद तथा विधान सभाओं में सरकार के समक्ष जनता की समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं।

(5) सरकार के विभिन्न अंगों में समन्वय (Co ordination between the various organs of the Government)—लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य सरकार के विभिन्न अंगों में सामंजस्य बनाये रखना है। संसदीय व्यवस्था में तो व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका में सहयोग तथा समन्वय

अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। यह समन्वय राजनीतिक दलों द्वारा ही सम्भव है। जिस दल का व्यवस्थापिका में बहुमत होता है उसी दल की सरकार बनती है। अतः यह स्पष्ट है कि लोकतन्त्र में दलीय व्यवस्था के कारण ही कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के मध्य सामंजस्य बना रहता है।

(6) राष्ट्रीय एकता के निर्माण में सहायक (Political Parties also help in Creating Unity in the Nation)—आधुनिक लोकतन्त्र में राजनीतिक दल राष्ट्रीय एकता के निर्माण में भी सहायक होते हैं। लगभग सभी राष्ट्र ऐसी नीतियों का निर्माण करते हैं जो समाज के प्रत्येक वर्ग को अपील करती हों तथा देश के प्रत्येक भाग का व्यक्ति उनसे प्रभावित होता है। बहुसंख्यक मतदाताओं के हितों का ध्यान रखते हुये ही दलीय नीतियों का निर्माण किया जाता है।

प्रमुख भारतीय राजनीतिक दलों की नीतियाँ तथा कार्यक्रम
(Policies and Programmes of main Indian Political Parties)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian National Congress)—भारतीय राजनीति में सर्वाधिक प्राचीन तथा सर्वाधिक सुगठित दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस है। इसकी स्थापना सन् 1885 में श्री ए० ओ० ह्यूम नामक अंग्रेज द्वारा की गयी थी। प्रारम्भ में इसका उद्देश्य भारतीयों को ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध आतन्कवादी गतिविधियों की ओर अभिमुख होने से रोकना तथा एक ऐसा मंच प्रदान करना था जिसके माध्यम से संवैधानिक तथा प्रशासनिक सुधारों की मांगों को ब्रिटिश शासकों के सामने रखा जा सके। कालान्तर में कांग्रेस में नेतृत्व परिवर्तन हुआ। गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्य से असहयोग करने वाली संस्था बन गयी। सन् 1928 के लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में तो पूर्ण स्वराज्य की माँग करने वाली संस्था बन गयी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1942 में कांग्रेस ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा दिया। इस प्रकार प्रारम्भ मे काँग्रेस ने, जो ब्रिटिश साम्राज्य से सहयोग करने वाली संस्था थी, अब ब्रिटिश साम्राज्य के साथ टकराव (Confrontation) की नीति अपनायी। स्वाधीनता प्रदान करते समय कांग्रेस ही अकेला ऐसा दल था जो समस्त देश का प्रतिनिधित्व करता था। अतः अंग्रेजों ने कांग्रेस को ही सत्ता सौंपी।

स्वतन्त्रता के पश्चात् काँग्रेस की भूमिका (Role of Congress after Independence)—स्वाधीनता से पूर्व कांग्रेस ने जहाँ एक ओर देश की आजादी के लिये संघर्ष किया, वहीं दूसरी ओर समाज के सुधार के अनेक कार्यक्रम कांग्रेस के नेतृत्व में चलाये गये। स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा तथा दलितोद्धार के कार्यक्रमों में कांग्रेस ने विशेष रुचि ली। स्वाधीनता के पश्चात् भी कांग्रेस ने जहाँ एक ओर सत्तारूढ़ दल के रूप में देश के आर्थिक पुनर्निर्माण की नींव रखी, वहीं दूसरी ओर समाज-सुधार के कार्यक्रम कांग्रेस के प्रमुख अंग थे।

स्वाधीनता के पश्चात् पं० जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व में कांग्रेस ने आवड़ी अधिवेशन में समाज का समाजवादी ढांचा (Socialistic Pattern or Society) लक्ष्य घोषित किया। इसी उद्देश्य को आगे रखते हुए देश की अर्थव्यवस्था में 'सार्वजनिक क्षेत्र' (Public Sector) को प्रमुख भूमिका दी गयी तथा साथ ही 'निजी क्षेत्र' (Private Sector) को भी बनाये रखा गया। कहने का अभिप्राय: यह है कि हमारे देश की अर्थव्यवस्था की विवशताओं को देखते हुए 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' (Mixed Economy) को अपनाया गया।

कांग्रेस के नेतृत्व में ही देश ने 5 पंचवर्षीय योजनाओं को पूरा किया जिनके माध्यम से देश ने आर्थिक निर्भरता की ओर कदम बढ़ाया। कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य क्षेत्रों में देश ने प्रगति की। सन् 1977 से पूर्व तक कांग्रेस का केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों में एकाधिकार रहा। स्वर्गीय प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरु, श्री लाल बहादुर शास्त्री तथा वर्तमान प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने देश को राजनीतिक स्थायित्व प्रदान किया तथा देश आत्म-निर्भरता की ओर बढ़ा। 'राष्ट्रीय एकता' (National Integration) को बनाये रखने में कांग्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

कांग्रेस का विभाजन (Great split of Congress)—सन् 1967 के आम चुनावों में कांग्रेस की 8 राज्यों में पराजय के पश्चात् श्रीमती गांधी कांग्रेस को पुन: व्यापक जनाधार प्रदान करने की दिशा में सोचने लगी थीं दूसरी ओर कांग्रेस का बूढ़ा नेतृत्व संगठन पर कब्जा जमाये हुये था। श्रीमती गांधी तथा कांग्रेस संगठन के मध्य मतभेद राष्ट्रपति के चुनाव में अधिक खुलकर आ गये। सन् 1969 में राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी के मनोनयन को लेकर श्रीमती गांधी तथा सिन्डीकेट (दल में पुराने कांग्रेसियों का गुट जो संगठन पर हावी था) के मध्य स्पष्ट रूप से दो खेमे बन गये। कांग्रेस संसदीय बोर्ड (Congress Parliamentary Board) तथा कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में बहुमत होने के कारण सिन्डीकेट श्री नीलम संजीव रेड्डी को कांग्रेस का अधिकृत प्रत्याशी घोषित कराने में सफल हो गया। परन्तु इसी बीच श्रीमती गांधी को केन्द्र सरकार विभिन्न गुप्तचर ऐजेन्सियों के माध्यम से यह सूचना मिली कि राष्ट्रपति के चुनाव के पश्चात् सिन्डीकेट उन्हें कांग्रेस संसदीय दल के नेता पद से हटाने का प्रयास करेगा। अत: उन्होंने कांग्रेस प्रत्याशी श्री रेड्डी के स्थान पर निर्दलीय प्रत्याशी श्री वी० वी० गिरी को अपना समर्थन देने का निश्चय किया। श्री गिरि को श्रीमती गांधी के अलावा साम्यवादी दलों, डी० एम० के० तथा अन्य वामपन्थी दलों का समर्थन प्राप्त था। राष्ट्रपति के चुनाव में हार के पश्चात् सिन्डीकेट के नेताओं का मनोबल गिर चुका था और वे श्रीमती गांधी के साथ सम्मानजनक समझौते की तलाश में थे। परन्तु अब बदली हुई परिस्थितियों में श्रीमती गांधी अपनी शर्तों पर समझौता चाहती

थीं। इस बीच श्री चह्वाण ने दोनों पक्षों में समझौता कराने के लिये एक एकता प्रस्ताव प्रस्तुत किया परन्तु श्रीमती गांधी ने इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया। 11 नवम्बर 1969 को कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में सिन्डीकेट के समर्थक सदस्यों ने श्रीमती गांधी को कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से पृथक् कर दिया। दूसरी ओर श्रीमती के गांधी समर्थकों ने कार्य समिति की इस बैठक का बहिष्कार किया। 12 नवम्बर को कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में लगभग 300 संसद सदस्यों ने श्रीमती गांधी के नेतृत्व में अपना विश्वास प्रकट किया इस प्रकार कांग्रेस के विभाजन की प्रक्रिया पूरी हो गयी। स्वाधीनता के पश्चात् देश को 2 दशकों तक राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करने के पश्चात् औपचारिकता के साथ कांग्रेस दल का विभाजन हो गया।

1971 के लोकसभा के मध्यावधि चुनावों में श्रीमती गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस को भारी सफलता मिली। उनके दल को लोकसभा की 2/3 सीटों पर सफलता मिली। 1972 के विधान सभा चुनावों में भी उनके दल को भारी सफलता मिली। इसके पश्चात् श्रीमती गांधी के दल ने चुनाव आयोग के समक्ष वास्तविक कांग्रेस होने का दावा किया। चुनाव आयोग ने उनके दल को असली कांग्रेस माना। सिन्डीकेट के जो सदस्य पृथक् हो गये थे, उनकी कांग्रेस (संगठन) के नाम से पहचान बनी रही।

कांग्रेस का दूसरा विभाजन (Second Split of Congress)—सन् 1977 के लोकसभायी चुनावों तक श्रीमती गांधी का कांग्रेस दल पर वर्चस्व बना रहा। वे कांग्रेस की निर्विवाद नेता रहीं। परन्तु 1977 के चुनावों में आपातकाल तथा नसबन्दी के मुद्दे पर समस्त उत्तरी भारत में कांग्रेस का सफाया हो गया। स्वयं श्रीमती गांधी जनता प्रत्याशी श्री राजनारायण से चुनाव हार गयीं। कांग्रेस के सत्ता से अपदस्थ होने के पश्चात् कांग्रेस के एक वर्ग ने कांग्रेस की पराजय के लिये श्रीमती गाँधी तथा उनके पुत्र श्री संजय गांधी को जिम्मेदार ठहराना आरम्भ कर दिया। श्रीमती गांधी कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्य थीं परन्तु दल के महत्वपूर्ण निर्णयों में अब उनकी उपेक्षा की जाने लगी। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी ने कर्नाटक प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष श्री के० एच० पाटिल के मध्य विवाद में श्री पाटिल का पक्ष लिया। श्री अर्स उस समय श्रीमती गांधी के कट्टर समर्थक माने जाते थे। इस बीच कर्नाटक के राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण ने श्री अर्स की सरकार को बर्खास्त कर दिया। कांग्रेस में श्रीमती गांधी के समर्थकों ने 2 जनवरी 1978 को दिल्ली में कांग्रेस जनों का सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में इन्दिरा कांग्रेस की स्थापना की घोषणा कर दी गयी। इस समय 5 राज्यों के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री, 4 प्रदेशाध्यक्ष, भू० पू० रेलमन्त्री श्री कमलापति त्रिपाठी, भू० पू० गृहमंत्री श्री उमाशंकर दीक्षित, जम्मू-काश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री मीरकासिम आदि कुछ

वरिष्ठ कांग्रेसी नेता ही श्रीमती गांधी के साथ थे। अधिकांश वरिष्ठ कांग्रेसी नेता श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी के नेतृत्व वाली कांग्रेस के साथ रहे। इस प्रकार कांग्रेस के दूसरे विभाजन की औपचारिकता भी पूर्ण हो गयी।

सन् 1980 के लोकसभायी चुनावों में श्रीमती गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने 2/3 स्थान प्राप्त करके अपनी स्थिति सुदृढ़ की। जून 1980 के विधान सभायी चुनावों में भी कांग्रेस (इ) को अधिकांश राज्यों में सफलता मिली। उस समय चुनाव आयोग ने अपने निर्णय में इन्दिरा कांग्रेस को ही असली कांग्रेस ठहराया है।

इन्दिरा कांग्रेस की नीतियाँ तथा कार्यक्रम
(Policies and Programmes of Indira Congress)

इन्दिरा कांग्रेस की नीतियाँ तथा कार्यक्रम लगभग वही हैं जो अविभाजित कांग्रेस की नीतियाँ तथा कार्यक्रम थे। सन् 1980 के लोकसभायी चुनावों से पूर्व प्रसारित घोषणा-पत्र के अनुसार दल की प्रमुख नीतियाँ तथा कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं—

(1) अल्पसंख्यकों तथा पिछड़े वर्गों के अधिकारों की सुरक्षा (Congress (I) stands for the protection of the rights of minorities and scheduled castes and scheduled tribes)— स्वाधीनता से पूर्व तथा स्वाधीनता के पश्चात् साम्प्रदायिकता का विरोध तथा धर्मनिर्पेक्षता को प्रोत्साहन देना कांग्रेस का प्रमुख कार्यक्रम था। अविभाजित कांग्रेस ने भी धर्मनिर्पेक्षता को अपना प्रमुख लक्ष्य घोषित किया था। साम्प्रदायिकता को रोकने के लिये कांग्रेस ने साम्प्रदायिकता विरोधी समिति' तथा 'इन्सानी बिरादरी' जैसी संस्थाओं की स्थापना को प्रोत्साहन दिया। श्रीमती गाँधी ने अपने दल के चुनाव घोषणा पत्र में हरिजनों तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा का आश्वासन दिया जिसके परिणामस्वरूप उन्हें 1980 के लोकसभायी चुनावों में इन वर्गों का भरपूर समर्थन मिला।

(2) 20 सूत्री कार्यक्रम को पुनः लागू करना (Congress (I) promised to reimplement 20 points programme)—आपातकाल को लागू करने से पूर्व श्रीमती गांधी ने पिछड़े एवं कमजोर वर्गों के कल्याण के लिये 20 सूत्री कार्यक्रम को लागू किया था परन्तु 1977 के चुनावों में कांग्रेस की पराजय के पश्चात् केन्द्र में जनता सरकार सत्तारूढ़ होने के पश्चात् 20 सूत्री कार्यक्रम को रोक दिया गया। सन् 1980 के लोकसभायी चुनावों से पूर्व श्रीमती गांधी ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में 20 सूत्री कार्यक्रम को पुनः लागू करने का वायदा किया। उन्होंने अपनी चुनाव सभाओं में यह आश्वासन दिया कि जनता के कल्याण के लिये 20 सूत्री कार्यक्रम को पुनः लागू किया जायेगा।

(3) प्रैस की स्वाधीनता का वायदा (Congress (I) assured freedom of Press—आपातकाल में श्रीमती गांधी की सरकार ने समाचार-पत्रों पर सैन्सर

लागू कर दिया था जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस की 1977 के लोकसभायी चुनावों में हार हुई। अत: 1980 के मध्यावधि चुनावों से पूर्व श्रीमती गांधी ने कांग्रेस (इ) के चुनाव घोषणा-पत्र में समाचार-पत्रों की स्वाधीनता को कायम रखने की घोषणा की। इससे बुद्धिजीवी वर्ग तथा मध्यवर्ग का उन्हें पुन: समर्थन मिला।

(4) कानून एवं व्यवस्था की गिरती हुई स्थिति में सुधार (Improvement the determinating Law and Order Situation)—सन् 1980 के लोकसभायी चुनावों में कांग्रेस (इ) ने कानून एवं व्यवस्था की गिरती हुई स्थिति को जनता पार्टी के विरुद्ध मुख्य मुद्दा बनाया था। उन्होंने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में कानून एवं व्यवस्था की स्थिति को सुधारने का वायदा किया। अत: इन चुनावों में शहरी मध्यवर्गीय मतदाताओं का उन्हें भारी समर्थन मिला।

(5) तेजी से बढ़ती हुई कीमतों पर नियन्त्रण का आश्वासन (Assurance of Control over spiralling prices)—केन्द्र में लोकदल तथा कांग्रेस (रेड्डी) की मिली-जुली सरकार की स्थापना के पश्चात् आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि होने लगी थी। जनता महंगाई से परेशान थी। श्रीमती गाँधी ने अपनी चुनाव सभाओं में बढ़ती हुई कीमतों के लिये जनता लोकदल की मिली-जुली सरकार की नीतियों को जिम्मेदार बताया। उन्होंने मतदाताओं से कीमतों पर नियन्त्रण करने का वायदा किया जिसके परिणामस्वरूप उन्हें निम्न, मध्यवर्गीय तथा निम्न आय वाले मतदाताओं ने अपना समर्थन दिया।

(6) स्थायी सरकार का आश्वासन (Assurance of Stable Government)—सन् 1977 के लोकसभायी चुनावों मे मतदाताओं ने केन्द्र में जनता सरकार को सत्तारूढ़ किया था, परन्तु इन नेताओं की आपसी कलह तथा मतभेदों के कारण वह अपना कार्यकाल पूरा करने से पूर्व ही गिर गयी। लोग केन्द्र में अनिश्चितता तथा अस्थिरता से परेशान थे। कांग्रेस (इ) ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में मतदाताओं को स्थिर सरकार देने का वायदा किया। इस आश्वासन ने मतदाताओं को आकर्षित किया। लोग केन्द्र में स्थिरता चाहते थे अत: उन्होंने कांग्रेस (इ) को व्यापक समर्थन दिया।

(7) गुट-निर्पेक्षता तथा पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने की नीति (Nonalignment and Policy of maintaining friendly Relations with the Neighbouring Countries)—कांग्रेस (इ) ने घोषणा-पत्र में स्वर्गीय नेहरू जी द्वारा प्रतिपादित गुट निर्पेक्षता की नीति पर चलने का आश्वासन दिया तथा पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने की नीति की घोषणा की।

कांग्रेस (अर्स) की नीतियाँ तथा कार्यक्रम

(Policies and Programmes of Congress [U])

सन् 1978 में कांग्रेस में हुये दूसरे विभाजन के परिणामस्वरूप श्रीमती

गांधी अपने समर्थकों सहित कांग्रेस से पृथक् हो गयीं। कांग्रेस के अधिकांश वरिष्ठ नेता श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी के नेतृत्व वाली कांग्रेस में रह गये। दक्षिणी राज्यों के चुनावों में पराजय के पश्चात् श्री रेड्डी ने त्यागपत्र दे दिया। श्री स्वर्णसिंह कांग्रेस के अन्तरिम अध्यक्ष बने। इस बीच श्रीमती गांधी तथा श्री देवराज अर्स के मध्य गम्भीर मतभेद हो गये। श्री अर्स कांग्रेस (इ) से त्यागपत्र देकर स्वर्णसिंह के नेतृत्व वाली कांग्रेस में सम्मिलित हो गये। इसके पश्चात् वे इस कांग्रेस के अध्यक्ष बने। श्री चह्वाण ने कांग्रेस अर्स से त्याग-पत्र देने के पश्चात् दल के युवा नेतृत्व के दबाव के कारण अर्स के दल की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया। श्री शरद पंवार इस दल के अध्यक्ष बनाए गये। अब इस दल को कांग्रेस (श) के नाम से जाना जाता है।

कृषि को देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार बनाना तथा कृषि की परम्परागत तकनीक का आधुनीकरण, देश की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र को महत्वपूर्ण स्थान, उत्पादन को प्राथमिकता तथा अनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर रोक, अर्थव्यवस्था को 'रोजगारोन्मुख' बनाना तथा योजनाओं में शिक्षित तथा तकनीकी बेरोज़गारों की समस्या को प्राथमिकता महंगाई तथा गरीबी की समस्या का हल करना तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि आदि कांग्रेस अर्स की प्रमुख नीतियाँ तथा कार्यक्रम हैं। स्वेच्छिक आधार पर परिवार-नियोजन के कार्यक्रम लागू करना, विदेशी नीति के क्षेत्र में गुटनिर्पेक्षता की नीति को जारी रखना तथा पड़ौसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना कांग्रेस (अर्स) का प्रमुख लक्ष्य है।

लोक दल की नीतियाँ तथा कार्यक्रम
(Policies and Programmes of Lok-Dal)

चौधरी चरणसिंह के नेतृत्व में श्री राजनारायण, मधुलिमये, बीजू पटनायक, श्री रवि राय आदि ने जून, 1979 में जनता पार्टी से त्यागपत्र देकर जनता (स) की स्थापना की। परन्तु चुनाव आयोग द्वारा जनता (स) को मान्यता न दिये जाने पर श्री चरणसिंह तथा उनके समर्थकों ने लोकदल के नाम से नये दल की नींव डाली। गत मध्यावधि चुनावों में लोकदल ने चुनावों में भाग लिया तथा कांग्रेस (इ) के पश्चात् दूसरा स्थान प्राप्त किया। लोकदल की प्रमुख नीतियाँ तथा कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं—

(1) लोकदल कृषि को अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार प्रदान करने के पक्ष में है। गत लोकसभा चुनावों में दल के नेता चौधरी चरणसिंह ने शहर बनाम देहात नारा नारा दिया था।

(2) लोकदल सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा कुप्रबन्ध को दूर करने के लिये प्रतिबद्ध है।

(3) लोकदल ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को प्राथमिकता देने तथा टेलीविजन तथा रेफ्रीजरेटर जैसी विलासिता की वस्तुओं पर प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा की।

(4) लोकदल के चुनाव घोषणा-पत्र में लिखा है कि सत्ता में आने के पश्चात् वह पंचायतों तथा जिला-परिषदों को पुलिस में भर्ती के अधिकार प्रदान करेगा तथा शहरी क्षेत्रों की पुलिस-व्यवस्था में भी सुधार किया जायेगा।

(5) लोकदल के चुनाव घोषणा-पत्र में 'प्रैस की स्वतन्त्रता' की गारण्टी दी गयी है।

(6) लोकदल विदेशी पूंजी तथा तकनीक पर निर्भरता को समाप्त करने के पक्ष में है। यह दल पूंजी प्रधान उद्योगों के स्थान पर श्रम प्रधान उद्योगों की स्थापना का पक्षधर है।

लोकदल का विभाजन (Split in the Lok-Dal)—लोकदल में नेताओं का एक वर्ग ऐसा था जो चौधरी चरणसिंह के मनमाने तरीके से कार्य करने की शैली के विरुद्ध था। श्री चौधरी चरणसिंह ने हरियाणा के लोकदल के नेता तथा हरियाणा के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री देवीलाल को लोकदल से निकाल दिया। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई जिसके परिणामस्वरूप लोकदल के चरणसिंह विरोधी गुट ने लोकदल का सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में विहार के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री कर्पूरी ठाकुर को विभाजित लोकदल का अध्यक्ष चुना गया। इस दल को लोकदल (कर्पूरी) के नाम से सम्बोधित किया गया। इस दल में कर्पूरी ठाकुर के अतिरिक्त श्री देवीलाल, जार्ज फर्नांडीज, रविराय आदि लोकदल के शीर्ष नेता हैं। इस प्रकार लोकदल का भी औपचारिक विभाजन हो गया।

जनता पार्टी की नीतियाँ तथा कार्यक्रम
(Policies and Programmes of Janta Party)

सन् 1977 के लोकसभायी चुनावों में गैर साम्यवादी गैर कांग्रेसी दलों ने कांग्रेस के विरुद्ध संयुक्त रूप से चुनाव लड़ा। इस मोर्चे में संगठन कांग्रेस, भारतीय जनसंघ, स्वतन्त्र पार्टी, समाजवादी तथा श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्व में विद्रोही कांग्रेसी सम्मिलित थे। चुनावों से पूर्व पर्याप्त समय न मिल पाने के कारण इन दलों का जनता मोर्चे में विधिवत् विलय न हो सका। चुनावों में जनता मोर्चे ने 300 स्थानों पर विजय प्राप्त की।

जनता पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र के अनुसार दल की नीतियाँ तथा कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं—

(1) नागरिक अधिकारों की बहाली तथा प्रैस की स्वाधीनता की गारण्टी।

(2) जनता पार्टी ने 42वें संशोधन को रद्द करके आपातकाल पूर्व की संवैधानिक स्थिति को ला दिया।

(3) बेरोजगारी की समस्या को हल करने पर जोर। शिक्षित एवं तकनीकी बेरोजगारों को शीघ्रातिशीघ्र रोजगार।

(4) कृषि को प्राथमिकता तथा कृषि पर आधारित उद्योगों का विकास।

(5) 10 हजार रु० तक की वार्षिक आय पर आयकर की छूट।

(6) $2\frac{1}{2}$ एकड़ तक की जोत पर लगान की माफी।

(7) संविधान में व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से हटाकर 'काम पाने के अधिकार' को मौलिक अधिकारों की सूची में सम्मिलित करना।

(8) वर्तमान चुनाव प्रणाली में सुधार के लिये तारकुण्डे समिति द्वारा की गयी सिफारिशों को लागू करना।

(9) विक्री कर के स्थान पर उत्पादन कर की व्यवस्था।

(10) माध्यमिक स्तर तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।

(11) स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का चुनाव तथा निर्वाचित पदाधिकारियों को दायित्व सौंपने का प्रयास।

(12) 'वास्तविक गुट निरपेक्षता' (Genuine non-alignment) की नीति को लागू करना।

जनता पार्टी का प्रथम विभाजन (First split in Janta Party)—सन् 1977 के लोकसभायी चुनावों में भारतीय मतदाताओं ने प्रथम बार केन्द्र से कांग्रेस को अपदस्थ करके संयुक्त विपक्ष को शासन की बागडोर सौंपी। श्री देसाई तथा चौधरी चरणसिंह के मध्य मतभेदों के कारण श्री चरणसिंह तथा उनके समर्थकों ने देसाई मन्त्रिमण्डल से त्याग पत्र दे दिया। केन्द्र में देसाई सरकार गिर गयी। इस प्रकार 2 वर्ष 2 महीने में ही जनता पार्टी का विभाजन हो गया। इस प्रकार मतदाताओं की आकांक्षाओं को पूरा किये विना जनता पार्टी विखर गयी।

जनवरी, 1980 के लोकसभायी चुनावों में जनता पार्टी की पराजय के पश्चात् भूतपूर्व जनसघ घटक ने जनता पार्टी से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके भारतीय जनता पार्टी नामक नये दल की स्थापना की। श्री अटल बिहारी बाजपेयी इस नये दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष बने। जनता पार्टी में श्री चन्द्रशेखर तथा उनके अनुयायी, श्री मोरारजी के समर्थक, भूतपूर्व समाजवादी घटक के कुछ सदस्य श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी तथा श्री पीलू मोदी के समर्थक शेष रह गये हैं। जून 1980 के विधान सभा चुनावों में जनता पार्टी की साख और भी गिरी है। वह सशक्त विरोधी दल की भूमिका का निर्वाह करने में समर्थ प्रतीत नहीं होती।

जनता पार्टी का द्वितीय विभाजन : भारतीय जनता पार्टी का जन्म (Second split in the Janta Party and the birth of Bhartiya Janta Party)—जनता पार्टी के प्रथम विभाजन के पश्चात् दल में दोहरी सदस्यता का विवाद बना रहा। दल का एक वर्ग भूतपूर्व भारतीय जनसंघ घटक के सदस्यों पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के साथ सम्बन्ध बनाये रखने का आरोप लगाता रहा। अतः भूतपूर्व जनसंघ घटक के सदस्यों ने जनता पार्टी से त्याग पत्र देकर दिल्ली में 6 अप्रैल 1980 को सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में भारतीय जनता पार्टी के विधिवत् गठन की घोषणा की गयी। श्री अटलबिहारी बाजपेयी इसके सर्वसम्मत अध्यक्ष

निर्वाचित हुए। दल के बम्बई अधिवेशन में 'गान्धीवादी समाजवाद' को लक्ष्य घोषित किया तथा मुख्य विरोधी दल के रूप में दल को भूमिका को सुनिश्चत करने की घोषणा की गयी।

भारतीय साम्यवादी दल की नीतियाँ तथा कार्यक्रम
(Policies and Programmes of Communist Party of India)

भारत में साम्यवादी दल का इतिहास काँग्रेस के पश्चात् अन्य सभी राजनीतिक दलों से पुराना है। रूस में बोल्शेविक क्रान्ति की सफलता से प्रेरित होकर सन् 1924 में भारतीय साम्यवादियों ने भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना की। भारतीय साम्यवादी दल की नीतियाँ तथा कार्यक्रम 'तृतीय साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय' के निर्देशन में बने।

द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने के कारण साम्यवादी दल से प्रतिबन्ध हटा लिया गया था। अतः स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्यवादियों ने देश की राजनीति में खुलकर भाग लिया। किसान एवं मजदूर वर्ग उनकी गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र रहे। स्वाधीनता के पश्चात् साम्यवादी दल ने देश में सशक्त क्रान्ति का कई बार प्रयास किया परन्तु सफलता नहीं मिली। अन्ततोगत्वा साम्यवादी नेतृत्व ने संसदीय राजनीति को वास्तविकता के रूप में स्वीकार कर लिया।

सन् 1952 के आम चुनावों में साम्यवादी दल ने भाग लिया। लोकसभा की 70 सीटों पर उसने अपने उम्मीदवार खड़े किये तथा उसके 27 उम्मीदवार सफल हुए। सन् 1957 के लोकसभा चुनावों में उसके 29 उम्मीदवार सफल रहे। सन् 1957 के विधान सभा चुनावों के पश्चात् केरल में साम्यवादी दल की सरकार बनी।

सन् 1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करने के पश्चात् दल में मतभेद खुलकर सामने आ गये। दल के उदारपन्थी नेतृत्व ने नेहरू का समर्थन किया जबकि दल के उग्रपन्थी नेतृत्व ने चीन की निन्दा के प्रस्ताव पर दल के महत्वपूर्ण पदों से त्यागपत्र दे दिया। दल के उग्रपन्थी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ समय बाद इन्हें रिहा कर दिया गया। 25 सितम्बर, 1964 को दल के उग्रपन्थी नेताओं ने मार्क्सवादी साम्यवादी नाम के नये दल की स्थापना की। कालान्तर में मार्क्सवादी साम्यवादी दल की शक्ति में वृद्धि हुई।

भारतीय साम्यवादी दल की नीतियाँ (Policies of Communist Party of India)—साम्यवादी दल की प्रमुख नीतियाँ निम्न प्रकार हैं—

(अ) सम्पत्ति का सामूहिक स्वामित्व तथा संविधान से सम्पत्ति के अधिकार को मूलाधिकारों की सूची से समाप्त करना।

(ब) एकाधिकारवादी पूंजीवाद को समाप्त करना।

(स) उद्योगों का राष्ट्रीयकरण।

(द) राज्यों का भाषायी आधार पर पुनर्गठन ।
(य) साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीति का विरोध ।
(र) पूर्ण रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा की गारण्टी ।
(ल) पूर्ण नि:शुल्क शिक्षा ।
(व) राष्ट्रमण्डल से भारत का सम्बन्ध विच्छेद ।

मार्क्सवादी साम्यवादी दल (Marxist Party of India)—मार्क्सवादी साम्यवादी दल की स्थापना साम्यवादी दल में विभाजन के पश्चात् हुई। सन् 1967 के आम चुनावों में दल ने स्वतन्त्र रूप से भाग लिया तथा लोकसभा की 19 सीटें जीतीं। 1967 के चुनावों के पश्चात् दल ने पश्चिमी बंगाल में मिली-जुली सरकार बनायी। सन् 1971 के लोकसभायी चुनाव में मार्क्सवादी दल ने 25 स्थान प्राप्त किये। सन् 1977 के आम चुनावों में दल को 22 स्थान प्राप्त हुए। विधान सभा चुनावों में दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। 1980 के लोकसभा चुनावों में दल को 36 स्थान मिले। मई 1982 में विधान सभा के चुनावों में संयुक्त वामपन्थी मोर्चे ने विशाल बहुमत प्राप्त करके पुन: सरकार बनायी। इस मोर्चे में मार्क्सवादी दल सर्वाधिक शक्तिशाली घटक है। मार्क्सवादी दल के श्री ज्योतिबसु इस समय पश्चिमी बंगाल के मुख्यमन्त्री हैं।

छठी लोकसभा के निर्वाचन (मार्च 1977) में विभिन्न दलों की स्थिति

राज्य	कुल	जनता पार्टी	कांग्रेस	मार्क्सवादी	भा० स० दल	अन्ना द्रमुक	द्रमुक	अकाली दल	अन्य
आंध्र प्रदेश	42	1	41	—	—	—	—	—	—
असम	14	4	10	—	—	—	—	—	—
बिहार	54	54	—	—	—	—	—	—	—
गुजरात	26	16	10	—	—	—	—	—	—
हरियाणा	10	10	—	—	—	—	—	—	—
हिमाचल	4	4	—	—	—	—	—	—	—
जम्मूकश्मीर	6	—	2	—	—	—	—	—	3
कर्नाटक	28	2	26	—	—	—	—	—	—
केरल	20	—	11	—	4	—	—	—	5
मध्य प्रदेश	40	37	1	—	—	—	—	—	2
महाराष्ट्र	48	19	20	3	—	—	—	—	6
मणिपुर	2	—	2	—	—	—	—	—	—
मेघालय	2	—	1	—	—	—	—	—	1
नागालैण्ड	1	—	—	—	—	—	—	—	1
उड़ीसा	21	15	4	—	—	—	—	—	1
पंजाब	13	3	—	1	—	—	—	9	—
राजस्थान	25	24	1	1	—	—	—	—	—
तमिलनाडु	39	3	14	—	3	18	1	—	—
त्रिपुरा	2	1	1	—	—	—	—	—	—
उत्तर-प्रदेश	85	85	—	—	—	—	—	—	—
पश्चिमी बंगाल	42	14	3	17	—	—	—	—	8
अंडमान निकोबार	1	—	1	—	—	—	—	—	—
अरूणाचल प्रदेश	2	—	1	—	—	—	—	—	1
चण्डीगढ़	1	1	—	—	—	—	—	—	—
दादर नगर हवेली	1	—	1	—	—	—	—	—	—
दिल्ली	7	7	—	—	—	—	—	—	—
गोवा-दमन-दीव	2	—	1	—	—	—	—	—	1
लक्ष्यद्वीप	1	—	1	—	—	—	—	—	—
मिजोरम	1	—	—	—	—	—	—	—	1
पांडिचेरी	1	—	—	—	—	1	—	—	—
सिक्किम	1	—	1	—	—	—	—	—	—
कुल	540	300	153	22	7	19	1	9	30

सातवीं लोक सभा के निर्वाचन जनवरी 1980 में विभिन्न दलों की स्थिति

राज्य	कुल संख्या	कांग्रेस (आई)	जनता पार्टी	लोक दल	कांग्रेस (अर्स)	सी पी आई	मार्क्सवादी	अन्य	स्वतन्त्र	कुल संख्या
आन्ध्र प्रदेश	42	41	—	—	1	—	—	—		42
आसाम	14	2	—	—	—	—	—	—	—	2
विहार	54	30	8	5	4	4	—	—	3	54
गुजरात	26	25	1	—	—	—	—	—	—	26
हरियाणा	10	5	1	4	—	—	—	—	—	10
हिमाचल प्रदेश	4	3	—	—	—	—	—	—	—	3
जम्मू कश्मीर	6	1	—	—	1	—	—	3	—	5
कर्नाटक	28	2	1	—	—	—	—	—	—	3
केरल	20	5	—	—	3	2	6	4	—	20
मध्य प्रदेश	40	35	4	—	—	—	—	—	1	40
महाराष्ट्र	48	39	8	—	1	—	—	—	—	48
मणीपुर	2	1	—	—	—	1	—	—	—	2
मेघालय	2	1	—	—	—	—	—	—	—	1
नागालैंड	1	—	—	—	—	—	—	1	—	1
उड़ीसा	21	19	—	1	—	—	—	—	—	20
पंजाब	13	12	—	—	—	—	—	1	—	13
राजस्थान	25	18	4	2	1	—	—	—	—	25
सिक्कम	1	—	—	—	—	—	—	—	—	1
तमिलनाडु	39	20	—	—	—	—	—	19	—	39
त्रिपुरा	2	—	—	—	—	—	2	1	—	3
उत्तर प्रदेश	85	51	3	29	—	1	—	—	1	85
प० बंगाल	42	4	—	—	—	3	27	7	—	41
केन्द्र शासित										
अण्डमान-निकोबार	1	1	—	—	—	—	—	—	—	1
अरुणाचल प्रदेश	2	2	—	—	—	—	—	—	—	2
चण्डीगढ़	1	1	—	—	—	—	—	—	—	1
दादर नगर हवेली	1	1	—	—	—	—	—	—	—	1
दिल्ली	7	6	1	—	—	—	—	—	—	7
गोवा, दमन दीव	2	—	—	—	1	—	—	1	—	2
लक्ष्य द्वीप	1	—	—	—	1	—	—	—	—	1
मिजोरम	1	—	—	—	—	—	—	—	1	1
पांडिचेरी	1	1	1	—	—	—	—	—	—	2
कुल	542	351	32	41	13	11	35	36	0	525

नोट—(1) सातवें आम चुनाव में केवल 525 सीटों का चुनाव हुआ। 17 सीटों के चुनाव कुछ विशेष कारणों से न हो सके। (2) जून 1980 में राज्यों की विधान सभाओं के चुनाव हुए, जिनमें तमिलनाडु को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में इन्दिरा कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ।

प्रश्न 28 – निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—

(1) भारत का उपराष्ट्रपति, (2) महान्यायवादी या एटार्नी जनरल, (3) नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक।

(1) भारत का उपराष्ट्रपति (Vice-President of India)—भारतीय संविधान के अनुसार भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा, जो उपराष्ट्रपति होने के साथ-साथ राज्य सभा का सभापति भी होगा, परन्तु जिस काल में वह राष्ट्रपति के कार्यों को सम्पन्न करेगा, उस समय उसे राज्य सभा के सभापति के कार्यों को करने का अधिकार न होगा।

योग्यतायें (Qualification)—(1) वह भारत का नागरिक हो। (2) 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो। (3) राज्य सभा का सदस्य बनने की योग्यता रखता हो। (4) कोई व्यक्ति, जो भारत सरकार के अथवा राज्य सरकार के आधीन लाभ के पद धारण किये हुये है, उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र न होगा।

निर्वाचन (Election)—उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के समस्त सदस्य संयुक्त अधिवेशन में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा गुप्त रीति से करते हैं।

उपराष्ट्रपति का कार्यकाल एवं पदत्याग (Tenure)—संविधान के अनुसार उपराष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने की तिथि से 5 वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा, परन्तु वह इससे पूर्व भी अपना हस्ताक्षर युक्त त्याग-पत्र राष्ट्रपति को दे सकता है और पद से पृथक् हो सकता है। राज्यसभा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे पदच्युत भी कर सकती है, परन्तु ऐसा प्रस्ताव लोकसभा से पास होना भी अनिवार्य है। जब राज्य सभा इस प्रकार का प्रस्ताव लाना चाहे, तो उसे 14 दिन पहले सूचना देनी होगी।

उपराष्ट्रपति के कार्य (Functions)—राज्य सभा का सभापति होने के नाते उपराष्ट्रपति को वे सब कार्य करने पड़ते हैं, जो एक सभापति करता है, उसको निर्णायक मत देने का अधिकार प्राप्त है। राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाने की दिशा में वह राष्ट्रपति का कार्य करेगा, जब तक कि नये राष्ट्रपति का चुनाव न हो जाये। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का पद रिक्त होने के 3 माह के अन्दर नये राष्ट्रपति का चुनाव हो जाना चाहिये। जब राष्ट्रपति बीमारी या अन्य किसी कारणवश अपना कार्य नहीं कर पाता, तब भी उप-राष्ट्रपति ही उसके कार्यों की देख-रेख करता है।

(2) महान्यायवादी या एटार्नी जनरल (Advocate-general or Attornee General)—संविधान के अनुसार भारत का राष्ट्रपति एक महान्यायवादी की नियुक्ति करेगा, जो उसके परसाद काल तक अपने पद पर रहेगा और संसद द्वारा निर्धारित वेतन उसे प्राप्त होगा। इस पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जा

सकना है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने की सब योग्यतायें हों। महान्यायवादी का मुख्य कार्य भारत सरकार को समय समय पर कानूनी मामलों में सलाह देना तथा राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गये कानूनी सम्बन्धी कर्त्तव्यों का पालन करना, अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये वह भारत के किसी भी न्यायालय के सम्मुख उपस्थित हो सकता है। उसे यह भी अधिकार है कि वह संसद के किसी भी सदन में या संसद की किसी समिति में उपस्थित होकर, उसके सम्मुख भाषण दे सके, पर उसे इनमें मत देने का अधिकार नहीं है। जनवरी, 1950 में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा महान्यायवादी का वेतन 4,000 रुपया मासिक निर्धारित हुआ था। साथ ही कुछ भत्ते आदि भी उसे देने की व्यवस्था इस आदेश द्वारा की गई थी।

(3) नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक (Comptroller and Accountant General)—भारत में सरकारी आय-व्यय के लेखे का ठीक-ठीक हिसाब रखने के लिये एक पृथक् विभाग संगठित किया गया है, जिसके प्रधान अधिकारी को नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक कहते हैं। इसकी नियुक्ति मन्त्रि-परिषद के परामर्श के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इसको पद से हटाने की प्रक्रिया वही है, जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की है। उसे संसद के कानून द्वारा निर्धारित वेतन तथा भत्ते मिलते हैं। वर्तमान समय में उसे 4000 रुपया मासिक वेतन मिलता है। उसके वेतन तथा भत्ते आदि भारत की संचित निधि से प्रदेय होते हैं और संसद उन पर मत नहीं दे सकती। अपने पद से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् वह किसी सरकारी पद को प्राप्त नहीं कर सकता।

उसका मुख्य कार्य यह देखना है कि भारत सरकार और राज्य सरकारों के आय व्यय का लेखा उचित ढंग से तथा ठीक-ठीक रक्खा जाये और उसकी निष्पक्ष रूप से जाँच की जाये। राजकीय आय-व्यय पर संसद को अपना नियन्त्रण रखने का मौका नियन्त्रक एवं महालेखा निरीक्षक के माध्यम से मिलता है। वह सरकारी विभागों के आय-व्यय की जाँच करने के पश्चात् अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति के सम्मुख पेश करता है। तत्पश्चात् राष्ट्रपति उस रिपोर्ट को संसद के पास भेजता है।

इस प्रकार महालेखा परीक्षक राष्ट्र के धन के प्रयोग के विषय में जनता के प्रतिनिधित्व को अपनी रिपोर्ट में जानकारी दिलाता है और इस धन के गलत तरीके से व्यय होने पर उसकी आलोचना करता है।

तुलनात्मक-प्रश्न
COPARATIVE–QUESTIONS

COMPARATIVE.

प्रश्न 1—भारतीय संघ व्यवस्था की अमरीकी संघीय व्यवस्था से तुलना कीजिये।

भारत संघ तथा संयुक्त राज्य अमेरिका संघ

भारत का राष्ट्रपति	सं० रा० अमेरिका का राष्ट्रपति
(1) भारत संघ में सर्वप्रथम संघराज्यिक इकाइयों को एक केन्द्र के अन्तर्गत-सम्मिलित करने के उपरान्त उनका पुनर्गठन किया गया है।	(1) संयुक्त राज्य अमेरिका संघ का निर्माण इकाई राज्यों की स्वतन्त्र इच्छा एवं उनके पारस्परिक सहयोग द्वारा किया गया है।
(2) भारत में संघ तथा राज्यों के लिये एक ही संविधान रखा गया है।	(2) सं० रा० अमेरिका में संघ तथा राज्यों के लिये पृथक्-पृथक् संविधानों का निर्माण किया गया है
(3) भारत संघ के इकाई राज्यों को पूर्ण स्वायत्ता नहीं दी गई है तथा अवशिष्ट शक्तियों को संघ सरकार में ही सन्निहित रखा गया है।	(3) सं० रा० अमेरिका में इकाई राज्यों को पूर्ण स्वायत्ता प्राप्त है तथा वहाँ पर अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को प्रदान की गई हैं।
(4) भारत में संसद के उच्च सदन राज्य सभा में राज्यों को उनके आकार तथा जनसंख्या के अनुपात से प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। इसकी सदस्य संख्या 250 रखी गई है।	(4) सं० रा० अमेरिका में संसद का उच्च सदन सिनेट है, जिसमें कि इकाई राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। इस सदन में कुल मिलाकर 100 सदस्य होते हैं तथा भारत की भांति यह भी एक स्थाई सदन है।
(5) भारत के संघ में इकाई राज्यों के प्रशासकों का चुनाव अथवा नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा संघीय मन्त्रि-परिषद् के परामर्श से होती है। वे राज्यों में केन्द्र-सरकार के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि माने गये हैं।	(5) सं० रा० अमेरिका में इकाई राज्यों के प्रशासकों (राज्यपालों) को जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता है।
(6) भारत संघ में नागरिकों को एक ही प्रकार की नागरिकता प्रदान की	(6) सं० रा० अमेरिकों के नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्रदान की गई है।

गई है। वे केवल संघ के ही नागरिक माने जा सकते हैं।	वहाँ के नागरिकों को एक तो केन्द्र संघ की नागरिकता तथा दूसरी, जिस राज्य के वे निवासी हों, उस राज्य की भी नागरिकता का भागी माना जाता है।
(7) भारतीय संविधान ने संक्रान्ति काल में समस्त इकाई राज्यों के शासन को केन्द्रीय शासन के अधीन कर देने का उपबन्ध रखा है।	(7) सं० रा० अमेरिका के संविधान में ऐसा कोई प्राविधान नहीं है कि जिसके आधीन संघीय शासन व्यवस्था को एकात्मक शासन में परिवर्तित किया जा सके।
(8) भारत की संघीय संसद को इकाई राज्यों की सहमति के विना ही उनकी सीमाओं में परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त है।	(8) सं० रा० अमेरिका की संसद इकाई राज्यों की सहमति के अभाव में उनकी सीमाओं का पुर्नवितरण करने का कोई अधिकार नहीं रखती।
(9) भारत संघ में देश के एक से दूसरे कोने तक सर्वत्र एक जैसी न्यायिक-व्यवस्था की गई है। यहाँ के उच्च-न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के ही आधीन रखे गये हैं।	(9) सं० रा० अमेरिका में दोहरी न्याय-व्यवस्था अपनाई गई है।

प्रश्न 2 – भारत के राष्ट्रपति की स्थिति एवं उसकी शक्तियों की सं० रा० अमेरिका के राष्ट्रपति से तुलना कीजिये।

भारत का राष्ट्रपति	सं० रा० अमेरिका का राष्ट्रपति
(1) भारत का राष्ट्रपति राज्य का ही अध्यक्ष है न कि सरकार का।	(1) स० रा० अमेरिका का राष्ट्रपति राज्य तथा सरकार दोनों का अध्यक्ष माना गया है।
(2) भारत के राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से ही होता है।	(2) सं० रा० अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति द्वारा किया जाता है।
(3) भारत का राष्ट्रपति अपनी मन्त्रिपरिषद के परामर्श के अभाव में व्यवहारतः कोई भी कार्य नहीं करता।	(3) सं० रा० अमेरिका का राष्ट्रपति अपनी मन्त्रिपरिषद का परामर्श स्वीकार करने को बाध्य नहीं है।
(4) भारत में राष्ट्रपति वास्तविक प्रशासक नहीं है। वास्तविक शासक तो यहाँ पर प्रधानमन्त्री होता है।	(4) सं० रा० अमेरिका में वहाँ का राष्ट्रपति ही वास्तविक शासक होता है।

(5) भारत के राष्ट्रपति को न्यायिक क्षेत्र में व्यापक शक्तियों से अलंकृत किया गया है। वह किसी भी अपराधी को मुक्त अथवा क्षमा कर सकता है।

(5) सं० रा० अमेरिका में राष्ट्रपति को केवल सीमित रूप में ही न्यायिक शक्तिताँ प्रदान की गई हैं और वह केवल उन्हीं अपराधियों को क्षमा दे सकता है जिनके विरुद्ध कोई महाभियोग कार्यवाही न की गई है अथवा जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दण्ड का भागी नहीं बनाया गया है।

(6) विधायी क्षेत्र में भारत के राष्ट्रपति को सीमित शक्तियाँ ही सौंपी गई हैं। संसद द्वारा पारित किसी भी विधेयक को उसे अपनी स्वीकृति अन्ततः देनी ही पड़ती है।

(6) सं० रा० अमेरिका का राष्ट्रपति द्वारा पारित विधेयकों पर अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है तथा वह किसी भी विधेयक को निलम्बित कर सकता है। विधायी क्षेत्र में अमेरीकी राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण अधिकार दिये गये हैं।

सारांश—(1) सं० रा० अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक अर्थों मे शासन करता है तथा वह राज्य का भी अध्यक्ष होता है। (2) भारत का राष्ट्रपति केवल राज्याध्यक्ष ही माना गया है तथा उसे देश में संवैधानिक प्रधान का दायित्व भी निभाना होता है। (3) सं० रा० अमेरिका के राष्ट्रपति की तुलना में भारत के राष्ट्रपति की शक्तियां प्रत्यक्षतः न्यून ही हैं।

प्रश्न 3—भारत की मन्त्रिपरिषद की तुलना सं० रा० अमेरिका की मन्त्रिपरिषद से कीजिये।

भारत तथा सं० रा० अमेरिका की मन्त्रि-परिषदों में सैद्धान्तिक अन्तर पाया जाना स्वाभाविक ही है। क्योंकि, भारतीय संविधान ने देश में एकात्मकता की ओर प्रवृत्त अपनी संघात्मक व्यवस्था को संसदीय शासन प्रणाली के आधीन रक्खा है, जबकि अमेरिका की कैबिनेट यथार्थतः अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का ही प्रतिनिधित्व करती है।

भारत की मन्त्रि-परिषद्	सं० रा० अमेरिका की मन्त्रि-परिषद
(1) भारत में मन्त्रिपरिषद के सदस्यों को संसद की सदस्यता से पृथक नहीं माना जाता है। वे संसद के ही दोनों सदनों से चुने जा सकते हैं।	(1) सं० रा० अमेरिका की मन्त्रि-परिषद में सदस्य मन्त्रियों की छांट राष्ट्रपति द्वारा की जाती है न कि प्रधानमन्त्री के द्वारा। वे संसद के सदस्य नहीं होते। यदि कोई संसदीय सदस्य मन्त्री के पद पर चुन लिया जाय तो उसे तत्काल अपने उक्त पद से त्यागपत्र देना होता है।

(2) भारतीय संसदीय प्रणाली में राजनैतिक एकरूपता के सिद्धान्त को विशेष महत्व दिया जाता है। इसी कारण यहाँ की मन्त्रिपरिषद के सभी सदस्यों का संसद के बहुमत प्राप्त दल का सदस्य होना आपेक्षित है।

(2) सं० रा० अमेरिका की कैबिनेट में राजनीतिक एकरूपता को कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता।

(3) भारतीय मन्त्रिपरिषद के सदस्य संसद की कार्यवाहियों में एक मतदान को छोड़कर शेष सभी कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। संसद में विधेयक प्रस्तावित करना, वाद-विवाद में भाग लेना तथा विधायकों को पारित कराना मन्त्रिपरिषद के सदस्यों का प्रमुख दायित्व होता है।

(3) अमरीकी मन्त्रिपरिषद के सदस्य विधायी कार्यवाही में कोई भाग नहीं लेते। वे कांग्रेस की समितियों के समक्ष स्पष्टीकरण आदि कृत्यों के हेतु उपस्थित होते हैं, किन्तु सदन में वे न तो कोई विधेयक ही प्रस्तावित कर सकते हैं और न हो उसके सम्वन्ध में वाद-विवाद कर कर सकते हैं।

(4) भारतीय कैबिनेट सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को लेकर एक टीम के रूप में कार्य करती है। इसके सदस्य संसद के प्रति सामूहिक एवं व्यक्तिगत दोनों ही रूपों में उत्तरदायी होते हैं।

(4) सं० रा० अमेरिका के मन्त्रिमण्डल में सदस्य मन्त्रियों को राष्ट्रपति के प्रति अपना सामूहिक अथवा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व निभाना आवश्यक रहता है। उन पर राष्ट्रपति का सीधा नियंत्रण स्थापित रहता है न कि संसद का। राष्ट्रपति उन्हें जब चाहे ,पदच्युत भी कर सकता है।

(5) भारत की मन्त्रिपरिषद में प्रधानमन्त्री अपनी टीम का नेता होता है। यहाँ पर मन्त्रिगण उसके अधीनस्थ पदाधिकारी न होकर सहयोगी कार्यकारी की भाँति कार्य करते हैं।

(5) सं० रा० अमेरिका की मन्त्रिपरिषद में सभी सदस्य मन्त्रियों तथा प्रधानमन्त्री को भी राष्ट्रपति के आधीनस्थ शासनाध्यक्षों के रूप में कार्य करना होता है। राष्ट्रपति उनका परामर्श मानने को बाध्य नहीं किया जा सकता।

(6) भारत में मन्त्रिपरिषद की सदस्यता उसी व्यक्ति को मिलती है, जिसे कि संसद में सफलता मिली है तथा जो उसके निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल का नेतृत्व करने की क्षमता रखता है।

(6) सं० रा० अमेरिका की मन्त्रिपरिषद में सदस्यों को कांग्रेस का अनुभव रखना भी आवश्यक नहीं समझा जाता। मन्त्रिमण्डल की सदस्यता प्राप्त कर लेने के पश्चात् यह आवश्यक नहीं है कि कोई सदस्य मन्त्री अमरीकी संसद के प्रति किसी भी रूप में उत्तरदायी ही रखा जाये।

(7) भारतीय मन्त्रिपरिषद की सदस्य संख्या का निश्चय सवैधानिक मान्यताओं के आधार पर प्रधानमन्त्री करता है।	(7) सं० रा० अमेरिका में मन्त्रि-परिषद की सदस्य संख्या सीमित ही रक्खी गई है। वहाँ पर कोई 10–12 विभागाध्यक्ष ही राष्ट्रपति की कैबिनेट के सदस्य होते हैं।

प्रश्न 4—भारतीय लोकसभा की सं० रा० अमेरिका की प्रतिनिधि सभा से तुलना कीजिये।

भारत में संसदीय शासन प्रणाली तथा शासनांगों में पारस्परिक सहयोग और एकरूपता के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है, किन्तु स० रा० अमेरिका की अध्यक्षात्मक सरकार में प्रतिनिधि सदन अपने उच्च सदन सिनेट की अपेक्षा एक दुर्बल निकाय ही होता है और यहाँ पर शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त के साथ-साथ शासन के अंगों में सामंजस्य रखने की ओर कोई विशेष बल भी नहीं दिया जाता। भारतीय संसद में दो सदन लोकसभा और राज्य सभा हैं तथा अमेरिका की संसद के दोनों सदनों के नाम हैं—प्रतिनिधि सभा तथा सिनेट। भारतीय लोकसभा में कुल मिलाकर 520 सदस्य होते हैं, जबकि अमरीकी प्रतिनिधि सभा की सदस्य संख्या 437 ही है।

लोकसभा (भारत)	प्रतिनिधि सभा (सं० रा० अमेरिका)
(1) भारत में लोकसभा के बहुमत दल के सदस्यों को ही कार्य-पालिका (मन्त्रिमण्डल) में सम्मिलित करने का विधान है। लोकसभा पर मन्त्रिमण्डल का अंकुश भी होता है। इस प्रकार यहाँ पर इन शासनांगों में सामंजस्य रखने की चेष्टा की गई है।	(1) सं० रा० अमेरिका में विधायिका को सरकार की प्रशासनिक मशीनरी के एक विभाग के रूप से अपना कार्य करना होता है। व्यवस्थापिका का वहाँ पर मन्त्रिमण्डल पर कोई भी नियन्त्रण नहीं रहता।
(2) भारतीय मन्त्रिमण्डल अपने सभी कार्यों के लिये लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है।	(2) सं० रा० अमेरिका का मन्त्रि-मण्डल अपने कार्यों के लिये प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं है।
(3) लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष है।	(3) प्रतिनिधि सभा का कार्यकाल 2 वर्ष है।
(4) धन विधेयकों के सम्बन्ध में इसे अन्तिम शक्तियाँ प्रदान की गई हैं साधारण विधेयकों पर भी इसे उच्च सदन के सहयोग से अन्तिम शक्ति प्राप्त है।	(4) इसे धन विधेयकों के सम्बन्ध में अन्तिम शक्तियाँ नहीं दी गई हैं।
(5) भारतीय लोकसभा को	(5) प्रतिनिधि सदन को कोई भी

कार्यकारी शक्ति भी प्राप्त हैं क्योंकि इसके सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न पूछ सकते हैं तथा उनके विरुद्ध अनिश्चित प्रस्ताव पारित करके वे उन्हें पदच्युत भी करा सकते हैं।

कार्यकारी शक्ति प्राप्त नहीं है। संघ का कार्यपालिका विभाग सर्वथा पृथक रखा गया है तथा वहाँ हर प्रकार से राष्ट्रपति के ही प्रभुत्व में कार्य करता है।

(6) भारत में संसद का उच्च सदन शक्तिहीन होने के कारण वह किसी सीमा तक लोकसभा के मार्ग में बाधक भी सिद्ध नहीं हो सकता।

(6) सं० रा० अमेरिका में सिनेट के शक्तिशाली होने के कारण वह प्रतिनिधि सभा के सम्मान एवं उसकी विधायी स्थिति में भी कुछ न कुछ कमी ही उत्पन्न करता रहता है।

प्रश्न 5—भारत के प्रधानमन्त्री की शक्तियों की तुलना अमेरिका के राष्ट्रपति तथा ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री की शक्तियों से कीजिये।

Compare the powers of the Prime Minister of India with those of the American President and the British Prime Minister.

भारत का प्रधानमन्त्री

(1) भारत का प्रधानमन्त्री सरकार का अध्यक्ष होता है परन्तु राज्याध्यक्ष नहीं है।

(2) भारतीय प्रधानमन्त्री तब तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त होता है।

(3) भारतीय प्रधानमन्त्री लोकसभा का सदस्य होता है।

(4) भारतीय प्रधानमन्त्री विधि-निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लेता है। महत्वपूर्ण सरकारी विधेयक उसी की अनुमति से ही संसद में प्रस्तुत किये जाते हैं।

अमेरिका का राष्ट्रपति

(1) अमेरिका का राष्ट्रपति राज्य एवं सरकार दोनों का अध्यक्ष होता है।

(2) अमेरिका का राष्ट्रपति अपना कार्यकाल पूरा होने तक अपने पद पर बना रहता है। कार्यकाल पूरा होने से पूर्व उसे केवल महाभियोग के द्वारा ही हटाया जा सकता है।

(3) अमेरिकन राष्ट्रपति व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं होता है।

(4) अमेरिका के राष्ट्रपति की विधि-निर्माण में कोई भूमिका नहीं होती है।

भारतीय प्रधानमन्त्री तथा ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की तुलना

(1) भारतीय प्रधानमन्त्री ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भांति संसद में अपने दल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। वह संसद में अपने दल का नेता है। वह लोकसभा का सदस्य होता है।

(2) भारतीय प्रधानमन्त्री को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भांति व्यापक कार्य-

पालिका सम्बन्धी अधिकार होते हैं। शासन के प्रत्येक विभाग पर उसका नियन्त्रण रहता है। वह राज्य रूपी पोत का चालक होता है।

(3) भारतीय प्रधानमन्त्री ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भांति व्यवस्थापिका की समस्त कार्यवाही में महत्वपूर्ण भाग लेता है।

(4) भारतीय प्रधानमन्त्री ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भांति ही देश की गृह नीति का निर्धारण करता है तथा उसके निर्देशानुसार ही उसकी रूपरेखा बनायी जाती है।

(5) ब्रिटेन में संविधान संशोधन साधारण बहुमत से ही हो जाता है। अतः ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की संसद में अत्यन्त ही सुदृढ़ स्थिति होती है। भारत में संविधान संशोधन की प्रक्रिया जटिल होने के कारण संविधान में संशोधन तभी सम्भव है जबकि प्रधान के दल का संसद के दोनों सदनों में 2/3 बहुमत हो।

इस प्रकार भारतीय प्रधानमन्त्री विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली शासकों में से है। वह अमेरिका के राष्ट्रपति तथा ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के समान शक्तिशाली है।

कनाडा का संविधान

(The Constitution of Canada)

"The Constitution of Canada is more English then American." —Dawson

---

प्रश्न 1 – कनाडा के संविधान के स्रोतों तथा तत्वों का उल्लेख करते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ।

Discuss the elements and sources of the Constitution of Canada and also mention the salient features of the present constitution.

उत्तर—

कनाडा का संविधान
(The Constitution of Canada)

1. कनाडा के संविधान के तत्व –

कनाडा के संविधान में पांच प्रकार के तत्व पाये जाते हैं—

(1) कनाडा की संसद द्वारा पारित कानून ।

(2) ब्रिटिश संसद द्वारा समय-समय पर कनाडा के सम्बन्ध में पारित किये गये नियम एवं कानून आदि ।

(3) प्रान्तीय सरकारों के कानून ।

(4) चलन और अभिसमय (Usages anc Conventions) तथा

(5) अन्य प्रलेख ।

इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(i) कनाडा की संसद द्वारा पारित कानून—शासन के विभिन्न विभागों का संगठन तथा प्रतिनिधि सदन के सदस्यों के चुनावों को विनिमय करने वाले कानून ।

(ii) साम्राज्यीय क़ानून—सन् 1867 का ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका कानून, जिसमें कनाडा के वर्तमान संविधान की सामान्य रूप-रेखा दी गई है तथा अन्याय परवर्ती कानून एवं संशोधन, जिसके पूरक के रूप में हैं ।

(iii) प्रान्तीय क़ानून—प्रान्तीय विधान-मण्डलों द्वारा पारित वे सभी कानून जोकि प्रान्तों की शासन-व्यवस्था को विनियमित करते हैं ।

(iv) चलन तथा अभिसमय लेटर्स – संसदात्मक व्यवहार तथा उत्तरदायी शासन के अभिसमय ।

(v) परिषद आदेश—नये प्रान्तों को डोमेनियन (कनाडा संघ) में शामिल करने से सम्बन्धित आदेश तथा डोमीनियन एवं प्रान्तीय विधान-मण्डलों के आदेश।

(vi) लेटर्स पेटेन्ट तथा आदेश—गवर्नर जनरल की नियुक्ति के सम्बन्ध में जारी किये लेटर्स पेटेन्ट तथा उसे दिये गये आदेश आदि।

(2) कनाडा के संविधान की विशेषतायें—कनाडा के संविधान की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंगलैण्ड के संविधानों की अनेकानेक बातों का अनुकरण किया गया है। इसी कारण एक कैनेडियन विद्वान मि० डाउसन ने यह स्पष्ट किया है कि, "यह संविधान वस्तुतः अनेकानेक स्रोतों से विकसित हुआ है। इसमें देश के सम्पूर्ण इतिहास में पहली बार उत्तरदायी शासन के सिद्धान्तों को संघीय संगठन से मिलाने का सफल प्रयास किया गया है।"

संक्षेप में कनाडा के संविधान की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार है—

(1) लिखित संविधान—कनाडा का सम्पूर्ण संविधान लिखित है। यथार्थतः कनाड़ा में ऐसा कोई अकेला आलेख नहीं है जिसमें कि संविधान समस्त कानूनों को शामिल किया गया हो। इस संविधान के अधिकांश तत्व तो लिखित ही हैं किन्तु इसमें ऐसे तत्वों को भी शामिल माना जाता है, जो कि लिखित रूप में प्रस्तुत नहीं किये गये हैं।

कैनेडियन संविधान के आधारभूत तत्वों की रूप-रेखा वस्तुतः ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका कानून में दी गई है। इस कानून के मौलिक रूप में 147 अनुच्छेद थे, जिन्हें इनकी प्रस्तावना को छोड़कर 11 भागों में विभक्त किया गया है।

वस्तुतः कनाडा के इस नवीन संघीय राज्य तथा संघ और प्रान्तों के बीच विधायी शक्तियों के विभाजन को ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका कानून में क्रमशः परिभाषित भी किया गया है। इसमें यह स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि कनाडा में प्रचलित संविधान के निर्माण के समय की सम्पूर्ण व्यवस्था, नियम-परम्परा तथा तथा ब्रिटिश संवैधानिक परम्पराओं को लागू किया जायेगा।

(२) शाही परमाधिकार—कनाडा में यह शाही परमाधिकार के रूप में माना गया है कि वहाँ पर सम्राट को निम्नलिखित विषयों में व्यवस्था करने का विशेषाधिकार होगा, किन्तु वर्तमान समय में तो इसका प्रयोग कनाडा की सरकार द्वारा किया जाता है। इन विषयों में युद्ध की घोषणा:करना, सन्धियाँ आदि करना तथा राजदूतों की नियुक्तियाँ आदि विषय विशेष उल्लेखनीय हैं।

(3) कैनेडियन शासन की संस्थायें—कनाडा में शासन की संस्थायें निम्नलिखित हैं—

(i) राज्य का नामधारी अध्यक्ष—ताज, जिसका कि राज्य में प्रतिनिधि गवर्नर जनरल होता है।

(ii) कार्यपालिका, प्रधानमन्त्री तथा उसका मन्त्रिमण्डल।

(iii) संघीय न्यायपालिका, जिसमें कि सर्वोच्च न्यायालय को कानूनों की संवैधानिकता पर निर्णय दे सकने का अधिकार होता है।

(iv) संघीय संसद, जिसके दो सदन हैं—(अ) सीनेट, और (व) प्रतिनिधि सदन।

(4) **कैनेडियन शासन का रूप और वास्तविकता**—कनाडा की शासन संस्थाओं के रूप और वास्तविकता में भी अन्तर मिलता है। कनाडा में शासन संस्थाओं के तीन स्तरों पर समूह हैं—साम्राज्यीय, औपनिवेशिक तथा प्रान्तीय। साम्राज्यीय स्तर की औपचारिक संस्थाओं से सत्ता का लोप होना वस्तुतः कैनेडियन शासन की एक प्रमुख विशेषता मानी गई है। अब तक की सभी प्राचीन प्रभावी संस्थाओं, यथा—राजा, संसद, प्रीवी कौंसिल, केबिनेट तथा साम्राज्यीय सम्मेलन में से आज किसी एक का भी कनाडा के शासन में कोई वास्तविक प्रभाव नहीं लक्षित होता है। इन समस्त संस्थाओं की शक्ति का अब कनाडा में लोप हो चुका है तथा देश की संवैधानिक पद्धति में उन्हें केवल औपचारिक महत्व ही प्रदान किया गया है। इसी प्रकार औपनिवेशिक (संघीय) तथा प्रान्तीय स्तरों पर भी शासन की औपचारिक तथा वास्तविक संस्थाओं में भेद मिलता है। कनाडा की कार्यपालिका शक्ति आज भी शाही प्रतिनिधि—गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल में निहित है, किन्तु इसका प्रयोग व्यवहारतः केबिनेट अथवा मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किया जाता है। यह केवल एक कहने की ही बात हो सकती है कि कनाडा में रानी (अथवा सम्राट) ही सीनेट तथा प्रतिनिधि सदन के परामर्श एवं सहमति से विधि का निर्माण कार्य करती है किन्तु व्यवहारतः साम्राज्ञी का इस प्रक्रिया में कोई हाथ नहीं रखा है।

(5) **कानून का शासन**—कनाडा में भी ब्रिटिश परम्परा के अनुगत कानून की शासन व्यवस्था स्थापित करने का सिद्धान्त अपनाया गया है। व्यवहार में इसका अभिप्राय तो यह है कि कनाडा में न्यायालयों का एक ही समूह है तथा समस्त देश-वासियों के लिये इकहरी न्याय-व्यवस्था का प्राविधान किया गया है। इस आधार पर देश के मन्त्रिगण तथा अन्यान्य सभी उच्चाधिकारी सर्वमान्य देशवासियों की भाँति एक ही प्रकार की कानूनी व्यवस्था के आधीन माने गये हैं। यह फ्रांस जैसे देशों की प्रशासनिक कानून की पद्धति से स्पष्टतः भिन्न है, क्योंकि वहाँ पर साधारण नाग-रिकों तथा सरकारी कर्मचारियों के निमित्त पृथक-पृथक कानून संग्रह तथा न्यायालीय समूहों की व्यवस्था है।

(6) **संघीय संविधान**—यह हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि कनाडा वास्तव में स्वशासी प्रान्तों का एक संघ है। सम्पूर्ण कनाडा का संघीय शासन तथा उसके संघान्तरित प्रान्तों की सरकारें एक-दूसरे से पृथक रूप में कार्यशील होती हैं। ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका कानून ने कनाडा के ४ प्रान्तों को एक संघ के रूप में संगठित किया है। किन्तु इस संघ में नवीन प्रान्तों को भी प्रविष्ठ कर सकने की निश्चित

व्यवस्था की गई है। इसी कानून ने संघीय तथा प्रान्तीय सरकारों के मध्य शक्तियों का विभाजन किया है। कनाडा का संविधान लिखित होने के साथ-साथ कठोर (rigid) भी है। सन् 1875 में यहाँ एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई, जिसे सीमित रूप से न्यायिक समीक्षा की शक्ति भी प्रदान की गई है। इस रूप में कनाडा का संविधान निश्चित रूप में एक संघीय किन्तु कठोर संविधान की प्रायः समस्त आवश्यक दशाओं की पूर्ति करता है।

(6) संघीय लोकतन्त्र—कनाडा की वर्तमान शासन पद्धति वस्तुतः संघात्मक एवं प्रजातान्त्रिक है। यहाँ के शासन-तन्त्र पर जनता के नियन्त्रण को वैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। देश का सम्पूर्ण शासन व्यवहारतः जनता की इच्छा पर ही आधारित किया गया है और इसके सभी उच्च पदाधिकारी जनमत के प्रति अपना सम्पूर्ण उत्तरदायित्व निभाते हैं। शासन जनमत की सेवा करता है। इसको अपने देशवासियों के लिये उत्तम शासन की दशायें जुटानी पड़ती हैं। कनाडा का प्रजातन्त्र वास्तव में प्रतिनिधि शासन का प्रतीक है। इसका कारण यह है कि शासन पर जनता के प्रतिनिधि ही प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण करते हैं।

(8) उपनिवेश पद—कनाडा आज भी एक ब्रिटिश उपनिवेश है तथा यह इंगलैण्ड की साम्राज्ञी के प्रति निष्ठाभाव रखता है। राष्ट्रमण्डल में इसे एक उपनिवेश के रूप में ही सदस्यता प्राप्त है। इसके विपरीत भारत व पाकिस्तान को राष्ट्रमण्डल में पृथक-पृथक गणतन्त्रों के रूप में शामिल किया गया है। कनाडा में राज्य की अध्यक्ष साम्राज्ञी (इंगलैण्ड की रानी ऐलिजाबेथ द्वितीय) है तथा उसमें गवर्नर जनरल ही रानी का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार राष्ट्रमण्डल में कनाडा का पद अन्य राष्ट्र मण्डलीय देशों के समान ही रखा गया है। कनाडा की सरकार गवर्नर जनरल को परामर्श देती है तथा उसके अनुसार ही कनाडा का गवर्नर जनरल कनाडा के शासन का संचालन करता है। यह देश संयुक्त राष्ट्र संघ का एक पूर्ण सदस्य है। यह विश्व के किसी भी देश के साथ संधि-व्यवहार कर सकने के लिये स्वतन्त्र है। इसकी राष्ट्रीय सरकार अपनी जनता के लिये हर प्रकार से विधि-निर्माण कर सकती है। ●

प्रश्न 2—कनाडा की संसद की शक्तियों और उसके कार्यों का वर्णन करते हुए इसके दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।

कनाडा की कामन्स सभा और सीनेट की रचना किस प्रकार की जाती है? इनके संगठन तथा कैनेडियन संसद की शक्तियों के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Discuss the powers of Canadian Parliament and also mention the relative strength of the two houses.

Or

How is the Canadian Parlimeut organised ? Write a brief note on the organisation of the two houses of the Canadian Parliament and also discuss the powers of the Parliament.

कनाडा की संसद
(Parliament of Canada)

1. कनाडा की संसद का संगठन—कनाडा सँघ की विधायी शक्ति वस्तुतः उसकी संसद में ही निहित की गई है। इस विधायिका के तीन अँग माने गये हैं—ताज अथवा क्राउन (इँगलैंड की साम्राज्ञी अथवा सम्राट), सीनेट तथा कामन्स सभा। ताज के सम्बन्ध में हम आगे उल्लेख करेंगे। यहाँ पर इतना स्पष्ट कर देना पर्याप्त है कि अन्य देशों की भाँति कनाडा में कोई भी अधिनियम अथवा योजना इसकी संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित हो चुकने के वाद भी उस समय तक क़ानून के रूप में लागू नहीं किये जा सकते जब तक कि उन्हें राज्य के अध्यक्ष गवर्नर जनरल जोकि कनाडा में साम्राज्ञी का प्रतिनिधि है, अपनी अन्तिम स्वीकृति न प्रदान कर दे। उसे यह भी अधिकार है कि वह किसी भी विधेयक को जोकि उसकी अन्तिम स्वीकृति के लिये प्रेषित हुआ हो, साम्राज्ञी की स्वीकृति उपलब्ध करने हेतु अपने पास सुरक्षित रख लें, लेकिन ऐसा करने के लिये उसे संसद को नियमानुसार सूचना देना आवश्यक है।

(2) कनाडा की सीनेट—ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका कानून द्वारा निर्मित कनाडा संघ की स्थापना के समय कैनेडियन संसद के उच्च सदन—सीनेट की सदस्य संख्या 62 थी। नये प्रान्तों के संघ में शामिल किये जाने के कारण अब यह संख्या 120 हो गई। कनाडा की सीनेट में विभिन्न प्रान्तों तथा प्रदेशों का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है—

प्रान्त अथवा प्रदेश का नाम		सीनेट मे स्थान
(i) ओण्टोरिया		24
(ii) क्यूवेक		24
(iii) नोवस्कोशिया	10	24
न्यूब्रंसविक	10	
प्रिंस एडवर्ड द्वीप	40	
(iv) मोनीटोवा	6	24
सस्केच्वान	6	
अलवर्टा	6	
ब्रिटिश कोलाम्बिया	6	
(v) न्यूफाउनलैण्ड		24
कुल सदस्य		120

(i) सीनेटरों की नियुक्ति—इन सदस्यों का इनके सम्बन्धित प्रान्तों के विधान-मण्डलों द्वारा चुनाव करने की कनाडा में कोई परम्परा नहीं है। इन्हें परिषद गवर्नर जनरल स्वयं अपनी (विवेक) अधिकार शक्ति के अनुगत नियुक्त करता है। ये मृत्यु पर्यन्त अपने पदों पर आसीन रहते हैं। क्यूबेक के अतिरिक्त अन्य सभी प्रान्तों के सीनेट में प्रतिनिधियों की नियुक्ति गवर्नर जनरल इनके सम्बन्धित प्रान्तों में से ही करता है।

(ii) सीनेटरों की योग्यताएँ—संसद के सीनेटरों के लिये निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(i) उनकी आयु 30 वर्ष होनी चाहिये।

(ii) वे या तो रानी (यू० के० की) देश का जन्मजात नागरिक हो या देशीकृत नागरिक ही हो।

(iii) उनकी व्यक्तिगत या वास्तविक सम्पत्ति या ऋण और सभी प्रकार की देनदारी काटकर 4000 डालर से अधिक न हो।

(iv) वह उस प्रान्त का ही नागरिक हो, जिसके लिये उसकी नियुक्ति की जा रही हो।

(iii) सीनेट का संगठन—कनाडा में सीनेट के अध्यक्ष की नियुक्ति भी परिषद गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है। अध्यक्ष के बाद सीनेट का क्लर्क ही उसका दूसरा प्रमुख अधिकारी माना गया है। इसके अतिरिक्त एक सहायक क्लर्क भी होता है। सीनेट में क्लर्क तथा संसदीय परामर्शदाता (Parliamentry Counsel) ही सीनेट, सीनेट समितियों तथा सीनेटरों को विधि निर्माण कार्य से सम्बन्धित सभी मामलों में यथोचित परामर्श दिया करते हैं। सीनेट में (यू० के० की) सम्राज्ञी के प्रतिनिधि का व्यक्तिगत सेवक 'जेन्टिमेन अशर ऑफ दी ब्लैक रा.' (Gentleman Usher of the Black Rod) कहलाता है।

(iv) संसदीय सदस्यों के विशेषाधिकार—कनाडा में साधारणतया सीनेट और कामन्स सभा तथा उनके सदस्यों के वे ही समस्त विशेषाधिकार माने जाते हैं जो कि ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका कानून (1867 ई०) के निर्माण के समय ब्रिटिश कामन्स सभा तथा उसके सदस्यों को प्राप्त रहे थे।

(2) कनाडा की कामन्स सभा—इसे प्रतिनिधि सदन भी कहा जाता है। सन् 1867 में ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका कानून के लागू होने के समय कामन्स सभा में 181 सदस्य थे। कानून में यह उपबन्ध शामिल किया गया था कि सन् 1871 की जनगणना तथा प्रति 10 वर्ष बाद होने वाली जनगणना के उपरान्त कानून में दिये हुये नियमों के अनुसार चारों प्रमुख प्रान्तों के प्रतिनिधित्व में यथोचित परिवर्तन किये जायें। न्यूफाउन्डलैण्ड के कनाडा संघ में प्रविष्ट होने के समय संघ की कामन्स सभा में उसके 6 सदस्य शामिल किये गये। सन् 1968 में निर्मित एक कानून के अनुसार संसद ने कामन्स सभा में विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधित्व में परिवर्तन कर दिया।

उस समय से कामन्स सभा की सदस्य संख्या 262 निर्धारित हो गई है। इनका विभिन्न प्रान्तों में विभाजन निम्न प्रकार हैं—

(क) ओण्टोरियों	85
(ख) क्यूबेक	74
(ग) नोवास्कोशिया	12
(घ) न्यू ब्रंसविक	10
(ङ) न्यूफाउण्लैण्ड	7
(च) यूकन प्रदेश	1
(छ) ब्रिटिश कोलम्बिया	21
(ज) अलबर्टा	17
(झ) सस्केच्वान्	17
(ञ) मेनीटोवा	14
(ट) प्रिंस एडवर्ड द्वीप	4
(ठ) नार्थ वेस्ट प्रदेश का मेकेन्जी जिला	1

(1) कामन्स सभा का संगठन—कामन्स सभा का अध्यक्ष ही उसका सर्वोच्च पदाधिकारी माना गया है। उसके अतिरिक्त कामन्स सभा में कुछ अन्य पदाधिकारी होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—समितियों का सभापति, जो कि कामन्स सभा का उपाध्यक्ष भी होता है तथा समितियों का उपसभापति। सार्वजनिक चुनावों के फलस्वरूप नव-निर्वाचित कामन्स सभा के अध्यक्ष का चुनाव होता है। उसकी स्थापित परम्परा के अनुसार कामन्स सभा तथा सीनेट के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष संसद की अवधि के लिये चुने जाते हैं। इस अवधि के उपरान्त नई कामन्स सभा के इन पदाधिकारियों के साथ-साथ सीनेट भी अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव करती है।

(2) कैनेडियन संसद की शक्तियाँ एवं कार्य—कैनेडियन संसद की विधायी शक्तियों को सामान्यतया ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका कानून (सन् 1868) के नवें अनुच्छेद में परिभाषित किया गया है। संसद सामान्यतया ऐसे समस्त विषयों पर जो कि अन्य रूप से प्रान्तीय विधान-मण्डलों को नहीं सौंपे गये हैं, शान्ति व्यवस्था तथा कनाडा के अच्छे शासन के लिये विधि निर्माण कर सकती है। ऐसे विषयों को संसद की अन्यान्य विधान शक्तियों में प्रत्यक्ष रूप से शामिल किया गया है। संसद को उन विषयों को छोड़कर जो कि प्रान्तीय विधान मण्डलों के क्षेत्राधिकार में आते हैं, अन्य समस्त विषयों से सम्बन्धित मामलों के विषय में विधि निर्माण करने तथा कनाडा के संविधान में संशोधन करने का अधिकार है। कनाडा की संसद को कृषि तथा आप्रवासन के विषय में भी विधि-निर्माण करने का अधिकार है। इन विषयों का संविधान की धारा 95 में उल्लेख करते हुये संविधान निर्माताओं ने उसमें यह भी स्पष्ट कर दिया है कि ये विषय (कृषि तथा आप्रवासन) संघ तथा प्रान्तों

के समवर्ती क्षेत्राधिकार (Concurrent Jurisdiction) में आते हैं किन्तु उस दशा में जबकि संघीय तथा प्रान्तीय कानून में कोई विरोध अथवा विरोधाभास परिलक्षित होता हो, संघीय कानून को ही क्रियान्वित किया जायेगा। ब्रिटिश संसद ने 16 दिसम्बर, सन् 1949 को कैनेडियन संसद को कनाडा के संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्रदान किया।

संक्षेप में कनाडा की संसद की शक्तियों का विवरण इस प्रकार है—

(i) संविधान में संशोधन।
(ii) अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर विधि-निर्माण।
(iii) बजट तैयार करना।
(iv) सरकारी विभागों पर व्यय के लिये स्वीकृति प्रदान करना।
(v) कर तथा महसूल आदि का निर्धारण।
(vi) मंत्रि-मण्डल पर नियन्त्रण आदि।

प्रश्न 3—कनाडा के शासन में ताज तथा गवर्नर जनरल की स्थिति का वर्णन कीजिये।

Describe the position of crown and Governor General in the Government of Canada.

कनाडा में ताज और गवर्नर जनरल का पद

(1) ताज (Crown)—कनाडा के शासन के मूलाधार ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि, "देश की कार्यपालिका शासन पद्धति कनाडा तथा कनाडा की रानी (इंगलैण्ड की साम्राज्ञी) में निहित है।" ताज रानी का प्रतीक है, कनाडा की एक सम्मानित और औपचारिक कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। ताज को कनाडा के सम्बन्ध में वे ही कार्य करने को उत्तरदायी माना जाता है, जो कि रानी के संयुक्त राज्य (यू० के०) के शासन के सम्बन्ध में है। इन सभी कृत्यों एवं दायित्वों को रानी का व्यक्तिगत प्रतिनिधि—गवर्नर जनरल उत्तरदायी शासन के स्थापित सिद्धान्तों के अनुसार ही सम्पन्न करता है। परन्तु व्यवहारतः कार्यपालिका सम्बन्धी सारे कार्य मंत्रिमण्डल द्वारा किये जाते हैं। राज्य के नाममात्र के अध्यक्ष गवर्नर जनरल के अतिरिक्त रानी राष्ट्र मण्डल की अध्यक्ष होने के नाते, जिसका कि कनाडा एक स्थायी सदस्य है, कनाडा पर अपनी किसी सीमा तक निश्चित प्रभाव डाल सकती है। इस रूप में वह राष्ट्रमण्डलीय सदस्य राज्यों के संघ के चिन्ह के रूप में मान्यता प्राप्त करती है। सन् 1943 तक रानी की उपाधि समस्त राष्ट्रमण्डलीय देशों में समान रही, किन्तु इस समय से इन देशों के संवैधानिक विकास के फलस्वरूप रानी की इस उपाधि के विषय में परिवर्तन हो गया है। दिसम्बर, सन् 1952 ई० में राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्यों के प्रधानमंत्रियों ने रानी की इस उपाधि को अपने पूर्ण बहुमत द्वारा स्वीकृति प्रदान

की। इस उपाधि निश्चिय को 29 मई सन् 1953 ई० के एक शाही घोषणा पत्र द्वारा स्थापित किया गया। कनाडा के सम्बन्ध में रानी की उपाधि का उल्लेख इस प्रकार है—"एलिजावेथ द्वितीय ईश्वर की अनुकम्पा से संयुक्त राज्य, कनाडा तथा अन्य राज्यों की साम्राज्ञी, राष्ट्र मण्डल की अध्यक्षता तथा धर्म संरक्षक है।"

(2) **गवर्नर जनरल**—ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून में गवर्नर जनरल के विषय में यह प्रविधान किया गया है कि वह कनाडा के शासन तन्त्र में राज्य का वैधानिक अध्यक्ष है तथा वही रानी के नाम पर देश का शासन संचालित कराता है। वह अब कनाडा में ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधित्व न करके रानी का केवल वैयक्तिक प्रतिनिधित्व ही करता है। गवर्नर जनरल की नियुक्ति भी रानी द्वारा ही की जाती है, किन्तु यह कार्य वह वस्तुत: कनाडा के प्रधानमन्त्री के परामर्शानुसार ही करती है। स्थापित परम्पराओं के अनुसार गवर्नर जनरल का कार्यकाल 5 वर्ष नियत है तथा इसका देश के शासन में वही स्थान है, जो कि ग्रेट ब्रिटेन के शासन में रानी का होता है। इस सम्बन्ध में सन् 1826 के साम्राज्यीय सम्मेलन ने पूर्ण रूप से निश्चिय कर लिया था। जहाँ तक वह साम्राज्ञी का प्रतिनिधित्व करता है, वह देश में एकता और शासन की निरन्तरता का चिन्ह है। वह कनाडा के शासन में वस्तुत: साम्राज्ञी का ही मूर्त रूप है।

गवर्नर जनरल की शक्तियों एवं कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) **कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य**—गवर्नर जनरल के कार्यपालिका कृत्यों अथवा उसके प्रशासनिक कार्यों को अंशत: साम्राज्यीय कानूनों, अंशत: उपनिवेशों अर्थात् संघान्तरित प्रान्तीय राज्यों के कानूनों तथा अंशत: लेटर्स पेटेण्ट एवं आदेशों द्वारा निहित किया गया है, जिसका अभिप्राय केवल इतना है कि कार्यपालिका का अध्यक्ष (गवर्नर जनरल) रानी के नाम पर तथा रानी की ओर से कनाडा की सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति का उपभोग करेगा। संविधान के मूलाधार ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून की 11वीं धारा के अनुसार गवर्नर जनरल ही प्रीवी कौंसिल के सदस्यों की छाँट करता है तथा वे उसे कनाडा के शासन में आवश्यक सहायता एवं परामर्श प्रदान करते हैं।

ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून की 15वीं धारा के अनुसार कनाडा राज्य की सशस्त्र शक्ति यू० के० की साम्राज्ञी में निहित है। अत:एव गवर्नर जनरल कनाडा की सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति नहीं होता है, जबकि शान्ति काल में यह निर्धारित करने का अधिकार वस्तुत: गवर्नर जनरल का ही होता है कि राष्ट्र की सेनाओं को किस उद्देश्य से किस कार्य पर लगाना है। गवर्नर जनरल देश के जिला और काउन्ट्री न्यायालयों के न्यायाधीशों से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है, जोकि अपने सदाचरण-काल पर्यन्त तक अपने

पदों पर आसीन रह सकते हैं। परन्तु यदि सीनेट तथा कामन्स सभा के सदस्य अपने निश्चित बहुमत द्वारा इन न्यायाधीशों के विरुद्ध अपने अविश्वास प्रस्ताव द्वारा सम्बोधन प्रस्तुत करें तो इन्हें गवर्नर जनरल अपदस्थ भी कर सकता है। साम्राज्ञी का (व्यक्तिगत) कानूनी परामर्शदाता भी गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त होता है। गवर्नर जनरल प्रान्त के विधान द्वारा पारित कानूनों को भी उसके पारित होने की तिथि से 1 वर्ष की अवधि के अन्दर ही अस्वीकृत कर सकने की क्षमता भी रखता है, किन्तु इस शक्ति का प्रयोग वह अपने मंत्रियों से परामर्शानुसार ही करता है।

(2) विधायी शक्तियाँ—गवर्नर जनरल की विधायी शक्तियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(i) कामन्स सभा को आमन्त्रित करना, उसे विघटित करना अथवा भंग करना।

(ii) ताज की ओर से, संसद द्वारा स्वीकृत समस्त विधेयकों पर उन्हें कानून के रूप में क्रियान्वित करने हेतु अन्तिम स्वीकृति प्रदान करना।

(iii) कामन्स सभा से कर लगाने तथा अन्य विनियोग सम्बन्धी प्रस्तावों की सिफारिश करना।

(iv) सीनेट के अध्यक्ष की नियुक्ति एवं उसकी पदच्युति।

(v) सीनेट के सभी सदस्यों की छाँट करना तथा सीनेट में किसी भी कारण से रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति का दायित्व पालन।

(3) गवर्नर जनरल की स्थिति—गवर्नर जनरल अपने आचरण तथा नीति के विषय में डोमेनियम संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। हाँ, इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वस्तुतः मन्त्रियों को ही वहन करना होता है, जिनके परामर्श से गवर्नर जनरल शासन सम्बन्धी किसी कार्य का सम्पादन करता है। गवर्नर जनरल कैनेडियन संसद के प्रति उत्तरदायी न रहकर ताज तथा साम्राज्यीय संसद के प्रति उत्तरदायी रहता है।

प्रश्न 4—निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये—

(1) प्रीवी कौंसिल, (2) कैनेडियन कैबिनेट, (3) कनाडा में प्रधानमंत्री पद।

(1) प्रीवी परिषद—ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून की धारा 11 में यह निश्चित उपबन्ध मिलता है कि कनाडा की सरकार को सहायता एवं परामर्श देने हेतु एक परिषद की स्थापना की जायेगी, जो कि कनाडा के लिये रानी की प्रीवी कौंसिल के नाम से सम्बोधित की जायेगी। इसके सदस्यों को गवर्नर जनरल स्वयं छांटता है तथा वही उन्हें शपथ ग्रहण कराता है। यह परिषद लगभग 60 सदस्यों से मिलकर बनी है जिन्हें छांटने में प्रधानमन्त्री के परामर्श का यथेष्ट ध्यान रखा जाता है। ये सदस्य उसके आजीवन सदस्य होते हैं किन्तु इनके लिये वैधानिक

रूप में कोई योग्यता नहीं निर्धारित की गई है। इतना अवश्य निश्चित है कि इनके सदस्यों को विशेष प्रकार की शपथ ग्रहण करनी पड़ती है, उनके नाम के आगे 'सम्मानित' (Honourable) शब्द जोड़ा जाता है। इन्हें कोई वेतन दिये जाने का विधान नहीं है, किन्तु व्यवहारतः प्रीवी परिषद के सभी सदस्यों की नियुक्ति इस उद्देश्य से की जाती है कि वे प्रीवी कौंसिल में रहकर भविष्य में विषय मन्त्रिमण्डल महत्वपूर्ण दायित्वों को सम्पन्न करने के विषय में प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डल से पृथक हुए राजनीतिज्ञ वस्तुतः प्रीवी कौंसिल के सदस्य बने रहते हैं। प्रीवी कौंसिल में पुराने तथा वर्तमान सभी मन्त्रिमण्डल सदस्यता प्राप्त करते हैं किन्तु यह किसी प्रशासानिक निकाय के रूप में कोई भी कार्य नहीं करती है। कैनेडियन शासन के सम्बन्ध में प्रीवी कौंसिल के दायित्वों का संचालन व्यवहारत, कैबिनेट मन्त्रियों द्वारा ही होता है। प्रीवी कौंसिल के प्रायः सभी कार्य इसकी एक समिति द्वारा सम्पादित किये जाते हैं, जिसमें कि कैबिनेट के सभी मन्त्रीगणों को भी सम्मिलित किया जाता है। यह वस्तुतः देश की एक औपचारिक कार्यपालिका के रूप में कार्य करती है। इसका अध्ययन गवर्नर जनरल अथवा उसके द्वारा अधिकृत पदाधिकारी ही करता है तथा इसे सपरिषद गवर्नर जनरल (Governor General in Council) के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

(2) कनाडा की कैबिनेट या मन्त्रि परिषद—यह निकाय कनाडा की केन्द्रीय कार्यपालिका के रूप में संघीय संसद के प्रति उत्तरदायी रहता है। परन्तु वस्तुतः यह प्रीवी कौंसिल की ही एक समिति की स्थिति में कार्य करती है। ब्रिटिश नार्थ अमरीका कानून में इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। इसका अस्तित्व न तो वैधानिक ही है और न ही इसे अवैधानिक कहा जा सकता है। अभिसमय (Convention) के आधार पर मन्त्रिमण्डल के सदस्य कामन्स सभा अथवा सीनेट के सदस्य ही होते हैं। जब यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि कैबिनेट संसद में बहुमत दल के विश्वास से वंचित हो चुकी है तो उसे त्यागपत्र दे देना आवश्यक हो जाता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य, प्रधानमन्त्री स्वयं अपने विवेक से छांटता है तथा इनमें से प्रत्येक की देख-रेख में केन्द्र सरकार के एक अथवा अधिक विभाग सौंप देता है जिसके कि वे अस्थायी कार्यकारी अध्यक्ष होते हैं। कनाडा में प्रीवी कौंसिल तथा कैबिनेट मन्त्रिमण्डल को प्रायः एक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।

कैबिनेट का गठन—कैबिनेट के सदस्यों की संख्या का निश्चय प्रधानमन्त्री ही करता है तथा उनका चयन भी उसी के द्वारा किया जाता है और इस विषय में उसे अनेक महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना होता है।

(3) कैबिनेट की शक्तियाँ तथा कार्य—कैबिनेट मंत्रिमण्डल ही कनाडा के शासन तन्त्र की मुख्य कमानी है। यह शासन का एक प्रमुखतय अंग माना जाता है। यू० के० की सामग्री तथा उसका प्रतिनिधि गवर्नर जनरल नाम मात्रेण कार्यपालिका के रूप में अपना केवल औपचारिक महत्व ही रखते हैं, जबकि कनाडा की

वास्तविक एवं क्रियाशील कार्यकारिणी अथवा सरकार प्रत्यक्षतः प्रधानमन्त्री तथा उसकी कैबिनेट ही होती है। कैनेडियन कैबिनेट के परामर्श यू० के० की साम्राज्ञी स्वयं कनाडा का प्रधानमन्त्री नियुक्त करने के अवसर पर ग्रहण करती है। गवर्नर जनरल को समस्त राजनैनिक मामलों में कैबिनेट के परामर्शों पर चलना पड़ता है। कैबिनेट के कृत्य कार्यपालिका तथा विधायी दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कहे गये हैं। कनाडा में शासन सम्बन्धी सभी कार्य देश की कार्यपालिका अर्थात् कैबिनेट द्वारा किये जाते हैं। इसका प्रमुख कार्य संसद द्वारा स्वीकार की हुई शासन-नीति तथा कार्यक्रम को कार्य रूप में परिणित करना है। राज्य के सभी प्रमुख पदाधिकारी, न्यायाधीश, राजदूत तथा प्रान्तों के लेफ्टीनेंट गवर्नर इत्यादि की नियुक्ति कैबिनट के परामर्श से ही गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है। कनाडा के सम्पूर्ण प्रशासन के लिये प्रत्यक्षतः कैबिनेट ही सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। इसके अतिरिक्त वह प्रसाशन के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करती है। क्योंकि प्रत्येक विभाग के कार्यों की देख-रेख उस विभाग के मन्त्री द्वारा की जाती है, जिसके सम्बन्ध में उसका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व रहता है।

कनाडा में कैबिनेट ही सभी महत्वपूर्ण कार्य करती है, उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करती है, सार्वजनिक पदाधिकारियों की वह आवश्यकता पड़ने पर पदच्युति भी कर सकती है। अभियुक्तों को क्षमादान करती है, सन्धियों को पक्का करती है तथा अन्य सभी प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णय भी यही करती है। विधि-निर्माण के क्षेत्र में राष्ट्रीय नीति के निर्धारण के विषय में पहल करने एवं उसे अन्तिम रूप प्रदान करने और फिर उसे क्रियान्वित कराने का दायित्व वस्तुतः कैबिनेट का ही होता है। राष्ट्र की गृह तथा विदेश नीतियों के निश्चय हेतु कैबिनेट ही विभिन्न विधेयकों को स्वीकृति प्रदान करती है तथा उन्हें पारित कराने में भी वही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। अन्ततः समस्त महत्वपूर्ण विधेयक कैबिनेट के समर्थन पर ही गवर्नर जनरल की अन्तिम स्वीकृति प्राप्त करते हैं।

कनाडा सरकार के बजट भी, जोकि उसके विधायी तथा अन्य प्रकार के कार्यक्रमों के मुख्य साधन होते हैं, कैबिनेट ही स्वीकार करती है। कैबिनेट की स्वीकृति प्राप्त करने के उपरान्त ही बजट के प्रारूप संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अधिकतर विधि-निर्माण तथा बजट-निर्माण इत्यादि कार्यों का सम्पादन देश की कैबिनेट ही करती है।

कनाडा में सैद्धान्तिक रूप से तो कैबिनेट पार्लियामेंट के प्रति ही उत्तरदायी मानी गई है परन्तु व्यवहारतः जब तक उसे संसद में बहुमत दल का समर्थन प्राप्त रहे, यह वस्तुतः उसके एक सबसे अधिक क्रियाशील सदन (कामन-सभा) पर प्रत्यक्ष नियंत्रण भी रखती है। यह देश की नीति का निर्धारण करती है तथा संसद की सहमति से विधि निर्माण भी करती है।

कनाडा में प्रधानमन्त्री का पद--प्रधानमन्त्री ही देश की केन्द्रीय कैंबिनेट कैंबिनेट का अध्यक्ष रहता है। महत्व तथा शक्तियों को दृष्टि में रखते हुए यदि हम उसके पद की वस्तुस्थिति पर गम्भीरता से विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपने सहयोगियों की अपेक्षा अत्याधिक बढ़ा-चढ़ा है। औपचारिक रूप में ही उसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है, किन्तु व्यवहारतः वह कामन सभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही बुलाकर प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त करता है तथा उसी को मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने की अनुमति प्रदान करता है। प्रधानमन्त्री स्वेच्छानुसार मन्त्रिमण्डल के सदस्यों में फेर बदल करने का भी अधिकार रखता है। इसके अतिरिक्त मन्त्रियों में विभागों का वितरण करने के विषय में भी प्रधानमन्त्री को उत्तरदायी माना जाता है।

कैबिनेट की सभी बैठकों में सभापति का पद स्वयं प्रधानमन्त्री ही सुशोभित करता है। अस्तु उसकी इच्छाओं और आकांक्षाओं का समस्त उच्चाधिकारी, मन्त्री-मण्डल इत्यादि पूर्ण रूप से ध्यान रखते हैं। वह सर्व-सामान्य में लोकप्रिय नेता माना जाता है तथा साधारणतया उसे अपने दल का प्रत्यक्ष समर्थन भी प्राप्त रहता है।

प्रधानमन्त्री स्वयं तो किसी एक अथवा दो विभागों का ही अध्यक्ष रहता है किन्तु वह वस्तुतः सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का भी अध्यक्ष होता है और इस नाते वह समस्त कार्यकारी विभागों की न केवल देख-रेख अथवा पथ-प्रदर्शन ही करता है वरन् वह इनके कार्यों में भी समन्वय भी स्थापित करने का उत्तरदायित्व रहता है। यही नहीं, प्रधानमन्त्री संसद में बहुमत दल का नेता भी होता है। इस प्रकार एक ओर तो सरकार का प्रधानमन्त्री या प्रमुख वक्ता होने के नाते उसका समस्त कार्यकारी एवं प्रशासनिक विभागों और विधान सभाओं पर विशेष प्रभाव रहता है तथा साथ-साथ ही दूसरी ओर बहुमत दल का नेता होने के नाते वह जनता का सबसे अधिक लोकप्रिय व्यति माना जाता है। अस्तु यह स्पष्ट है कि प्रधानमन्त्री का पद और उसकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं शक्ति-सम्पन्न होती है।

प्रश्न 19—कनाडा की न्यायपालिका की विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

Write a brief on the Judicial System of Canada.

कनाडा न्यायपालिका की विशेषतायें (Features of the Canadian Judiciary)—कनाडा की संघीय न्यायपालिका भारतीय न्यायपालिका से पर्याप्त साम्य रखती है। किन्तु कुछ बातों में उनके बीच प्रत्यक्ष रूप में महत्वपूर्ण अन्तर भी पाया जाता है।

(1) संघीय न्यायालय—(i) संघ का सर्वोच्च न्यायालय – कनाडा से संघ में सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था संघीय संसद ने 1875 ई० में प्रत्यक्ष विधि निर्माण द्वारा की है। इस न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 8 अन्य न्यायाधीश

(Pusine Judges) होते हैं। ये सभी न्यायाधीश सपरिषद गवर्नर ही नियुक्त करता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर कोई ऐसा व्यक्ति ही नियुक्ति प्राप्त कर सकता है, जो कि देश के किसी भी उच्च प्रान्तीय न्यायालय का न्यायाधीश रहा हो अथवा जो किसी भी प्रान्त की बार (Bar Association) का 10 वर्ष पुराना सदस्य हो। इस न्यायालय में क्यूबेक प्रान्त से कम से कम 3 न्यायाधीश लिये जाने आवश्यक हैं। ये न्यायाधीश 75 वर्ष की आयु और विशेष रूप से अपने सदाचार काल (During good behaviour) तक ही अपने पदों पर आसीन रह सकते हैं।

किसी भी प्रान्त के उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार कनाडा के इसी संघीय सर्वोच्च न्यायालय को ही प्रदान किया गया है किन्तु ऐसी अपील संघ के सर्वोच्च न्यायालय में केवल तभी प्रस्थापित की जा सकती है जबकि उसका मामला 2,000 डालर अथवा उससे भी अधिक धन-राशि से सम्बन्धित हो। अन्य किसी भी प्रकार के मुकदमों में प्रान्त उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील केवल उस (प्रारम्भिक) न्यायालय की अनुमति से ही सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्थापित की जा सकती है। परन्तु यदि प्रान्तीय उच्चतम न्यायालय किसी मामले में अपने निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति ही न प्रदान करे तो ऐसी दशा में सर्वोच्च न्यायालय को यह विशिष्ट अधिकार दिया गया है कि वह स्वयं उपर्युक्त प्रान्तीय उच्चतम न्याया-लय के विरुद्ध अपील करने की स्वीकृति प्रदान कर सकेगा। कनाडा में समस्त दण्डनीय अभियोगों के सम्बन्ध में अपीलें कनाडा के दण्ड विधान संग्रह (Canadian Criminal Procedure Code) द्वारा विनियमित की जाती है। संघीय न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की व्यवस्था को संघीय कानूनों (Fedesal Laws) द्वारा विनियमित किया गया है। समस्त मामलों में संघीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को ही अन्तिम माना जाता है तथा उसके विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करने वाला देश में कोई भी अन्य निकाय नहीं है।

(2) एक्सचेकर न्यायालय (Exchequer Court)—1878 ई० में उप-युक्त संघीय सर्वोच्च न्यायालय (Federal Supreme Court) के साथ-साथ उसके अंग रूप में एक अन्य संघीय न्यायालय की स्थापना भी की गई। जिसका कि नाम है—एक्सचेकर न्यायालय (Exchequer Court)। परन्तु सन् 1952 ई० में संघीय संसद द्वारा स्वीकृति एक अधिनियम के अनुसार इसे एक पृथक न्यायालय घोषित कर दिया गया है। इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधिपति तथा 4 अन्य न्याया-धीश होते हैं, जिनकी नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की भाँति सपरिषद गवर्नर जनरल द्वारा ही की जाती है। ये न्यायाधीश अपने सदाचार काल पर्यन्त ही अपने पदों पर आसीन रह सकते हैं अथवा उस समय तक रह सकते हैं, जबकि उनकी पद मुक्ति (Retirement) की नियत आयु पूर्ण न हो जाये। परन्तु इस कार्यकाल के

बीच भी यदि सीनेट तथा कामन सभा की इस न्यायलय के विरुद्ध अक्षम्यता अथवा सदाचार के विषय में कोई सम्बोधन प्रस्तुत करे तो गवर्नर जनरल इन्हें पद से पृथक कर सकता है। यह न्यायालय भी ओटावा में स्थित है, किन्तु संविधान में दिये हुये उपबन्ध के आधीन यह कनाडा में कहीं भी बैठ सकता है। इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) उन सभी मामलों तक विस्तृत रखा गया है, जिनका कि सम्बन्ध कनाडा की संघ सरकार तथा उसके विरुद्ध किये जाने वाले दावों से है। इस न्यायालय में ताज के विरुद्ध भी न्यायिक कार्यवाही याचिका (Petition of Right) द्वारा की जा सकती है। इस न्यायालय को सामूहिक मुकदमों के विषय में अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

प्रीवी कौंसिल की न्यायिक परिषद—सन् 1949 ई० तक, जैसा कि हमने प्रारम्भ में ही उल्लेख कर दिया गया है, कनाडा के नागरिकों को कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत लन्दन में स्थित प्रीवी कौंसिल की न्यायिक समिति के समक्ष अपनी अपीलें ले जा सकने का अधिकार प्राप्त था। इस समिति में इंगलैण्ड तथा राष्ट्र मण्डल के विभिन्न सदस्य राष्ट्रों से छांटे गये कानूनी अर्थात् न्यायिक विशेषज्ञों (Low Specialists) को सम्मिलित किया जाता है। परन्तु यह कार्य अधिकतर ब्रिटिश लार्ड सभा के लार्ड चांसलर (Lord Chancellor) तथा कानूनी लार्ड द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। ये इस समिति के पदेन सदस्य (Exofficio members) ही होते हैं। यह समिति वस्तुतः डोमिनियनों तथा ब्रिटिश उपनिवेशों के उच्चतम न्यायालय द्वारा किये जाने वाले न्यायिक निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करने का कार्य करती है। सन् 1936 ई० में भारतीय संघीय न्यायालय (Indian Federal Court) की स्थापना के पूर्व उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सीधे इसी समिति के समक्ष प्रस्तुत की जाती थीं। 1949 ई० के पूर्व यह ब्रिटिशनार्थ अमरीका कानून की धाराओं का अन्तिम निर्वाचन करती थी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध इस समिति या ऊपर कहीं भी अपीलें ले जा सकने के लिए सामान्यतः वैसे भी कोई उपबन्ध न था, किन्तु स्वयं न्यायागिक समिति कनाडा के ऐसे मामलों की अपीलें करने का अधिकार प्रदान कर सकती थी, जिनमें कि किसी भी संवैधानिक महत्व का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो।

कनाडा के प्रान्तीय तथा अन्य न्यायालय—ब्रिटिशनार्थ अमरीका कानून में कुछ ऐसे प्राविधान भी सम्मिलित किये गये हैं, जो कि प्रान्तीय न्यायपालिकाओं से सम्बन्ध रखने वाले हैं। संविधान की धारा 92 में ऐसा उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक प्रान्त का विधान मण्डल न्यायिक प्रशासन अथवा प्रान्तीय न्यायालयों के संगठन इत्यादि के विषय में विधि निर्माण कर सकता है। संविधान की धारा 96 में यह उपबन्ध है कि उच्च काउन्टी तथा जिला न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति सपरिषद गवर्नर जनरल द्वारा की जायेगी। धाराओं 97, 98, 99 तथा

100 में स्पष्ट किया गया है कि इन न्यायालयों की छांट, उनके वेतन तथा इनके कार्यकाल के निश्चय इत्यादि के विषय में संघीय संसद को भी क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा। इन प्रान्तीय उच्च न्यायालयों का संगठन प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न है। इसके न्यायाधीश पृथक एक भ्रमणशील न्यायालयों के रूप में भी मुकदमों की उनके स्थान पर ही सुनवाई कर सकते हैं तथा साथ-साथ बेंच के रूप में बैठक कर भी। ओण्टोरियो का प्रान्त सबसे विशाल है तथा इसका अपना उच्चतम न्यायालय दो भागों में विभक्त है जिसमें एक तो कोई कोर्ट ऑफ अपील का कार्य करता है, जबकि दूसरा प्रान्तीय उच्चतम न्यायालय के रूप में अपने प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार से सम्बन्धित मुकदमों की सुनवाई करता है। इसके साथ-साथ यह भी उल्लेखनीय है कि ओण्टोरियों के उच्चतम न्यायालय का एक विभाग प्रान्त के केवल उच्च न्यायालयों से ही आई हुई अपीलों की सुनवाई करता है जबकि इसका दूसरा विभाग प्रान्त के अन्य निम्न स्तरीय न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध की जाने वाली अपीलों का निर्णय भी करता है। तथापि कनाडा के उच्च न्यायालय को केवल कुछ ही मामलों में अपीलें सुनने का अधिकार प्राप्त है और उसका क्षेत्राधिकार वहुधा प्राथमिक (original) ही होता है। उच्च न्यायालयों के नीचे काउन्टी अथवा जिला न्यायालयों की व्यवस्था है। यह न्यायालय छोटे-छोटे मामलों के मुकदमों का अपने प्राथमिक क्षेत्राधिकार के आधीन निर्णय करते हैं। इसके अतिरिक्त ये काम गम्भीर प्रकृति के फौजदारी मुकदमों का भी निर्णय करते हैं। इन न्यायालयों के अतिरिक्त प्रान्तों के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य विभिन्न प्रकार के छोटे-छोटे न्यायालयों की स्थापना की गई है। ऐसे न्यायालयों की वड़े-वड़े प्रान्तों में तो काफी वड़ी संख्या पायी जाती है। इन न्यायालयों में तलाक न्यायालय, मृत लेख न्यायालय, दण्डाधीशों के न्यायालय (Magisterial Courts) बाल अपराधियों के सम्बन्ध में स्थापित न्यायालयों (Juveuile Courts), तथा पंच निर्णय की विधि से निर्णय देने वाले न्यायालयों (Arbitary Courts) संसद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रश्न 5—कनाडा की दलीय पद्धति की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

अथवा

कनाडा के विभिन्न राजनीतिक दलों के संगठन तथा उनके कार्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Describe the chief characteristic of the Canadian Party system.

Or

Write a short note on the various political parties orgenisation and activites in Canada,

कनाडा के प्रमुख राजनैतिक दल

(1) प्रगतिशील अनुदार दल (Progressive Conservative Party)—

यह दल देश का एक सबसे अधिक पुराना राजनैतिक दल है। यह सदैव से ही संरक्षण की नीति पर बल देता रहा है एवं इसने कनाडा की राजनीति में अधिकतर सक्रिय एवं प्रमुखतम भाग भी लिया है। इस दल के नेताओं तथा सदस्यों ने कनाडा से यू० के० के साम्राज्यीय सम्बन्ध बनाये रखने तथा विशुद्ध एवं प्रबल संघवाद अथवा राष्ट्रवादी नीति का समर्थन किया है। यह वस्तुत इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि इस दल ने कनाडा संघ का निर्माण होने के पश्चात् निरन्तर 30 वर्षों तक कनाडा में शासन करने का सुअवसर प्राप्त किया। कुछ थोड़े से समय को छोड़कर अर्थात् स्वल्प कालान्तर में इस दल के हाथों में पुनः सत्ता आ गई जबकि यह दल पुनः दीर्घकाल पर्यन्त सत्तारूढ़ रहा, परन्तु इसके बाद 1934 ई० से लेकर 1957 ई० तक इस दल को विरोधी दल के रूप में रहना पड़ा। अन्ततः 1957 ई० में ही इस दल को अपने प्रतिद्वन्दी उदार दल पर ऐतिहासिक विजय उपलब्ध हो गयी। संयोगवश 1963 ई० के सार्वजनिक चुनावों के फलस्वरूप यह दल पराजित घोषित किया गया।

(2) उदार दल (Liberal Party)—कनाडा-संघ के निर्माण के पश्चात् यह दल पर्याप्त समय तक देश का एक विरोधी दल ही रहा। इस दल का विकास केवल शनैः शनैः ही हुआ है। सन् 1946 ई० में इसी दल के नेताओं को कनाडा के फ्रांसीसियों को अपने पक्ष में मिलाने से उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई। इसके उपरान्त इस उदारवादी दल ने फ्रांसीसियों के साथ क्यूबेक तथा प्रेरी के प्रान्तों में अपने गठबन्धन को और भी सुदृढ़ बनाने का सफल प्रयास किया। सन् 1935 ई० से 1957 ई० तक कनाडा में इसी उदार दल की सत्ता स्थापित रही। अप्रैल, 1963 ई० में इस दल को पुनः सार्वजनिक चुनावों के फलस्वरूप सत्ता की प्राप्ति हुई और फिर इसके नेता लेस्टर बी-पियर्सन को ही गवर्नर जनरल ने प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त किया। इन उदारवादियों ने बहुधा इस बात पर बल दिया कि देश के आयात एवं निर्यात पर करों की दर कम रखी जाये। इसके विपरीत कनाडा के अनुदारवादी इंगलैंड से कनाडा के साम्राज्यीय, सम्बन्धों को अक्षुण्ण रखने में गर्व का ही अनुभव करते हैं। इन उदारवादी नेताओं ने अपने प्रतिद्वन्दियों की अपेक्षा कहीं अधिक राष्ट्रीय नीतियों का समर्थन किया। ये कनाडा में स्वशासन पर प्रतिबन्धों का भी विरोध करते रहे हैं। इन्होंने अनुदार दल की राष्ट्रीय नीति की तीव्र आलोचना की है। इस दल के नेता प्रान्तीय स्वायत्तता के क्षेत्रों को विस्तृत करने के महान पक्षपाती हैं।

(3) कोआपरेटिव कामनवेल्थ फेड्रेशन (Co-operative Common wealth Federation)—कनाडा में कोआपरेटिव कामन वेल्थ फेड्रेशन की स्थापना सन् 1932 ई० में हुई। इस समय कुछ पाश्चात्य कृषक आन्दोलन तीव्र रूप में उमड़ रहे थे और उन्होंने पश्चिम के शहरी संगठनों से अपना मेल करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की। सन् 1940 ई० के सार्वजनिक चुनावों में इस दल के ही सदस्यों ने डोमिनियम की संसद में 8 स्थानों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात् होने

वाले उप-चुनावों (Bye Elections) के फलस्वरूप संघीय संसद में इस दल के सदस्यों की संख्या कुल मिलाकर 11 तक पहुँच गई। इसके 2–3 वर्षों बाद तथा सन् 1943 ई० के अन्त तक यह दल ओण्टोरियों में दूसरे नम्बर का सबसे बड़ा दल बन गया। किन्तु अन्य 4 बड़े-बड़े प्रान्तों में यह फिर भी देश का एक विरोधी दल बन रहा। सन् 1953 तथा 1957 ई० के सार्वजनिक निर्वाचनों में कनाडा की संघीय संसद में इस दल (C. C. F.) को क्रमशः 23 तथा 25 स्थान उपलब्ध हुये। किन्तु फिर सन् 1958 ई० में इस दल की संघीय संसद में सदस्य संख्या विशेष रूप में गिर गई।

अगस्त, सन् 1961 ई० में 'कैनेडियन कामन वेल्थ फैड्रेशन' तथा 'कैनेडियन लेवर कांग्रेस' ने परस्पर मेल करके एक नवीन दल का निर्माण किया। जिसका नाम नवीन प्रजातान्त्रिक दल (New Democratic Party) के रूप में लोक प्रसिद्ध हुआ।

(4) सोशल क्रेडिट पार्टी (Social Craedit Party)—यह कनाडा का एक छोटा ही सा दल है किन्तु इसे देश की राजनीति में कुछ अवसरों पर वशेष लोकप्रियता भी मिलती रही है। सन् 1940 तथा 1949 ई० में इस दल के डोमीनियन पार्लियामेंट में क्रमशः 8 तथा 10 प्रतिनिधि विद्यमान थे। सन् 1953 ई० में इनकी संख्या बढ़कर 15 हो गई तथा सन् 1957 ई० तक उसमें इसके 4 सदस्य और भी बढ़े। परन्तु सन् 1958 ई० के सार्वजनिक निर्वाचनों में इस दल को दुर्भाग्यवश कैनेडियन संघीय संसद में एक भी सीट न प्राप्त हो सकी। तथापि ब्रिटिश कोलाम्बिया और अल्बर्टा में इस दल का आज भी एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी दल माना गया है।

(5) साम्यवादी दल (Communist Party)—कनाडा के साम्यवादियों ने सन् 1922 ई० में अपने एक संगठन का निर्माण किया और उस समय उसका नाम 'लेवर प्रोग्रेसिव पार्टी' प्रख्यात हुआ। इस दल ने अभी अक्टूबर, सन् 1959 ई० में अर्थात् 18–19 वर्ष पूर्व अपना नाम 'कनाडा की कम्युनिस्ट पार्टी' रख लिया है।

प्रश्न 7—कनाडा के संविधान की तुलना भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधानों से कीजिये।

Compare the constitution of Canada with the constitutions of India and U. S. A.

कनाडा और भारत के संविधान
(The Constitutions af Canada and India)

कनाडा और भारत के संविधानों की तुलना अग्र प्रकार से की जा सकती है—

कनाडा का संविधान	भारत का संविधान
(1) कनाडा के संविधान का आधार ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून तथा उसके परवर्ती कानून, कुछ पूर्व स्थापित परम्परायें तथा अभिसमय हैं।	(1) भारत का संविधान वस्तुतः एक निर्मित एवं संविधान समिति द्वारा बनाया गया है, तथापि इसमें कुछ ब्रिटिश परम्पराओं को भी स्थान दिया गया है।
(2) कनाडा का संविधान संघीय, लिखित एवं कठोर है। संविधान में कुछ लिखित राजपत्रों तथा परिषद के आदेशों को भी शामिल किया जाता है।	(2) भारत का संविधान भी संघीय, लिखित एवं कठोर है तथा इसमें जनता के मूल अधिकारों तथा राज्य के नीति निर्देशित तत्वों का उल्लेख पृथक-पृथक अध्यायों में किया गया है।
(3) कनाडा के संविधान में संशोधन की प्रक्रिया पर्याप्त दुःसाध्य है।	(3) भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया इतनी दुःसाध्य नहीं है।
(4) कनाडा में संघ राज्यिक इकाइयों के अपने पृथक-पृथक संविधान हैं।	(4) भारत के संघ तथा संघराज्यिक इकाइयों के लिये एक ही संविधान है।
(5) कनाडा की संघीय सरकार राज्यों द्वारा पारित विधेयकों पर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर सकती है। यह गवर्नरों को सभी प्रकार के विधेयकों पर स्वीकृति प्रदान करने से रोक भी सकती है।	(5) भारत संघ के राज्यों द्वारा पारित विधेयकों को गवर्नर राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये यदि उचित समझे तो अपने पास सुरक्षित रख लेता है। ऐसे विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति पर ही कानून का रूप धारण कर सकते हैं।
(6) कनाडा में प्रशासकों की नियुक्ति डोमिनियन सरकार करती है।	(6) भारत संघ में इकाई राज्यों के प्रशासकों की नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है।
(7) कनाडा में ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून के अधीन राज्यों की शक्तियों	(7) भारत में भी अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र सरकार को समर्पित की गई

का पृथक रूप से वर्णन किया गया है तथा सभी अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र (डोमिनियम) में ही निहित की गई हैं। कनाडा में प्रदत्त शक्तियों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया है।	है परन्तु भारतीय संविधान में शामिल समवर्ती सूची में दिये हुए विषयों पर भी केन्द्र सरकार को विधि निर्माण करने में प्राथमिकता दी गई है।
(8) कनाडा में संघराज्यिक इकाइयों को केन्द्रीय (डोमिनियम) सरकार के अधीन ही रखा है।	(8) भारत में सर्वप्रथम राज्यों को एक केन्द्र के अन्तर्गत शामिल कर देने के पश्चात् संघराज्यिक इकाइयों का पुनर्गठन किया गया है। भारत संघ की इकाइयों को भी पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त नहीं है।

कनाडा और अमेरिका का संविधान
(The Constitution of Canada and U. S. A.)

कनाडा और अमेरिका के संविधानों की तुलना इस प्रकार की जा सकती है—

कनाडा का संविधान	स० रा० अमेरिका का संविधान
(1) कनाडा की संघीय व्यवस्था में प्रदत्त शक्तियों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया है तथा डोमिनियन (केन्द्र सरकार) की सर्वोच्चता को ही मान्यता दी गई है।	(1) संयुक्त राज्य अमेरिका में संविधान के 10 वें संशोधन के अनुसार जो शक्तियाँ न तो सघ को दी गई हैं और जिन्हें न ही राज्यों को प्रदान किये जाने से रोका गया है। ऐसी शक्तियों को राज्यों के पास ही सुरक्षित रखा गया है। जनता के पास नहीं।
(2) कनाडा में राज्यों द्वारा पारित विधेयकों पर संघीय सरकार अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर सकती	(2) संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय सरकार को राज्य विधान मण्डलों द्वारा पारित विधेयकों पर विशेषा-

है। वह उन विधेयकों पर गवर्नरों को भी अपनी स्वीकृति देने से रोक सकती है।

धिकार शक्ति का प्रयोग करने का कोई भी अधिकार नहीं है।

(3) कैनेडियन सीनेट में संघ सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यों को ही शामिल किया गया है।

(3) संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान निर्माताओं का उद्देश्य सीनेट को राज्यों का प्रतिनिधित्व कर सकने वाली संस्था बनाना था, परन्तु व्यवहार में यह सर्वसाधारण वर्गों का ही प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था बनी हुई है।

(4) कनाडा में ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून के आधीन राज्यों की शक्तियों का पृथक रूप से वर्णन किया गया है तथा सभी अवशिष्ट शक्तियाँ भी केन्द्र के आधीन रखी गई हैं।

(4) संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में केवल संघ सरकार की ही शक्तियों का वर्णन मिलता है तथा अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों के अधीन छोड़ दी गई हैं

(5) कनाडा में संघाराज्यिक इकाइयों के प्रशासक सीधे डोमिनियन सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

(5) संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्यों के प्रशासकों की नियुक्ति उन राज्यों की जनता स्वयं करती है।

(6) कनाडा में संघराज्यिक इकाइयों को डोमिनियन सरकार के आधीन रखा गया है।

(6) संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में संघ तथा संघराज्यिक इकाइयों को समकक्ष सत्ताधारी माना गया है।

(7) कनाडा में संघीय सरकार राज्यों के न्यायपालिका अधिकारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार रखती है।

(7) संयुक्त राज्य अमेरिका में संघ सरकारों को राज्यों के न्यायपालिक अधिकारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अधिक स्वतन्त्रता नहीं दी गई है

प्रश्न 8—कनाडा की सीनेट तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट की तुलना कीजिये तथा उन दोनों के मध्य सैद्धान्तिक अन्तर को भी स्पष्ट कीजिये।

(Compare and Contrast the Canadian Senate with the Senate of U. S. A.)

उत्तर—

कनाडा और अमेरिका की सीनेट
(The Senate of Canada and U. S. A.)

कनाडा और अमेरिका की सीनेट की तुलना इस प्रकार की जा सकती है—

कनाडा की सीनेट	स० रा० अमेरिका की सीनेट
(1) कैनेडियन सीनेट विश्व के सभी उच्च सदनों में एक दुर्बल निकाय है।	(1) अमेरिका की सनेट विश्व के उच्च सदनों में एक सर्वाधिक शक्तिशाली निकाय है।
(2) कनाडा की सीनेट को विदेशों के साथ की हुई सन्धियों तथा गवर्नर जनरल द्वारा की हुई नियुक्तियों पर अनुसर्मथन प्रदान के विषय में कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई हैं।	(2) संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट को राष्ट्रपति द्वारा की हुई नियुक्तियों तथा विदेशों के साथ की हुई सन्धियों का अनुमोदन करने का निश्चित अधिकार प्राप्त है। राष्ट्रपति द्वारा की हुई नियुक्तियाँ तथा सन्धियाँ उस समय तक वैध नहीं मानी जा सकती जब तक कि सीनेट उन पर अपना अनुसमर्थन न प्रस्तुत कर दे।
(3) कनाडा की सीनेट को विधि-निर्माण के क्षेत्र में सिद्धान्त: लोकप्रिय सदन के समकक्ष शक्ति प्राप्त है। यह निम्न सदन द्वारा पारित विधेयकों को पूर्णरूप से अस्वीकार नहीं कर सकती। हाँ, उन्हें कानून में लागू होने से विलम्बित अवश्य कर सकती है।	(3) संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट को विधायी क्षेत्र में प्रतिनिधि सभा के समकक्ष स्थान प्राप्त है। कोई भी सामान्य विधेयक सीनेट में प्रस्तावित किया जा सकता है। यदि किसी विधेयक पर सीनेट अपनी असहमति प्रकट कर दे, तो वह कानून का रूप धारण नहीं कर सकता। व्यवहारत: विधायी क्षेत्र में सीनेट की शक्तियाँ लोक सदन से भी अधिक हैं।
(4) कैनेडियन सीनेट के सभी सदस्य मन्त्रि-परिषद् के परामर्श पर गवर्नर जनरल द्वारा आजीवन कार्यकाल के लिये नियुक्त किये जाते हैं।	(4) संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट के सदस्य राज्य विधान-मण्डलों द्वारा जनता में चुने जाते हैं। चुनाव की प्रणाली प्रत्यक्ष रूप से क्रियान्वित होती है।
(5) कैनेडियन सीनेट को प्रधान मन्त्री अथवा गवर्नर जनरल पर महाभियोग लगाने के सम्बन्ध में भी कोई अधिकार नहीं दिया गया है।	(5) संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट को देश के बड़े-बड़े पदाधिकारी और यहाँ तक कि राष्ट्रपति पर भी महाभियोग लगाने का निश्चित अधिकार प्राप्त है।

आस्ट्रेलिया का संविधान

THE CONSTITUTION OF AUSTRALIA

प्रश्न 1—आस्ट्रेलिया के संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करो।

(कानपुर 1978)

Describe the salient features of the constitution of 1900 in Australia.

संविधान की विशेषतायें
(Features of the Constitution)

विश्व के अन्य संविधानों की भाँति आस्ट्रेलिया के संघात्मक संविधान में भी अनेक विशेषतायें पाई जाती हैं। इन विशेषताओं में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया गया है और इन्हीं के आधार पर आस्ट्रेलिया के संविधान को विश्व में सबसे अधिक प्रजातन्त्रात्मक संविधान माना जाता है। प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं :—

(1) संविधान की प्रस्तावना—किसी भी संविधान का परिचय हमें उसकी प्रस्तावना से मिल जाता है। आस्ट्रेलिया के संविधान की प्रस्तावना में लिखा है—

"न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, क्वीसलैंड और टस्मानिया की जनता सर्वशक्तिमान ईश्वर के आशीर्वाद पर विश्वास करके ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैण्ड के साम्राज्य के अन्तर्गत एक अविघटनीय संघीय राज्य मण्डल में संयुक्त होने को सहमत हुई है।" उपरोक्त प्रस्तावना पर विचार करने से निम्न बातें हमारे सामने आती हैं: (1) आस्ट्रेलिया का संविधान जनता द्वारा निर्मित है। (2) आस्ट्रेलिया के निवासी ईश्वरवादी हैं। (3) प्रस्तावना में ही यह कहा गया है कि संघीय राज्य मण्डल का गठन ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैण्ड के साम्राज्य के अन्तर्गत ही किया जायेगा।

(2) ब्रिटिश संविधान पर आधारित—आस्ट्रेलिया के निवासियों के रीति-रिवाज इंगलैण्ड से लिये गये हैं और उनके संविधान पर ब्रिटिश संविधान की छाप लगाई गई है। फिर भी आस्ट्रेलिया के निवासियों ने अपनी आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन कर लिया है। श्री रिचार्ड बेकर ने लिखा है, "मैं चिन्ता नहीं करता हूं तुम किस प्रकार से संविधान का निर्माण करते हो, आस्ट्रेलिया के लोग

अपनी आवश्यकता तथा अपने विचारों के अनुसार उसमें परिवर्तन कर लेंगे चाहे कुछ काल के लिये इसका बाह्य स्वरूप ऐसा ही रहे।"

(3) लिखित संविधान— संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति आस्ट्रेलिया का संविधान भी लिखित है। संघीय संस्कार तथा उपनिवेशों की सरकारों के बीच शक्ति का विभाजन किया गया है। यद्यपि राज्यों को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता दी गई है किन्तु फिर भी एक ऐसे शासन की स्थापना की गई है जो सभी राज्यों की इच्छानुसार कार्य कर सके।

(4) परिवर्तनशील—यद्यपि आस्ट्रेलिया का संविधान लिखित है किन्तु फिर भी इसमें परिवर्तनशीलता के लक्षण पाये जाते हैं। संविधान के संशोधन की प्रक्रिया बड़ी सरल है। इसी कारण संविधान अपने स्थायी रूप में नहीं पाया जाता है। यह वह नहीं है जो पहले था। यह प्रतिदिन कुछ और ही होता जा रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संविधान परिवर्तनशील है। अपनी परिवर्तन-शीलता के कारण यह विधान लोकप्रिय है।

(5) शक्ति विभाजन सिद्धान्त पर आधारित—आस्ट्रेलिया का संविधान अमेरिका के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित है। यद्यपि शक्तियों का विभाजन केन्द्र तथा राज्यों के बीच कर दिया गया है किन्तु फिर भी राज्यों के अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। राज्यों के स्वशासन के अधिकार की सुरक्षा की गई है।

(6) प्रजातन्त्रात्मक—आस्ट्रेलिया का संविधान अधिक रूप में प्रजातन्त्रात्मक है। सीनेट के चुनाव तथा संविधान के संशोधन के कार्य में जनता को विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। जनता को अधिकार है कि वह अपने प्रतिनिधियों पर पूरा-२ नियन्त्रण रखे। यदि संसद के दोनों सदनो में मतभेद हो जायें तो भी जनता के मत से ही उसको दूर करने की व्यवस्था की गई है। यदि किसी प्रस्ताव पर दोनों सदनों में मतभेद हैं तो गवर्नर जनरल निम्न सदन से प्रस्तावित संशोधन राज्य के निर्वाचकों के सामने रख सकता है। संशोधन का प्रस्ताव बहुसंख्यक राज्यों के बहुसंख्यक मतदाताओं तथा समान आस्ट्रेलिया संघ के बहुसंख्यक मतदाताओं द्वारा स्वीकृत हो जाने पर स्वीकृत समझा जाता है। इस प्रकार आस्ट्रेलिया में संविधान के अनुसार जनता को अधिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसी आधार पर यह माना जाता है कि आस्ट्रेलिया का संविधान विश्व के अन्य संविधानों की अपेक्षा अधिक जनतन्त्रात्मक है।

(7) जनमत पर आधारित—आस्ट्रेलिया का संविधान जनता की इच्छा पर आधारित है। दूसरे शब्दों में यह संविधान जनमत पर आधारित है। जनता के विचारों के अनुसार संविधान के आरम्भ में ही कहा गया है कि आस्ट्रेलिया का संविधान जनता की इच्छा पर आधारित है। यह संविधान ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैंड के एक्ट के कानून का जामा पहिने हुए है।

(8) उन्नतिशील संविधान—आस्ट्रेलिया के संविधान को एक उन्नतिशील संविधान माना जाता है, विश्व के सभी राष्ट्रों के संविधानों से यह संविधान अधिक जनतन्त्रात्मक है। इसमें अन्तिम सत्ता जनता के हाथों में है। जनता द्वारा सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन होता है। जनता की राय के बिना संविधान में संशोधन नहीं हो सकता, इन सब बातों के आधार पर यह कहा जाता है कि आस्ट्रेलिया में संविधान निर्माताओं का दृष्टिकोण व्यापक था जिससे एक ऐसे संविधान का निर्माण किया गया है जो उन्नतिशील है।

(9) नागरिकों को मताधिकार—संविधान द्वारा यह अनिवार्य किया गया है कि प्रत्येक नागरिक मतदाता सूची में अपना नाम लिखाये। इस अधिकार को सक्रिय बनाने के लिए सन् 1929 में संसद ने एक विधेयक पास किया जिसके द्वारा मतदान में भाग लेना नागरिकों के लिये अनिवार्य बना दिया। मताधिकार स्त्रियों को भी प्रदान किया गया है। मताधिकार प्रदान करने में धर्म, जाति तथा लिंग का भेद नहीं किया गया है।

(10) अवशेष शक्तियां राज्यों में निहित—यद्यपि शक्तियों का विभाजन राज्यों तथा संघ के बीच कर दिया गया है तथापि संविधान द्वारा संघीय सरकार की शक्तियाँ निश्चित कर दी गई हैं और शेष शक्तियाँ राज्यों में निहित कर दी गई हैं।

(11) केन्द्रीयकरण की प्रधानता—यद्यपि संविधान में राज्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई है किन्तु अन्य संघ राज्यों की भाँति शक्ति विभाजन के प्रश्न पर यह संविधान भी केन्द्र को ही शक्तिशाली बनाने का पक्षपाती है। संविधान में राज्यों को स्वतन्त्रता प्रदान की गई है किन्तु आर्थिक क्षेत्र में इन राज्यों को केन्द्र का ही मुंह देखना पड़ता है। प्रत्येक राज्य का राज्यपाल होता है जो न तो कनाडा की भांति संघीय सत्ता द्वारा नियुक्त होता है और न संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति जनता द्वारा चुना जाता है बल्कि क्राउन द्वारा उसकी नियुक्ति प्रत्यक्ष रूप से की जाती है। संघ तथा राज्यों के बीच के संघर्ष में संघीय सरकार को ही प्रधानता देने का प्रयास किया जाता है।

(12) संविधान के संशोधन में जनता का योगदान—ऊपर लिखा जा चुका है कि आस्ट्रेलिया का सविधान विश्व के सभी संविधानों की अपेक्षा अधिक जनतन्त्रात्मक है। संविधान के संशोधन में जनता की इच्छा को प्रधानता दी गई है। संविधान में स्पष्ट लिखा गया है, "प्रस्तावित संशोधन दोनों सदनों में बहुमत द्वारा स्वीकृत होने पर दो मास के उपरान्त और छः मास से पहले प्रत्येक राज्य के नन निर्वाचकों के सम्मुख रखा जाना चाहिए जिन्हें प्रतिनिधि सदन के सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार है।"

प्रश्न 2—"आस्ट्रेलिया का संविधान शुद्ध रूप में संघात्मक नहीं इसमें प्रजातन्त्र तथा सार्वभौम सत्ता की झलक मिलती है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

"The Australian constitution is not strictly Federal. It has more democaratic and sovereign character." Discuss this statement.

आस्ट्रेलिया के संविधान का संघात्मक रूप
(Federal form of Constitution)

आस्ट्रेलिया के संविधान में संघात्मक शासन के निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं।

(1) आस्ट्रेलिया में शक्ति विभाजन सीमित तथा सहयोगी संस्थाओं के मध्य किया गया है।

(2) आस्ट्रेलिया में संविधान की सर्वोच्चता को माना जाता है।

(3) अन्य संघीय शासनों की भाँति उच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार दिया गया है।

(4) संघात्मक संविधानों की भाँति आस्ट्रेलिया का संविधान लिखित है।

(5) केन्द्रीय सरकार के आदेशों को प्राथमिकता दी जाती है।

आस्ट्रेलिया के संविधान का लोकतन्त्रात्मक रूप
(Democratic character of Australian Government)

आस्ट्रेलिया के संविधान में प्रजातन्त्रिक सिद्धान्तों को अधिक प्रधानता प्रदान की गई है। इस तथ्य को निम्नलिखित बातों के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है :

(1) समानता का सिद्धान्त (Principle of Equality)—आस्ट्रेलिया के संविधान में समानता के सिद्धान्त को अपनाया गया है और इसी कारण यह संविधान विश्व के अन्य संविधानों की अपेक्षा अधिक प्रजातन्त्रात्मक माना गया है। आस्ट्रेलिया के संघ में 6 उप-राज्य सम्मिलित हैं। आस्ट्रेलिया की सीनेट में प्रत्येक उप-राज्य से दस सदस्य भेजे जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक उप-राज्य को समान रूप से अधिकार प्रदान किये गये हैं।

(2) मन्त्रि-परिषद का निर्माण (Formation of Cabinct)—संघ शासन में प्रजातन्त्रात्मक विचारों की प्रधानता मन्त्रि-परिषद के संगठन अथवा निर्माण में झलकती है। प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली के समर्थकों की भाँति आस्ट्रेलिया में भी एक ऐसे मन्त्रि-परिषद का निर्माण कर दिया गया है जिसमें प्रजातन्त्र के सिद्धांतों का अनुसरण किया गया है। वयस्क मताधिकार को प्रधान मान्यता दी गई है। मन्त्रि-परिषद का एक प्रधानमन्त्री होता है जिसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है। व्यावहारिक रूप में गवर्नर जनरल प्रतिनिधि सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को बुलाकर प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है और प्रधानमन्त्री अपनी इच्छानुसार शेष मन्त्रियों को छांट लेता है। ये सब बातें प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तों को ही प्रकट करती है।

(3) **अवशेष शक्तियां राज्यों में निहित-(Residuary Powers rested in States)**—आस्ट्रेलिया के संविधान में संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन कर दिया गया है और अवशेष शक्तियाँ राज्य की सरकार को प्रदान कर दी हैं।

(4) **सामूहिक उत्तरदायित्व (Joint Responsibility)**—आस्ट्रेलिया के संविधान में मन्त्रि परिषद के सदस्यों का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है।

(5) **मंत्रियों की संसद की सदस्यता (Membership of Parliament for Ministers)**—आस्ट्रेलिया में मंत्रि-परिषद के सदस्यों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री की सलाह से गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है किन्तु इस मंत्रि परिषद का प्रत्येक सदस्य संसद के किसी न किसी सदन का एक निर्वाचित सदस्य भी रहेगा। इस प्रकार मंत्रि-परिषद को भी एक उत्तरदायित्व-परिषद बना दिया गया है।

(6) **नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा (Security of Civil Rights)**—नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की व्यवस्था न्यायालय द्वारा की गई है। आस्ट्रेलिया में स्थित सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार है। इस व्यवस्था के कारण विधान मण्डल कोई भी ऐसा कानून नहीं बना सकता जो नागरिकों के अधिकारों पर कुठाराघात करता हो।

आलोचना (Criticism)

(1) **संविधान में राजतन्त्र की झलक**—यद्यपि आस्ट्रेलिया के संविधान में संघात्मक तथा प्रजातन्त्रात्मक गुण विद्यमान हैं किन्तु फिर भी आस्ट्रेलिया में राजतन्त्र की झलक है क्योंकि आस्ट्रेलिया की कार्यकारिणी का प्रधान गवर्नर जनरल इंगलैंड के राजा द्वारा मनोनीत किया जाता है और इसीलिए वह इंगलैंड के राजा के प्रति ही उत्तरदायी है।

(2) **गवर्नर जनरल का अप्रत्यक्ष रुप से उत्तरदायित्व**—किन्तु इतना होते हुए भी हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि गवर्नर जनरल के अधिकार कम और सीमित हैं। वह केवल एक रबर-स्टाम्प है, राजनीति से उसका औपचारिक सम्बन्ध है। सैद्धान्तिक रूप में कार्यपालिका सत्ता गवर्नर जनरल में निहित है किन्तु व्यावहारिक रूप में मन्त्रि-परिषद ही शासन सत्ता की अधिकारी है। इस प्रकार गवर्नर जनरल भी जनता के प्रति अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है।

(3) **जनमत का महत्व**—आस्ट्रेलिया के संविधान को अधिक प्रजातन्त्रात्मक बनाने वाला एक प्रमुख तथ्य यह है कि वहाँ संविधान का संशोधन जनता के मत पर आधारित है। यदि संविधान के संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव पर संसद के दोनों सदनों में मतभेद हो तो उसका अन्तिम निर्णय राज्यों के उन निर्वाचकों द्वारा किया जाता है जिन्हें प्रतिनिधि सदन के सदस्यों का निर्वाचन करने का अधिकार हैं। संशोधन का प्रस्ताव बहुसंख्यक राज्यों के बहुसंख्यक मतदाताओं द्वारा स्वीकृत हो जाने पर ही स्वीकृत समझा जाता है।

प्रश्न 3—आस्ट्रेलिया की कार्यपालिका का वर्णन कीजिए।

(भोपाल 1978)

Describe the Commonwealth Executive in Australia.

आस्ट्रेलिया के गवर्नर जनरल की शक्तियों का वर्णन कीजिये और आस्ट्रेलिया के गवर्नर जरनल की शक्तियों की तुलना कनाडा के गवर्नर जनरल की शक्तियों से कीजिए।

(कानपुर 1979)

Give an outline of the Status and Powers of Governor General of Australia.

आस्ट्रेलिया में कार्यपालिका (Executive in Australia)

कार्य पालिका के अंग (Parts of Executiue)—कार्यपालिका गवर्नर जनरल तथा मंत्रि परिषद से मिलकर बनती है। गवर्नर जनरल उसका प्रमुख अधिकारी है। अतएव कार्यपालिका को समझने के लिये हमें सर्वप्रथम गवर्नर जनरल के विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये।

गवर्नर जनरल की नियुक्ति (Appointment of Governor General)—आस्ट्रेलिया के गवर्नर जनरल को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं :

(अ) कार्यकारिणी शक्तियां (Executive Powers)

(1) कार्यपालिका की सत्ता पर निमंत्रण—कार्यपालिका की सम्पूर्ण सत्ता गवर्नर जनरल में ही निहित है। आस्ट्रेलिया की जल सेना तथा स्थल सेना का भी गवर्नर जनरल ही कमान्डर है।

(2) परिषद के सदस्यों पर अधिकार—गवर्नर जनरल को मंत्रणा देने के लिए एक परिषद् की रचना की जाती है, परिषद के सदस्यों को गवर्नर जनरल हटा सकता है।

(3) शपथ के लिए आमन्त्रित करना—संविधान के अनुसार गवर्नर जनरल परिषद् के सदस्यों को शपथ ग्रहण के लिए आमन्त्रित करता है।

(4) प्रधानमंत्री की नियुक्ति करना—प्रधान मन्त्री गवर्नर जनरल की स्वीकृति पर ही अपने मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों को नियुक्त करता है।

(ब) विधायनी शक्तियाँ

(1) संसद पर नियन्त्रण—गवर्नर जनरल राजा या सभी का प्रतिनिधित्व करता है, संसद के सम्मेलन का समय निश्चित करना तथा उसके विघटन की घोषणा करना गवर्नर जनरल के ही कार्य हैं।

(2) प्रतिनिधि सभा का विघटन—वैसे प्रतिनिधि सदन की अवधि आस्ट्रेलिया में तीन वर्ष है किन्तु संविधान और प्रचलित प्रथा के अनुसार मंत्रिपरिषद की मन्त्रणा पर गवर्नर जनरल द्वारा इस अवधि से पूर्व ही सदन का विघटन किया जा सकता है।

(3) सीनेट के सदस्यों के त्याग-पत्र की स्वीकृति—गवर्नर जनरल सीनेट के सदस्यों का त्याग-पत्र स्वीकार कर सकता है और कोई भी सीनेट सदस्य त्याग-पत्र देकर गवर्नर जनरल की स्वीकृति से सीनेट से अलग हो सकता है।

(4) विधेयकों पर हस्ताक्षर—विधान मन्डल के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत विधेयकों पर गवर्नर जनरल के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं, उसके हस्ताक्षरों के बिना कोई भी विधेयक अधिनियम नहीं वन सकता है।

(5) विधेयकों को संसद को लौटाना—गवर्नर जनरल को अधिकार है कि वह किसी भी विधेयक को अपनी सिफारिशों सहित संसद् के पास पुनः विचार करने के लिये भेज सकता है।

(6) विधेयकों को राजा की स्वीकृति के लिये रखना—गवर्नर जनरल दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत विधेयक को राजा या रानी की स्वीकृति के लिये अपने पास रख सकता है।

(7) दोनों सदनों का विघटन—विधान मन्डल के दोनों सदनों में मतभेद हो जाने पर गवर्नर जनरल को अधिकार है कि वह दोनों सदनों को एक ही साथ विघटित कर दे किन्तु इस प्रकार का विघटन निम्न सदन की अवधि की साधारण समाप्ति के छः मास पूर्व वाले समय में नहीं हो सकता है।

(8) दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाना—दोनों सदनों के मत भेद को दूर करने के लिए गवर्नर जनरल उसकी एक संयुक्त बैठक भी बुला सकता है और दोनों सदनों के बहुमत से किसी भी विधेयक को स्वीकार करा सकता है।

(स) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers)

(1) न्यायालय के सदस्यों की नियुक्ति—आस्ट्रेलिया में न्यायपालिका सत्ता उच्च न्यायालय में निहित है। उच्च न्यायालय के समस्त सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा ही की जाती है।

(2) न्यायाधीश की पदच्युति—संसद के दोनों सदनों की प्रार्थना पर किसी दुराचार के आधार पर गवर्नर जनरल मन्त्रि परिषद् की सलाह से किसी भी न्यायाधीश को पदच्युत कर सकता है।

(द) अन्य शक्तियां (Other Powers)

(1) संविधान में संशोधन—संविधान के संशोधन में भी गवर्नर जनरल को विशेष अधिकार प्राप्त है। संशोधन के विषय पर यदि दोनों सदनों में मतभेद हो तो गवर्नर जनरल निम्न सदन से प्रस्तावित संशोधन बिना परिवर्तनों के या दोनों सदनों द्वारा मान्य परिवर्तनों के साथ राज्यों के निर्वाचकों के सम्मुख रख सकता है।

(2) संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव पर अधिकार—संशोधन का कोई भी प्रस्ताव मतदाताओं द्वारा स्वीकृत होने पर राजा या रानी की सम्मति लेने के लिये गवर्नर जनरल के पास भेज दिया जाता है।

आलोचना (Criticism)

(1) केवल नाममात्र का सत्ताधारी—ऊपर लिखी हुई बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आस्ट्रेलिया के गवर्नर जनरल को प्रत्येक क्षेत्र में असीम अधिकार प्राप्त हैं किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से हमें यह समझ लेना चाहिये कि आस्ट्रेलिया का गवर्नर जनरल केवल एक "रबड़ की मुहर" के समान है।

(2) सीमित अधिकार—वह राजा या रानी का प्रतिनिधि है। उसकी नियुक्ति केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् की सलाह से राजा या रानी द्वारा की जाती है। उसके अधिकार इतने कम और सीमित है कि राजनीति से उसका सम्बन्ध केवल औपचारिक है। यद्यपि कार्यपालिका सत्ता गवर्नर जनरल में निहित मानी जाती है तथापि मन्त्रि-परिषद ही शासन सत्ता का अधिकारी है। गवर्नर जनरल मन्त्रि-परिषद की बैठकों में भी शामिल नहीं होता।

आस्ट्रेलिया और कनाडा के गवर्नर जनरलों की तुलना
(Governor General of Australia and Canada Compared)

कनाडा और आस्ट्रेलिया के गवर्नर जनरलों की शक्ति की तुलना निम्न प्रकार से की जा सकती है :

(1) स्थिति में अन्तर—कनाडा का गवर्नर जनरल रानी के नाम से शासन चलाता है। वह ब्रिटिश शासन का प्रतिनिधित्व करता है।

(2) सत्ता में अन्तर—कनाडा में रानी का वास्तविक प्रभाव है। गवर्नर जनरल रानी के नाम से ही शासन करता है किन्तु आस्ट्रेलिया का गवर्नर जनरल शासन का वास्तविक अधिकारी है। वह ब्रिटिश शासन का प्रतिनिधि है और वहां राजा अथवा रानी का औपचारिक नाम है।

(3) सैनिक अधिकारों में अन्तर—ब्रिटिश नार्थ अमरीका कानून के सेक्शन 15 के अनुसार कनाडा की सशस्त्र सेनाओं की सर्वोच्च कमान रानी में निहित है। अतएव गवर्नर जनरल सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति नहीं है किन्तु आस्ट्रेलिया का गवर्नर जनरल वहां की जल तथा थल सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति है।

(4) कनाडा का गवर्नर जनरल सीनेट के सदस्यों को छांटता है और उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति करता है किन्तु आस्ट्रेलिया के गवर्नर जनरल को इस प्रकार के अधिकार नहीं हैं। वहां पर सीनेट के सदस्य उप-राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं।

(5) नियुक्ति सम्बन्धी अधिकारों में अन्तर—कनाडा का गवर्नर जनरल प्रांतों के लेफ्टिनेट गवर्नरों की नियुक्ति करता हैं किन्तु आस्ट्रेलिया के राज्यों के गवर्नरों की नियुक्ति राजा या रानी द्वारा की जाती है।

प्रश्न 4—आस्ट्रेलिया में कामनवेल्थ की कार्यकारणी का वर्णन कीजिये।
(जीवाजी 1978)

Describe the Commenwealth Executive in Australia.

आस्ट्रेलिया की मन्त्री-परिषद के संगठन तथा उसके कार्यों का वर्णन कीजिये और उसकी तुलना ब्रिटिश केबिनेट से कीजिये।

Describe the formation and function of the Cabinet in Australia and compare in with British Cabinet.

आस्ट्रेलिया में कार्यकारिणी अथवा मंत्रि परिषद्
(Executive or Cabinet in Australia)

औपचारिक कार्यकारिणी—आस्ट्रेलिया में औपचारिक कार्यकारणी की शक्ति इग्लैंड के राजा अथवा रानी में निहित है और उसका उपभोग इगलैंड के राजा के प्रतिनिधि के रूप मे गवर्नर जनरल द्वारा किया जाता है। वेस्टमिनिस्टर के स्टेट्यूट के अनुसार आस्ट्रेलिया की कार्यकारणी पर राजा अथवा गवर्नर जनरल का नियन्त्रण केवल औपचारिक है।

वास्तविक कार्यकारिणी (Real Executive)—कामनवेल्थ का इतिहास इस बात का साक्षी है कि वहां सदैव ही उत्तरदायी संसदीय शासन की प्रथा चली आई है और सरकार सदैव ही मंत्रियों की सलाह पर कार्य करती रही है। गवर्नर जनरल को सलाह देने के लिये एक परिषद् का निर्माण किया गया है इस परिषद के सदस्यों की नियुक्ति गर्वनर जनरल द्वारा ही की जाती है और उसकी इच्छा रहने तक ही कोई सदस्य परिषद् का सदस्य बना रह सकता है।

मंत्रि-परिषद का सगठन (Organisation of Cabinet)—मन्त्रि-परिषद के निर्माण एवं संगठन के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

(1) प्रधान मन्त्रि की नियुक्ति—गवर्नर जनरल प्रतिनिधि सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को बुलाकर प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त कर देता है।

(2) अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति- प्रधान मन्त्री अपने दल के सदस्यों की सलाह से अन्य मन्त्रियों को भी चुन लेता है और वे चुने हुए व्यक्ति गवर्नर जनरल द्वारा मन्त्रि परिषद् के सदस्य नियुक्त कर दिये जाते हैं।

(3) मंत्रियों के लिये आवश्यक शर्तें—प्रत्येक मन्त्री संघ के संसद् के किसी भी सदन का सदस्य अवश्य ही होगा।

प्रधान मंत्री के कार्य (Functions of Prime Minister)

(1) प्रतिनिधि सदन में बहुमत दल के नेता को गवर्नर जनरल द्वारा प्रधान-मन्त्री नियुक्त किया जाता है।

(2) परिषद् का संगठन करते समय प्रधानमन्त्री राज्यों के कार्यों का समुचित आदर करता है और यह प्रयास करता है कि प्रत्येक राज्य का कम से कम एक प्रतिनिधि मन्त्री अवश्य बन जाये।

(3) अपनी इच्छानुसार प्रशासन विभागों को अपने साथी मन्त्रियों में वितरित करता है।

(4) प्रधानमन्त्री ही मंत्रि-परिषद् का अध्यक्ष होता है और वही परिषद् की नीति निर्धारित करता रहता है। उसको चार हजार पौन्ड वार्षिक वेतन मिलता है।

मन्त्रि-परिषद् की कार्य प्रणाली—(Function of the Cabinet)—आस्ट्रेलिया के मन्त्रि परिषद् के कार्यों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं :

(1) प्रशासक विभाग रहित मंत्रियों की नियुक्ति—प्रधान मन्त्री कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी मंत्रि परिषद् का सदस्य चुन सकता है जिन्हें किसी शासन-विभाग का कार्य नहीं सौंपा जाता है।

(2) उत्तरदायी शासन—संविधान के अनुसार मन्त्रि-परिषद् प्रतिनिधि सदन के प्रति उत्तरदायी है और उसका विश्वास खो देने पर पद-त्याग कर देती है

(3) सामूहिक उत्तरदायित्व—मन्त्रि-परिषद् ही देश की सामान्य नीति निर्धारीत करती है इसी लिये परिषद् का कार्य सामूहिक उत्तरदायित्व पर निर्भर है।

(4) प्रधानमन्त्री का प्रभुत्व—यदि कोई मन्त्री प्रधान-मन्त्री से मतभेद करता है तो उस मन्त्री को मंत्रि-परिषद् से त्याग-पत्र देना पड़ता है।

(5) शक्तिशाली मंत्रि परिषद—संविधान के अनुसार कार्यपालिका की शक्ति गवर्नर जनरल में निहित है किन्तु व्यवहारिक रूप में कार्यपालिका की सारी शक्तियां मन्त्रि-परिषद् में ही निहित हैं।

(6) दलीय प्रभाव—प्रधान मन्त्री पर उसके दल का भारी प्रभाव पड़ता है। दल के आदेशों का उसे प्रत्येक रूप में पालन करना पड़ता है।

(7) मन्त्रि परिषद में उपराज्यों का प्रतिनिधित्व—प्रधान मन्त्री जिन व्यक्तियों को मन्त्रि-परिषद् का सदस्य चुनता है वे उसके दल के प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं। प्रत्यक उप-राज्य को मन्त्रि-परिषद में प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है।

(8) सभाओं में प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता—गवर्नर जनरल ही कार्य-पालिका का एक मात्र अध्यक्ष है किन्तु वह उन सभाओं में भाग नहीं लेता जो प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में की जाती हैं।

(9) अध्यक्ष की नियुक्ति में मन्त्रि परिषद् का हाथ—आस्ट्रेलिया में मन्त्रि-परिषद् इतना प्रभावशाली है कि राजा या रानी मन्त्रि-परिषद् की सलाह से ही गवर्नर जनरल की नियुक्ति करता है। इस प्रकार अपने अध्यक्ष की नियुक्ति में भी मन्त्रि परिषद् का हाथ होता ।

ब्रिटिश कैबिनेट मे तुलना
(Comparison with British Cabinet)

समानतायें—आस्ट्रेलिया एवं ब्रिटिश मंत्रि-परिषद् की तुलना के सम्बन्ध में निम्नलिखित बात उल्लेखनीय है :

(1) परम्पराओं पर आधारित—दोनों ही देशों में मन्त्रि-परिषद् का अस्तित्व प्राचीन रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं के आधार पर है।

(2) मंत्रि परिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व—दोनों ही देशों के मन्त्रि-परिषद में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को अपनाया गया है। यदि मन्त्रि-परिषद के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाये तो दो नों में मंत्रि-परिषद् को त्याग-पत्र देना होगा।

(3) मंत्रिपरिषद का अप्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व—दोनों देशों में अप्रत्यक्ष रूप से मंत्रि-परिषद् ही निम्न सदन का नेतृत्व करता है क्योंकि निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही देशों में प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है।

(4) प्रधानमंत्री का प्रथम स्थान—दोनों देशों की मन्त्रि परिषद् में प्रधान मन्त्री का स्थान "समान सदस्यों में प्रथम" है।

(5) समितियों की व्यवस्था—दोनों देशों की मन्त्रि-परिषद् अपने विशेष कार्यों को सम्पन्न करने के लिये विशेप समितियों का निर्माण करती है तथा दोनों ही देशों में इन समितियों के निर्माण करने की व्यवस्था मन्त्रि-परिषद् द्वारा की जाती है।

असमानतायें—

(1) प्रधान मन्त्री की शक्तियों में असमानतायें—आस्ट्रेलिया के प्रधान मन्त्री को इतनी शक्तियां प्राप्त नहीं हैं जितनी कि ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री को प्राप्त है।

(2) दलीय नियन्त्रण में अन्तर—आस्ट्रेलिया के प्रधान मन्त्री को दल के अनुशासन में रहना पड़ता है किन्तु इग्लैंड के प्रधान मन्त्री पर दल का इतना प्रभाव नहीं है।

(3) प्रधान मन्त्रियों की स्थितियों में अन्तर—इग्लैंड में प्रधानमन्त्री मन्त्री परिषद् का स्तम्भ माना जाता है किन्तु आस्ट्रेलिया के प्रधानमन्त्री को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है।

(4) उत्तरदायित्व में अन्तर—आस्ट्रेलिया में व्यक्तिगत सदस्यों के बिलों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। इससे विधान मन्डल के सम्मुख मन्त्री-परिषद् का उत्तरदायित्व कम होता जा रहा है। परन्तु इग्लैंड में मन्त्रि परिषद् का उत्तर-दायित्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

प्रश्न 5—आस्ट्रेलिया में संघीय सरकार की शक्तियों का वर्णन करो।

Describe the powers of Federal Government in Australia.

आस्ट्रेलिया में संघीय सरकार

(Federal Government in Australia)

संघ सरकार की स्थिति (Status of Federal Government)

(1) संघ शासन की स्थापना—आस्ट्रेलिया में संविधान के अनुसार एक संघ शासन की स्थापना की गई है। इसमें संघ सरकार को विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं।

(2) शक्ति विभाजन के सिद्धान्त का पालन—संविधान में शक्ति विभाजन के सिद्धान्त का पूर्णरूप से पालन किया गया है।

(3) संघ सरकार को विशेष विषयों पर कानून बनाने का अधिकार—कुछ विशेष विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संघ सरकार को ही दिया गया है और उपराज्यों से सम्बन्धित विषय पर अधिनियम बनाने का अधिकार उपराज्यों को ही दिया गया है।

(4) अवशेष शक्तियां उपनिवेशों में—आस्ट्रेलिया के संविधान की एक विशेषता यह भी है कि संघ राज्य में सम्मिलित होने वाले उपनिवेशों में ही अवशेष शक्तियां (Residuary Powers) निहित हैं।

( ) उपनिवेशों का झुकाव संघ की तरफ—अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण उपनिवेशों की स्वतन्त्रता की सुरक्षा का प्रश्न बड़ा ही जटिल है। अतएव संघ राज्यों में सम्मिलित होने वाले सभी उपनिवेश संघ सरकार को ही शक्तिशाली बनाने के पक्ष में हैं।

संघ सरकार की विधायन शक्तियां (Legislative Powers of Federal Government)—संघ सरकार निम्नलिखित विषयों पर अपना अधिकार रखती है—(1) नाविक एवं सैनिक सुरक्षा, (2) कोमनवेल्थ में सुरक्षा की व्यवस्था, (3) दूसरे देशों तथा राज्यों में व्यापार, (4) सभी राज्यों में डाक व तार की व्यवस्था, (5) कर निर्धारण, (6) ऋण व्यवस्था, (7) मुद्रा, (8) आस्ट्रेलिया के समुद्रों में मछली पकड़ना, (9) जनगणा, (10) नाप तोल, (11) नागरिकता निर्णय, (12) विवाह, विवाह विच्छेद तथा वैवाहिक सम्बन्ध, (13) कोमनवेल्थ में कानून की व्यवस्था, (14) राज्यों में न्यायिक प्रक्रिया; (15) विदेशी मामले, (16) पैसिफिक द्वीप समूहों से कामनवेल्थ के सम्बन्ध. (17) किसी भी राज्य से उचित रूप में जायदाद की प्राप्ति, (18) रेलवे की व्यावस्था, (19) व्यवसायिक निर्णय। (20) संघ संसद तथा राज्यों की संसद द्वारा प्रस्तुत मामले, (21) अन्य आकस्मिक मामले जो संसद द्वारा पेश किये जायें इत्यादि।

संघ सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में प्रदेश (Direct control of territories under the Federal Government)—दक्षिणी आस्ट्रेलिया के उत्तर में स्थित उत्तरी प्रदेश ब्रिटिश न्यूगिनी आदि प्रदेशों पर संघ सरकार का प्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित किया गया है।

संघ सरकार की आर्थिक शक्तियां (Financial Powers of Federal Government)—संघ सरकार की आर्थिक शक्तियां इतनी अधिक है कि इसके सामने अमेरिका की संघ सरकार भी नहीं टिक सकती। इसके पास धन-प्राप्ति के अनेक साधन हैं। आर्थिक क्षेत्र में संघ सरकार को अनेक अधिकार हैं। ये अधिकार अग्रलिखित हैं।

(1) **कर लगाना**—संघ सरकार नाना प्रकार के कर लगा सकती है प्रतिबन्ध केवल इतना ही है कि इस प्रकार के कर सभी राज्यों में समान रूप से लगाये जाने चाहियें।

(2) **चुंगी पर नियन्त्रण**—चुंगी आदि पर संघ सरकार का पूर्ण नियन्त्रण है।

(3) **आय का वितरण**—संघ सरकार के निर्माण के दस वर्षों के वाद कुछ चुंगी आदि से प्राप्त धन का चौथाई भाग संघ सरकार के पास सुरक्षित था और शेष धन प्रत्येक राज्यों को प्रति मास दे दिया जाता है।

(4) **अन्य शक्तियां**—परिस्थितियों के वशीभूत संघ सरकार को आर्थिक क्षेत्र में और भी अधिक शक्तियां प्राप्त हैं। आस्ट्रेलिया में लेवर पार्टी के जन्म के कारण संघ सरकार को और भी अधिक शक्तियां प्राप्त हो गई हैं क्योंकि लेबर पार्टी संघ सरकार को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में है।

प्रश्न 6—आस्ट्रेलिया में सीनेट के संगठन तथा कार्यों का वर्णन करो।

(कानपुर 1978)

Describe the composition and functions of the Senate in Australia.

आस्ट्रेलिया में विधान मन्डल
(Legislature in Australia)

(1) इंगलैंड की भांति आस्टेलिया में भी राजनीतिक गतिविधि का केन्द्र सँसद ही माना गया है।

(2) आस्ट्रेलिया की विधायकी सत्ता संसद में ही निहित है।

(3) संसद में राजा या रानी प्रतिनिधि-सदन और सीनेट तीनों सम्मिलित है।

(4) गवर्नर-जनरल राजा या रानी का प्रतिनिधित्व करता है।

(5) संसद के सम्मेलन का समय निश्चित करना तथा उसके विघटन की घोषणा करना गवर्नर जनरल का ही कार्य है।

(6) आस्ट्रेलिया का विधान-मन्डल द्विसदनात्मक है। निम्न सदन प्रतिनिधि सदन (House of Representative) और उच्च सदन सीनेट (Senate) कहलाता है। इस प्रश्न में हम सीनेट के संगठन, कार्य तथा महत्व का वर्णन करेंगे।

आस्ट्रेलिया में सीनेट
(Senate in Australia)

सीनेट का संगठन (Organisation of Senate)—सीनेट के सँगठन के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं:

(1) सीनेट के सदस्यों की सँख्या 60 है। प्रत्येक उपराज्य से 10 प्रतिनिधि भेजे जाते हैं।

(2) सीनेट के सदस्यों का चुनाव करने के लिये राज्य एक निर्वाचन-मन्डल बनाता है और प्रत्येक नागरिक प्रत्यक्ष रूप से सीनेट के लिए मत प्रदान कर सकता है।

(3) उक्त विधि के आधार पर सीनेट के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से किया जाता है। इसलिए यह एक ऐसा सदन है जो विश्व के सभी देशों के उच्च सदनों में अधिक प्रजातन्त्रात्मक माना जाता है।

सीनेट के सदस्यों की योग्यता—(Quliifcations of a Senator)— सीनेट के सदस्यों की योग्यता कोई विशेष नहीं है। प्रतिनिधि सदन का सदस्य बनाने की योग्यता रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति सीनेट की सदस्यता के लिये उम्मीदवार हो सकता है।

सीनेट के सदस्यों की अवधि (Tenure of the Members of Senate)— सीनेट के सदस्य 6 वर्ष के लिये चुने जाते हैं और प्रति तीन वर्ष के उपरान्त आधे सदस्य हटा दिये जाते हैं। इस प्रकार से आस्ट्रेलिया का उच्च सदन सीनेट एक स्थायी संस्था है।

सीनेट के सदस्यों की सुविधायें (Facilities to Senators)— सीनेट के प्रत्येक सदस्य को 1,000 पौंड प्रतिमास भत्ते के रूप में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि सीनेट के सदस्यों के समान जब तक वह सीनेट का सदस्य रहता है तब तक सदस्यता के साधारण अधिकार, स्वतन्त्रता एवं सुविधाओं का उपभोग करता है।

सीनेट का सभापति (President of Senate)— (1) सीनेट के सदस्य अपना सभापति स्वयं चुनते हैं।

(2) सभापति सब प्रश्नों का निर्णय बहुमत के आधार पर करता है।

(3) प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है।

(4) सभापति को भी अपना एक मत देने का अधिकार होता है।

(5) पक्ष और विपक्ष में मत बराबर आने पर प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है। इस प्रकार सभापति का मत निर्णायक मत नहीं माना जाता है।

सीनेट के सदस्यों की गणपूरक संख्या (Quorum of the Senate)— सीनेट के कुल सदस्यों की संख्या का एक-तिहाई भाग सीनेट की गणपूरक संख्या मानी जाती है। इस प्रकार से सीनेट की गणपूरक संख्या (20) अर्थात् यदि सीनेट की कुल संख्या 60 में से किसी मीटिंग में 30 सदस्य उपस्थित हो जाते हैं तो मीटिंग की कार्यवाही विधिवत् चल सकती है।

सीनेट के सदस्यों की पदच्युति (Termination of Membership)— सनेट के सदस्यों को सीनेट की सदस्यता से अग्रलिखित तरीकों से मुक्ति मिल जाती है—

(1) सीनेट का कोई भी सदस्य निरन्तर दो अधिवेशनों में अनुपस्थित रहता है तो वह सीनेट की सदस्यता से वंचित हो जाता है।

(2) कोई भी सदस्य सीनेट के सभापति को या उसकी अनुपस्थिति में गवर्नर जनरला को त्याग-पत्र देकर सीनेट की सदस्यता से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। किसी सदस्य की मृत्यु के कारण भी सीनेट में स्थान रिक्त हो जाता है।

सीनेट में रिक्त स्थान की पूर्ति (Filling up of Vacancy)—यदि सीनेट में किसी सदस्य के त्याग पत्र देने पर या उसकी मृत्यु हो जाने पर या उसकी लगातार अनुपस्थिति होने पर कोई स्थान रिक्त हो जाता है तो उसकी पूर्ति निम्नलिखित तरीके से भी की जाती है—

(1) जिस राज्य के प्रतिनिधि सदस्य का स्थान रिक्त होता है उस राज्य संसद के सदन संयुक्त बैठक में शेष अवधि के लिये एक अन्य सदस्य का निर्वाचन सीनेट के लिये कर लेते हैं और उसको सीनेट में अपना प्रतिनिधि सदस्य बनाकर भेज देते हैं।

(2) यदि रिक्त स्थान होने के समय संसद् का अधिवेशन न हो रहा हो तो सम्बन्धित राज्य का राज्यपाल राज्य की कार्यकारिणी की अनुमति से सीनेट की सदस्यता के लिये किसी भी व्यक्ति को मनोनीत कर सकता है। किन्तु इस प्रकार का व्यक्ति राज्य की संसद के सत्र के प्रारम्भ होने के केवल 24 दिन बाद तक ही सीनेट का सदस्य रह सकेगा अथवा उसके उत्तराधिकारी के चुनाव तक इसमें से जो भी पहले हो जाय।

सीनेट का विघटन (Dissolution of Senate)—यदि प्रतिनिधि सदन तथा सीनेट में मतभेद हो जाये तो गवर्नर जनरल को अधिकार है कि वह दोनों सदनों का विघटन कर दे। परन्तु इस प्रकार का विघटन निम्न सदन की अवधि की साधारण समाप्ति के छः पूर्व वाले समय में नहीं हो सकता है।

सीनेट की शक्तियाँ (Powers of Senate)

(1) आस्ट्रेलिया की संसद के दोनों सदनों प्रतिनिधि सदन तथा सीनेट को समान अधिकार प्राप्त हैं।

(2) किसी भी सदन में विधेयक प्रस्तुत किया जाता है किन्तु वित्त विधयेक को प्रारम्भ करने का अधिकार सीनेट को नहीं है। यह अधिकार केवल निम्न सदन को ही है अर्थात् धनविधेयक सीनेट में प्रारम्भ नहीं हो सकता है।

(3) प्रत्येक विधेयक को सरलतापूर्वक स्वीकृत कराने के लिये सीनेट की अनुमति आवश्यक है। यदि सीनेट अपनी स्वीकृति न दे तो मतभेद उत्पन्न हो जाता है जिसका समाधान विभिन्न तरीकों से किया जाता है। इसके सम्बन्ध में अगले प्रश्नों में वर्णन किया जायेगा।

सीनेट की शक्ति तथा महत्व (Strength and Role of Senate)—आस्ट्रेलिया के संविधान के निर्माताओं ने सीनेट को शक्तिशाली बनाने की व्यवस्था

की है । सीनेट की लोकप्रियता तथा उसके महत्व को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित तत्व है :

(1) राज्यों को समान प्रतिनिधित्व—सीनेट के संघ में सम्मिलित होने वाले सभी राज्यों को समान रूप से प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

(2) दोनों सदनों का समान अधिकार--प्रतिनिधि सदन तथा सीनेट दोनों को ही समान अधिकार प्राप्त है।

(3) अधिक जनतन्त्रात्मक सीनेट—आस्ट्रेलिया की सीनेट कनाडा या अमेरिका की सीनेट से अधिक जनतन्त्रात्मक है। कनाडा की सीनेट से गवंनर जनरल सम्पत्ति योग्यता के आधार पर सदस्यों को मनोनीत करता है जो जीवन पर्यन्त सदस्य बने रहते हैं इसके विपरीत आस्ट्रेलिया को सीनेट में उपराज्यों को समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है।

(4) राज्यों के हितों का रक्षक-संविधान के विशेषज्ञों द्वारा सीनेट का निर्माण "राज्यों के सदन" के रूप में किया है जिससे राज्यों के हित की रक्षा की जा सके।

आलोचना (Criticism)

आस्ट्रेलिया के सीनेट को अधिक जनतन्त्रात्मक सदन माना जाता है। किन्तु आलोचकों का कहना है कि सीनेट राज्यों का प्रनिधित्व नहीं करती है। यह तो राज्यों में विजयी दल का प्रतिनिधित्व करती है। जो राजनीतिक दल लगातार दो साधारण चनावों में विजयी होता है वही सीनेट के अधिकार पदों का नियन्त्रण करता है। इस सम्बन्ध में लार्ड ब्राइस ने मोडर्न डेमोक्रेसीज नामक पुस्तक के भाग दो में स्पष्ट लिखा है। सीनेट से जो आशा की गई थी वह पूर्ण नहीं हुई है। इसने राज्यों के हितों की रक्षा नहीं की क्योंकि उन हितों पर कोई प्रश्न ही नहीं उठा······न यह सदन विशेषज्ञ पुरुषों का ही सदन रहा क्योंकि कुशल राजनीतिज्ञ प्रतिनिधि सदन में चले आते हैं। जहां संघर्ष करने के बाद वे मन्त्रिपद को प्राप्त कर लेते हैं। अमेरिका की सीनेट की भांति विदेशी नीतियाँ उच्च अधिकारियों की नियुक्ति पर नियन्त्रण का कोई विशेष अधिकार न होने के कारण आस्ट्रेलिया की सीनेट प्रतिनिधि सदन की एक प्रतिलिपि मात्र है।"

लार्ड ब्राइस के उक्त कथन के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि सीनेट निम्न सदन द्वारा भेजे गये प्रस्तावों को स्वीकृत करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करता है। यदि सीनेट के विरुद्ध अविश्वास पास हो जाये तो उसके विघटन से सरकार के त्याग-पत्र का प्रश्न नही उठता है। इस प्रकार आस्ट्रेलिया का उच्च सदन सीनेट जनतन्त्रात्मक होते हुए भी राज्य के हितों की रक्षा करने में सफल नहीं है।

प्रश्न 7-- आस्ट्रेलिया की सीनेट की शक्तियों की तुलना अमेरिका की सीनेट, कनाडा की सीनेट तथा इग्लैंड की लार्ड सभा से कीजिये।

अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया की सीनेट

अमेरिका और आस्ट्रेलिया की सीनेट में हम संगठन और अधिकार की तुलना अग्रलिखित ढंग से कर सकते हैं :

संगठन की तुलना--

(1) सदस्य संख्या में अन्तर--अमेरिका के सीनेट की सदस्य संख्या 96 है और आस्ट्रेलिया के सीनेट की सदस्य संख्या 60 है।

(2) राज्यों के प्रतिनिधियों में अन्तर--अमेरिका की सीनेट में प्रत्येक राज्य से दो प्रतिनिधि जाते हैं किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट गें प्रत्येक राज्य से (10) दस प्रतिनिधि जाते हैं।

(3) सदस्यों की मुक्ति में अन्तर—अमेरिका में प्रति दो वर्ष के बाद सीनेट कीं सदस्य संख्या का एक तिहाई भाग अवकाश ग्रहण करेगा किन्तु आस्ट्रेलिया में प्रति तीसरे वर्ष सीनेट की सदस्य संख्या का आधा भाग अवकाश ग्रहण करेगा।

(4) चुनाव की कुशलता में अन्तर—यद्यपि आस्ट्रेलिया और अमेरिका दोनों ही देशों में सीनेट का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से होता है किन्तु आस्ट्रेलिया में यह चुनाव छोटा देश होने के कारण अधिक प्रजातांत्रिक है।

दोनों के अधिकारों की तुलना---अमेरिका और आस्ट्रेलिया के सीनेट के अधिकारों की तुलना निम्न प्रकार से की जाती है :

(1) अधिकारों के स्तर में अन्तर—अमेरिका सीनेट के विषय में **'फाइरर'** ने लिखा है : "विश्व में उच्च सदन की रचना निम्न सदन पर नियन्त्रण करने के लिये की जाती है परन्तु अमेरिकन सीनेट ने नियन्त्रण के अतिरिक्त अपने अधिकारों की भी स्थापना की है। इस प्रकार सीनेट ने उन शक्तियों पर अधिकार पा लिया है जो विश्व के किसी भी उच्च सदन को प्राप्त नहीं है।" फाइनर के कथन से स्पष्ट है कि अधिकार की दृष्टि से अमेरिकन सीनेट विश्व का सर्वोच्च सदन है किन्तु यह स्थान आस्ट्रेलिया के सदन को प्राप्त नहीं है।

(2) वित्तय शक्ति में अन्तर।

(अ) वित्त विधेयक के अतिरिक्त अन्य सभी विधेयकों को अमेरिका में प्राय: सीनेट ही प्रास्तवित करता है किन्तु आस्ट्रेलिया में सीनेट इस प्रकार के कार्यों में विशेष रुचि नहीं रखता, वहाँ पर यह कार्य प्रतिनिधि सदन का ही माना जाता है।

(ब) अमेरिकन सीनेट वित्त विधेयक को भी साधारण विधेयक की भांति संशोधित अथवा अस्वीकृत कर सकती है। किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट को वित्त विधेयकों पर इस प्रकार के अधिकार नहीं हैं।

(3) न्याय सम्बन्धि अधिकारों में अन्तर—अमेरिका की सीनेट राष्ट्रपति अथवा राज्य के अन्य उच्चाधिकारियों पर महाभियोग चलाने की शक्ति रखती है किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट को इतने विस्तृत अधिकार नहीं हैं।

(4) नियुक्ति सम्बन्धी अधिकारों में अन्तर—अमेरिका का राष्ट्रपति जिन व्यक्तियों को राजदूत, सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश, मन्त्री और अन्य संघीय पदों

पर नियुक्त करता है।, सीनेट उन व्यक्तियों की स्वीकृति प्रदान करती है। किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट इन अधिकारों से वंचित है।

(5) वैदेशिक मामलों की शक्ति में अन्तर—राष्ट्रपति द्वारा की गई संधियों की स्वीकृति अमेरिकन सीनेट प्रदान करती है किन्तु आस्ट्रेलिया में यह व्यवस्था नहीं है।

(6) समितियों के निर्माण में अन्तर—अमेरिका की सीनेट में समितियों का भी निर्माण किया जाता है किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट में समितियों की कोई भी विशेष व्यवस्था नहीं है। सभी महत्वपूर्ण समितियां प्रतिनिधि सदन की होती हैं।

(7) प्रतिनिधि सदन पर नियन्त्रण में अन्तर—आस्ट्रेलिया की सीनेट प्रतिनिधि सदन के कार्यों में विलम्ब मात्र कर सकती है, वह उनको रोक नहीं सकती। अतएव आस्ट्रेलिया का सीनेट अत्यन्त निर्बल है जबकि अमेरिका का सीनेट प्रत्येक क्षेत्र में शक्तिशाली है, यहां तक कि कोई भी वित्त-विधेयक उसकी अनुमति के विना पारित नहीं किया जा सकता।

आस्ट्रेलिया और कनाडा की सीनेट

आस्ट्रेलिया और कनाडा की सीनेट की तुलना, संगठन और अधिकार की दृष्टि से निम्नलिखित रूप में की जा सकती है :

संगठन की दृष्टि से तुलना—

(1) सदस्यों की संख्या में अन्तर—कनाडा में सीनेट सदस्य संख्या 102 है और आस्ट्रेलिया में कुल 60 है।

(2) सदस्यों की नियुक्ति प्रणाली में अन्तर—कनाडा में सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति मन्त्रि-परिषद् की सिफारिश पर गवर्नर जनरल द्वारा जन्म भर के लिये की जाती है किन्तु आस्ट्रेलिया में सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन उपराज्यों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है और उसका आधा भाग प्रति तीसरे वर्ष अवकाश प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक सीनेट की सदस्यता अधिक से अधिक केवल 6 वर्ष रखी गई है।

(3) प्रकृति में अन्तर—कनाडा का सीनेट एक मनोनीति सदन है किन्तु आस्ट्रेलिया का सीनेट एक निर्वाचित सदन है।

(4) सदस्यता के प्रतिबन्ध में अन्तर—कनाडा में केवल वही व्यक्ति सीनेट का सदस्य मनोनीत किया जाता है जिसने सत्तारूढ़ दल की पूर्वकाल में कोई विशेष सेवा की हो। किन्तु आस्ट्रेलिया में कोई भी व्यक्ति जो प्रतिनिध सदन की सदस्यता की योग्यता रखता है सीनेट के चुनाव में भाग ले सकता है।

(5) अध्यक्ष के चुनाव की प्रणाली में भेद—कनाडा की सीनेट का अध्यक्ष गवर्नर जनरल द्वारा प्रधान मन्त्री की सलाह पर नियुक्त किया जाता है किन्तु आस्ट्रेलिया में सीनेट के सदस्य अपने आप अपना अध्यक्ष चुनते हैं।

अधिकारों की दृष्टि से तुलना—कनाडा और आस्ट्रेलिया की सीनेटों में अधिकारों की दृष्टि से तुलना अग्रलिखित ढंग से की जाती है :

(1) विधायनी अधिकारों में समानता—दोनों ही देशों में विधायनी अधिकार समान हैं। आस्ट्रेलिया की सीनेट की भांति कनाडा के सीनेट को भी वित्त-विधेयक प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं है।

(2) सदनों में विघटन प्रणाली की भिन्नता—आस्ट्रेलिया में दोनों सदनों में मतभेद होने पर गवर्नर जनरल दोनों सदनों को विघटित घोषित कर देता है किन्तु कनाडा में सन्देश द्वारा समझौता करने की व्यवस्था की गई है।

(3) विशेष सदस्यों की नियुक्ति की व्यवस्था में विभिन्नता—कनाडा में यदि दोनों सदनों में भारी मतभेद हो जाय और काम रुक जाय तो गवर्नर जनरल राजा या रानी की ओर से चार से लेकर आठ तक नये सदस्य सीनेट में नियुक्त कर सकता है जिससे विरोध की व्यवस्था मिट जाय और कार्यवाही चल सके। किन्तु आस्ट्रेलिया में यह व्यवस्था नहीं पाई जाती है।

(4) राज्यों के प्रतिनिधित्व में विभिन्नता—कनाडा की सीनेट में प्रान्तों को समान सदस्य भेजने का अधिकार नहीं है। किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट में सभी प्रान्तों को बराबर प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है।

(5) निर्माण में भेद—कनाडा की सीनेट का निर्माण संघीय सिद्धान्तों पर नहीं हुआ किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट के निर्माण में संघीय सिद्धान्तों का अनुकरण किया गया है।

(6) शक्ति में असमानता—कनाडा की सीनेट को न वित्तीय अधिकार है और न मन्त्रि-परिषद ही उसके प्रति उत्तरदायित्व रखता है। इस प्रकार कनाडा की सीनेट आस्टेलिया की सीनेट की अपेक्षा अधिक शक्तिहीन है।

आस्ट्रेलिया की सीनेट तथा ब्रिटेन की लार्डस सभा रचना की दृष्टि से तुलना—

(1) सदस्यों की अवधि में अन्तर—ब्रिटेन का हाउस आफ लार्डस वंशानुगत सिद्धान्त पर आधारित है किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट के सदस्य 6 वर्ष के लिये चुने जाते हैं।

(2) निर्वाचन प्रणाली में अन्तर—आस्ट्रेलिया की सीनेट का निर्वाचन प्रत्यक्ष रीति से होता है इसीलिये आस्ट्रेलिया की सीनेट इंगलैंड की लार्ड सभा की अपेक्षा अधिक प्रजातन्त्रात्मक है।

(3) सदस्यों की योग्यता में भिन्नता—लार्ड सभा की सदस्या केवल कुलीन वर्ग के लोगों को ही प्राप्त होती है जबकि आस्ट्रेलिया की सीनेट की सदस्यता के लिये साधारण व्यक्ति भी खड़े हो सकते हैं।

(4) सदस्यों के विभाजन का भेद—लार्ड सभा के सदस्यों को कुलीनता के हिसाब से छः भागों में विभाजित किया जाता है किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट के सभी सदस्य प्रान्तों के प्रतिनिधि हैं, उनका विभाजन श्रेणी या वर्ग के आधार पर नहीं किया जाता है।

(5) **वेतन व भत्ते में अन्तर**—आस्ट्रेलिया के सीनेट के प्रत्येक सदस्य को प्रतिमास 100 पौंड भत्ते के रूप में मिलता है किन्तु इग्लैंड की लार्ड सभा के सदस्य को किसी भी प्रकार का वेतन नहीं मिलता है

(6) **सदस्यता की पदच्युति में अन्तर**—यदि सीनेट का कोई सदस्य निरन्तर दो अधिवेशनों में अनुपस्थित रहता है तो उसको सदस्यता से वंचित कर दिया जाता है किन्तु ब्रिटेन की लार्ड सभा में सदस्यों के लिये ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है।

(7) **सदस्यों के पद में अन्तर**—एक बार हाउस आफ लार्ड्स का सदस्य बन जाने पर व्यक्ति जीवन पर्यन्त उसका सदस्य बना रहता है। पिता की मृत्यु पर पुत्र उसका स्थान ग्रहण कर लेता है किन्तु आस्ट्रेलिया की सीनेट में एक व्यक्ति केवल छः वर्ष के लिये चुना जाता है और उसका पद वंशानुगत भी नहीं होता है।

(8) **सदस्यों पर प्रतिबन्ध में अन्तर**—जो व्यक्ति हाउस आफ लार्ड्स का सदस्य हो जाता है वह फिर कभी हाउस आफ कॉमन्स का सदस्य नहीं बनता किन्तु आस्ट्रेलिया में सीनेट के सदस्य पर इस प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है।

अधिकारों की दृष्टि से तुलना—

(1) **सदस्यों की पदवी में असमानता**—लार्ड्स सभा के कुछ सदस्य विधि लार्डस कहलाते हैं, जिनको कुछ न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं किन्तु आस्ट्रेलिया के सीनेट के सदस्यों को इस प्रकार के अधिकार नहीं हैं।

(2) **विधायनी अधिकारों में समानता**—आस्ट्रेलिया के सीनेट तथा इंगलैंड की लार्ड सभा के अधिाकर समान ही हैं। इनके प्रस्ताव प्रभावशाली नहीं होते है। दोनों ही सदन किसी प्रस्ताव पर बहस कर सकते हैं, विचार प्रकट कर सकते हैं, किसी भी प्रस्ताव के पारित होने में देरी कर सकते हैं, किन्तु वह उसे पारित होने से रोक नहीं सकते।

निष्कर्ष (Conclusion)

आस्ट्रेलिया की सीनेट महत्वहीन—शक्ति की दृष्टि से आस्ट्रेलिया की सीनेट के विषय में यह कहा जाता है कि इसका कोई भी विशेष कार्य नहीं है। अमेरिका की सीनेट की भाँति नियुक्ति व विदेशी नीति के निर्माण कार्य आदि में इसका कोई भी हाथ नहीं होता है। इसका प्रजातन्त्र की दृष्टि से भी विशेष महत्व नहीं है।

प्रश्न 7—आस्ट्रेलिया में प्रतिनिधि सदन के संगठन तथा कार्यों का वर्णन कीजिये।

Describe the composition and function of House of Representative in Australia.

प्रतिनिधि सदन
(House of Representatives)

संगठन (Composition)—

(1) प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की संख्या सन् 1948 ई० के अधिनियम के अनुसार 123 है।

(2) यह संख्या उपराज्यों की जनसंख्या के आधार पर निश्चित की गई है।

(3) इस संख्या के निर्धारित करने में ऐसा विचार किया जाता है कि प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की संख्या सीनेट के सदस्यों की संख्या का दो गुना होनी चाहिये।

(4) इस सदन में सदस्यों की संख्या इसलिये भी कम रखने का प्रस्ताव रखा जाता है कि सभी समस्याओं का सरलतापूर्वक शीघ्र हल हो सके। इसी दृष्टिकोण से जनसंख्या बढ़ने पर भी इस सदन के सदस्यों की संख्या में वृद्धि का प्रश्न कभी भी सामने नहीं आया।

(5) इस समय इस सदन के सदस्यों की संख्या का विभाजन राज्यों के अनुपात से निम्नलिखित ढंग से किया गया है :

उपराज्य का नाम	सदस्य संख्या
न्यू साउथ वेल्स	47
विक्टोरिया	33
क्वीन्स लैंड	18
साउथ आस्ट्रेलिया	10
वैस्टर्न आस्ट्रेलिया	8
टस्मानिया	5
नार्दन टैरीटोरी	1
कैपिटल टैरीटोरी	1
	योग 123

मतदाताओं की योग्यता (Pualification of Voters) :

(1) प्रत्येक मतदाता आस्ट्रेलिया का कम से कम 5 वर्ष से नागरिक हो और कम से कम तीन वर्ष से आस्ट्रेलिया में निवास कर रहा हो।

(2) उसकी आयु 21 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये।

(3) उक्त योग्यताओं वाला पुरुष अथवा स्त्री दोनों ही सदन के लिये मतदाता हो सकते हैं।

अवधि (Tenure)—प्रतिनिधि सदन आस्ट्रेलिया का निम्न सदन है, इस की अवधि तीन वर्ष है। किन्तु दोनों सदनों के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाने पर गवर्नर जनरल इस सदन को इस अवधि से पूर्व भी विघटित कर सकता है।

सदस्यों की अयोग्यता (Disqualification of Members)—अग्रलिखित दशाओं में व्यक्ति सदन की सदस्यता से वंचित रह जाता है—

(1) कोई भी सदस्य एक ही साथ दोनों सदनों का सदस्य नहीं रह सकता। यदि वह सीनेट का सदस्य है तो प्रतिनिधि सदन का सदस्य नहीं रह सकता है।

(2) यदि कोई सदस्य किसी विदेशी शक्ति का भक्त बन जाये।

(3) यदि सदस्य दीवालिया हो जाये।

(4) यदि वह किसी घोर अपराध का दोषी है।

सदस्यों की सुविधायें (Privileges of the Members)—

(1) सदन के प्रत्येक सदस्य को प्रतिमास 1000 पौंड भत्ते के रूप में मिलता है।

(2) जब तक वह सदस्य बना रहता है तब तक वह सदस्यता के साधारण अधिकार स्वतन्त्रता और सुविधाओं का उपभोग करता है।

सदन का स्पीकर तथा उसके कार्य (Speaker and his fumctions) :

(1) प्रतिनिधि सदन के सदस्य अपना एक अध्यक्ष चुनते हैं जिसको स्पीकर कहते हैं। वह अपने सदन के सदस्यों का संरक्षक होता है।

(2) वह अध्यक्ष इग्लैंड के समान और अमेरिका के विपरीत किसी दल विशेष का सदस्य नहीं होता है।

(3) तर्क के समय निर्णय देना, वक्ताओं का काम एवं समय निर्धारित करना और अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना आदि इस स्पीकर के कार्य हैं। इस प्रकार सदन से सम्बन्धित सभी कार्यवाहियों का उत्तरदायित्व सदन के स्पीकर पर ही है।

प्रतिनिधि सदन की शक्तियां (Powers of the House)

(1) **वित्तीय मामलों में विशेष अधिकार**—यद्यपि संसद के दोनों सदनों का समान रूप से अधिकार है किन्तु प्रतिनिधि सदन को वित्तीय मामलों में विशेष अधिकार प्राप्त है। कानून के अनुसार राजस्व सम्बन्धी, वित्त सम्बन्धी कोई भी विधेयक सीनेट में प्रारम्भ नहीं किया जा सकता। वह केवल प्रतिनिधि सदन में ही प्रस्तावित किया जा सकता है।

(2) **विधि निर्माण का केन्द्र बिन्दु**—साथ ही साथ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सीनेट किसी भी प्रकार का कोई ऐसा विधेयक प्रस्तावित या संशोधित नहीं करेगी जो जनता पर भार बनकर सामने आये। इस प्रकार प्रतिनिधि सदन ही विधि निर्माण का केन्द्र बिन्दु है।

(3) **अनुचित कार्यवाहियों पर रोक**—सदन की कार्यवाहियों को सफलता, सरलता एवं अनुशासन पूर्ण बनाने के लिये अनेक कानून बने हुए हैं। सदन के स्पीकर को अधिकार हैं कि वह विरोधी दल की अनुचित कार्यवाहियों को बन्द कर सकता है।

(4) समितियां द्वारा समस्याओं का हल—सदन में अनेक समितियाँ बनी हुई हैं जिनमें लोक-निर्माण-कार्य, लोक लेखा, समाचार प्रसार, औद्योगिक विकास आदि से सम्बन्धित अनेक समितियाँ प्रमुख समितियाँ हैं। किन्हीं विशेष अवसरों पर दोनों सदनों की समितियाँ सामूहिक रुप से बैठकर समस्याओं का हल निकाल सकती हैं। विरोधी दल भी प्रतिनिधि सदन में सन्तोषजनक काम कर रहा है। यह अवस्था एक अच्छे प्रजातन्त्रात्मक शासन की निशानी है।

(5) प्रतिनिधि सदन की सार्वभौमिकता (Sovereignty of the House of Representatives)—आस्ट्रेलिया में प्रतिनिधि सदन की सार्वभौमिकता इंगलैण्ड के हाउस आफ कामन्स की भाँति नहीं है जहाँ पर पार्लियामेंट एक पुरुष को एक स्त्री और स्त्री को पुरुष बनाने के अतिरिक्त सब कुछ कर सकती है। आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधि सदन को अनेक लिखित कानूनों का पालन करना पड़ता है। हाईकोर्ट द्वारा संविधान की संरक्षता की जाती है। इस प्रकार आस्ट्रेलिया में संविधान की सर्वोच्चता है, प्रतिनिधि सदन की नहीं।

प्रश्न 8—आस्ट्रेलिया में विधि निर्माण प्रक्रिया का वर्णन कीजिये और कनाडा के विधि निर्माण तरीके से उसकी तुलना कीजिये।

Describe the Law Making Procedure in Australia and compare it with that of Canada.

आस्ट्रेलिया में विधि-निर्माण प्रक्रिया

(Law-Making Procedure in Australia)

(1) मामलों में समानाधिकार—आस्ट्रेलिया के दोनों सदनों को वित्तीय मामलों के अतिरिक्त समान अधिकार प्राप्त हैं।

(2) प्रतिनिधि सदन को विशेष अधिकार—किसी भी सदन में विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु वित्त विधेयक प्रतिनिधि सदन में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। वित्तीय विषयों में सीनेट संशोधन नहीं कर सकती है।

(3) गर्वनर जनरल के विशेषाधिकार—दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत विधेयक गवर्नर जनरल की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त करके वह विधेयक अधिनियम बन जाता है। गवर्नर जनरल चाहे तो अपनी सिफारिशों के साथ विधेयक को संसद के पास पुनः विचार के लिये भेज सकता है। गर्वनर जनरल को यह भी आधकार है कि वह विधेयक को राजा या रानी की स्वीकृति के लिये अपने पास भी रख सकता है।

दोनों सदनों में मतभेद तथा उसकी समाप्ति (Conflict between the two Houses and its Procedure of Removal)—यद्यपि दोनों सदनों को बराबर अधिकार प्राप्त हैं किन्तु फिर भी अग्रलिखित परिस्थितियों में दोनों सदनों के बीच मतभेद होने की सम्भावना रहती है :

(1) यदि निम्न सदन किसी विधेयक को स्वीकृत कर दे और सीनेट उसे स्वीकार न करे।

(2) यदि निम्न सदन द्वारा स्वीकृत विधेयक को सीनेट ऐसे संशोधनों द्वारा स्वीकार करे जो निम्न सदन को स्वीकार न हों।

(3) यदि निम्न सदन तीन महीने बाद सीनेट द्वारा लौटाये हुये उसी विधेयक को सीनेट द्वारा सुझाये हुये संशोधनों सहित अथवा बिना संशोधनों सहित स्वीकृत या ऐसे संशोधनों सहित स्वीकार करे जो निम्न सदन को स्वीकृत न हों।

मतभेद दूर करने के उपाय (Remedies fer removal of conflicts)—संविधान की धारा 57 में मतभेद का समाधान करने की अनेक रीतियाँ दी गई हैं। ये कुछ निम्नलिखित हैं :

(अ) सदनों का विघटन—यदि निम्न सदन किसी विधेयक को स्वीकृत कर दे और सीनेट उसे स्वीकार न करे या ऐसे संशोधनों सहित स्वीकार करे जो निम्न सदन को स्वीकृत न हों और यदि वह सदन तीन महीने बाद उसी अधिवेशन में या दूसरे अधिवेशन में उसी विधेयक को सीनेट द्वारा किये हुये.या सुझाये हुये संशोधन सहित या उसके बिना पुनः स्वीकृत कर दे और सीनेट उसे रद्द कर दे या स्वीकार न करे या ऐसे संशोधनों सहित स्वीकार करे जो निम्न सदन को स्वीकार न हों, तो ऐसी दशा में दोनों सदनों में उत्पन्न मतभेद को दूर करने का एकमात्र उपाय गवर्नर जनरल के हाथों में यह है कि वह सीनेट तथा निम्न सदन दोनों को ही एक साथ विघटित कर दे किन्तु इस प्रकार का विघटन निम्न सदन की अवधि की साधारण समाप्ति के छः मास पूर्व वाले समय में ही हो सकता है।

(ब) सदनों की संयुक्त बैठक (Joint Meeting)—यदि उक्त प्रकार के विघटन और नये निर्वाचन के बाद निम्न सदन उस प्रस्तावित विधेयक को सीनेट के सुझाये हुये या सीनेट द्वारा स्वीकृत संशोधनों के साथ या बिना उनके स्वीकृत कर दे और सीनेट उसे स्वीकार न करे या रद्द कर दे, या ऐसे संशोधनों से स्वीकृत कर दे जो निम्न सदन को मान्य न हों तो सभी दशाओं में गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है। इसमें दोनों सदनों के सदस्य मिलकर मतदान करते हैं और दोनों सदनों की कुल संख्या के बहुमत से जो संशोधन स्वीकृत हो जाते हैं वे स्वीकृत समझे जाते हैं।

कनाडा तथा आस्ट्रेलिया के विधि-निर्माण की तुलना—दोनों देशों के विधि-निर्माण कार्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं :

समानतायें—दोनों देशों की विधि निर्माण की प्रक्रिया में निम्नलिखित समानतायें हैं :

(1) सदनों के समान अधिकार—दोनों देशों में सरकारी विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। कनाडा में हाउस आफ कामन्स तथा आस्ट्रेलिया में प्रतिनिधि सदन निम्न सदन है।

(2) समिति व्यवस्था—दोनों देशों के सदनों में समिति व्यवस्था है।

(3) समान प्रक्रिया—दोनों देशों की विधि निर्माण प्रक्रिया में निम्नलिखित असमानतायें हैं :

(1) कनाडा में यदि सीनेट विधेयक में कोई संशोधन करना चाहता है तो विधेयक सदन के पास लौट आता है, यदि सदन को संशोधन स्वीकार न हो तो सन्देश द्वारा समझौता हो जाता है किन्तु आस्ट्रेलिया में गवर्नर जनरल दोनों ही सदनों को विघटित कर सकता है।

(2) कनाडा मे दोनों सदनों में मतभेद रोकने का एक तरीका यह भी है कि गवर्नर जनरल राजा या रानी की ओर से चार से लेकर आठ तक नये सदस्य सीनेट में भर्ती कर लेता है और ससद के कार्यों को इच्छानुसार सरलतापूर्वक बिना मतभेद के चला सकता है किन्तु आस्ट्रेलिया में गवर्नर जनरल को इस प्रकार की भर्ती करने का अधिकार नहीं है। वहां पर गवर्नर जनरल या तो दोनों सदनों को विघटित कर देता है या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाकर बहुमत के आधार पर दोनों सदनों का समझौता कराकर विधेयक स्वीकृत करा देता है।

प्रश्न 9—आस्ट्रेलिया में संविधान के संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये और उसकी तुलना कनाडा के संविधान में संशोधन की प्रक्रिया से कीजिये—

Describe the procedure of Amendment of constitution in Australia and compare it with the system of constitutional amendment in Canada

आस्ट्रेलिया के संघीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।

संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
(Procedure of constitutional Amendment)

जहां कहीं भी किसी देश में संघ राज्य की स्थापना की जाती है वहां सदैव यह भय बना रहता है कि संघ राज्य में सम्मिलित होने वाले राज्यों की स्वतन्त्रता समाप्त हो सकती है। किन्तु आस्ट्रेलिया का संविधान लिखित संविधान है। इस संविधान में जनमत को एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। संविधान में जो भी संशोधन होगा वह जनमत के आधार पर ही सम्भव होगा। आस्ट्रेलिया में संविधान के सशोधन की प्रक्रिया निम्नलिखित प्रकार से की जाती है :

(अ) संसद द्वारा प्रस्ताव की स्वीकृति (Acceptance by Parliament)—संविधान के संशोधन का कोई भी प्रस्ताव मान्य नहीं होगा यदि वह संसद के दोनों सदनों के बहुमत द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव सबसे पहले संसद के दोनों सदनों के बहुमत द्वारा स्वीकार किया जाता है।

(ब) जनता द्वारा प्रमाण पत्र (Certification of the electorate Approval)—संसद के दोनों सदनों द्वारा संशोधन का प्रस्ताव स्वीकृत होने के

दो माह बाद, किन्तु 6 मास से अधिक नहीं, प्रस्ताव उन लोगों द्वारा प्रमाण-पत्र के लिये रख दिया जाता है जो प्रतिनिधि सदन के लिये मतदाता की योग्यता रखते हैं।

(स) राज्यों के निर्वाचन मण्डलों का मत (Approval of the electors of states)—आस्ट्रेलिया में संशोधन का एक तरीका और भी अपनाया जाता है। यदि प्रस्तावित सशोधन एक सदन में बहुमत से स्वीकृत हो गया परन्तु द्वितीय सदन उसे स्वीकार न करे अथवा रद्द कर दे अथवा ऐसे परिवर्तन करके स्वीकृत करे जो प्रथम सदन को स्वीकार न हों और यदि तीन माम व्यतीत हो जाने पर प्रथम सदन उस प्रस्तावित संशोधन को फिर बहुमत से स्वीकृत कर दे और यदि द्वितीय सदन इस वार भी निम्न सदन की इच्छानुसार स्वीकृत न करे तो गवर्नर जनरल निम्न सदन से प्रस्तावित संशोधन बिना परिवर्तनों के या दोनों सदनों द्वारा मान्य परिवर्तनों के साथ राज्यों के निर्वाचकों के सम्मुख रख सकता है।

(द) गवर्नर जनरल की स्वीकृति (Governor General's assent)—यदि राज्यों के निर्वाचक बहुमत से संशोधन के पक्ष में मत प्रदान करें तो संशोधन के प्रस्ताव को मान लिया जाता है। फिर उसे गवर्नर जनरल के सम्मुख राजा व रानी की ओर से स्वीकृति कराने के लिये पेश किया जाता है। गवर्नर जनरल राजा व रानी की ओर से उस पर स्वीकृति प्रदान कर देता है और संविधान में उसी के अनुसार संशोधन कर दिया जाता है।

कनाडा में संशोधन प्रक्रिया
(Procedure of Amendment in Canda)

सन् 1949 ई० से पूर्व—अंग्रेजी काल में उत्तरी अमेरिका के अन्तर्गत संविधान में संशोधन करने का अधिकार संघ संसद और प्रान्तीय विधान मण्डल दोनों में से किसी को भी नहीं दिया गया था। इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट कर दिया गया था कि इंगलैण्ड की संसद ही संविधान में संशोधन कर सकती है। 1949 ई० तक इंग्लैण्ड की संसद इसी अधिनियम के अनुसार कनाडा के संविधान में समय-समय पर संशोधन करती रही किन्तु वहां इस सम्बन्ध में कनाडा की संसद व विभिन्न प्रान्तीय विधान-मण्डलों में प्रकट किये गये कनाडा निवासियों के विचारों का समुचित आदर किया जाता था। सन् 1949 ई० में इंग्लैण्ड की संसद ने कनाडा के संघीय मामलों से सम्बन्धित संविधान में संशोधन करने का अधिकार कनाडा की संसद को दे दिया है। वैसे ब्रिटिश संसद कनाडा के लिये कैसा भी संवैधानिक कानून बना सकती है किन्तु व्यवहार में इसका प्रयोग केवल ऐसे संशोधन कराने के लिये ही होगा जो कि कनाडा की पार्लियामेंट नहीं कर सकती है।

आधुनिक प्रक्रिया—इस समय कनाडा के लिये संवैधानिक कानूनों में ब्रिटिश पार्लियामेंट, कनाडा की पार्लियामेंट तथा प्रान्तीय विधान-मण्डलों द्वारा सशोधन किया जा सकता है। कनाडा के संविधान में भिन्न-भिन्न अनुच्छेद दिये गये हैं जिनमें संशोधन की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न हैं। ये अनुच्छेद इस प्रकार हैं :

(अ) अनुच्छेद 46, 41, 47, 130 और 131 में स्पष्ट है कि उनके सम्बन्ध में कनाडा की संसद को संशोधन कराने का अधिकार है।

(ब) अनुच्छेद 78, 83, 133 तथा 135 में स्पष्ट लिखा गया है कि "जब तक विधान-मण्डल उपयुक्त व्यवस्था न करे" इससे पता चलता है कि इन अनुच्छेदों से सम्बन्धित संशोधन विधान-मण्डलों द्वारा किये जाते हैं।

(स) प्रान्तीय विधान-मण्डलों की शक्तियों. स्कूलों के सम्बन्ध में अल्प संख्यकों के अधिकार, अंग्रेजी व फ्रांसीसी भाषाओं के सम्बन्ध में दिया गया आश्वासन, कनाडा की संसद के सम्बन्ध में यह शर्त कि पार्लियामेंट का सत्र प्रतिवर्ष होगा और कॉमन्स सभा की अवधि पाँच वर्ष होगी आदि विषयों के सम्बन्ध में जो भी संशोधन होगा वह ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा ही किया जायेगा।

कनाडा तथा आस्ट्रेलिया की संशोधन प्रक्रिया की तुलना:—

(1) आस्ट्रेलिया के संविधान की संशोधन प्रक्रिया में जनमत का विशेष महत्व है परन्तु कनाडा के संविधान में ऐसा नहीं है।

(2) आस्ट्रेलिया में संशोधन करने का अधिकार संसद को है परन्तु कनाडा में विभिन्न अनुच्छेदों के संशोधन के लिये विभिन्न शक्तियां हैं।

(3) आस्ट्रेलिया में संविधान सम्बन्धी संशोधन प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होना अनिवार्य है परन्तु आस्ट्रेलिया में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही है।

(4) आस्ट्रेलिया में राज्य के निर्वाचन मन्डलों द्वारा संशोधन का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है। परन्तु कनाडा में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

प्रश्न—10 आस्ट्रेलिया के सुप्रीम कोर्ट की रचना तथा उसके कार्यों का आलोचनात्मक वर्णन करो।

Critically describe the composition and functions of Federal Supreme Court of Australia.

आस्ट्रेलिया का उच्चतम न्यायालय
(Supreme Court of Australia)

संगठन (Composition)

(1) आस्ट्रेलिया में न्यायपालिका सत्ता उच्च न्यायालय में निहित है।

(2) संघ का उच्च न्यायलय सर्वोच्च न्याय–संस्था है।

(3) इसमें एक प्रधान न्यायाधीश और छः अन्य न्यायाधीश होते हैं।

(4) समस्त न्यायाधीशों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है।

(5) वे अपने पद पर सदाचार पर्यन्त आसीन रहते हैं।

न्यायाधीशों की सुरक्षा (Security of Judegs)

(1) न्यायाधीशों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है।

(2) वे अपने पद पर आसीन रहते हुए अपने कार्य करने में स्वतन्त्र हैं।

(3) उनके कार्य-काल में उनके वेतन में कमी नहीं की जा सकती है।

(4) उनको आसानी से उनके पद से नहीं हटाया जा सकता। यदि किसी न्यायाधीश को दुराचार या अयोग्यता के कारण उसके पद से हटाने के लिये एक ही अधिवेशन में दोनों सदन प्रार्थना करें तो गवर्नर जनरल मन्त्रि-परिषद की सलाह से उसे पदच्युत कर सकता है।

उच्चतम न्यायलय की शक्तियां (Powers of the Supereme Court)—आस्ट्रेलिया के उच्चतम न्यायालय को प्रारम्भिक तथा अपीलीय दोनों ही प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं।

(अ) प्रारम्भिक अधिकार (Original Jurisdiction)

(1) विदेशी प्रतिनिधियों के मामले (Cases of the Representatives of foreigen Countiries)—आस्ट्रेलिया के उच्चतम न्यायालय में वे मामले प्रारम्भिक रूप में सामने आते हैं जिनमें विदेशी प्रतिनिधियों का आस्ट्रेलिया की सरकार से मतभेद हो, या आस्ट्रेलिया की सरकार द्वारा की गई किसी सन्धि की समस्या हो।

(2) राज्यों का पारस्परिक मामला (Cases betwen the States)—आस्ट्रेलिया में संघात्मक शासन की स्थापना की गई है। इस शासन में आस्ट्रेलिया के छः उपराज्य सम्मिलित हैं। इन उपराज्यों में सीमा या अधिकार सम्बन्धी बातों पर पास्परिक मनमुटाव होने की सम्भावना बनी रहती है। इस सम्बन्ध में जो भी झगड़े सामने आते हैं उन सबका मुकदमा प्रारम्भ में उच्चतम न्यायालय में ही लाया जाता है।

(3) राज्य तथा संघ सरकार के बीच मामले (Cases between State or States and Federal Court)—कभी कभी संघ सरकार तथा उपराज्यों की सरकारों में भी अधिकारों के प्रश्न पर मनमुटाव हो जाता है और इस विषय को लेकर झगड़े खड़े हो जाते हैं। ऐसे सभी झगड़ों के फैसले प्रारम्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा ही निपटाये जाते हैं।

(4) संविधान सम्बन्धी मामले Cases redarding constitution)—कभी-कभी संवैधानिक प्रश्न को लेकर भी अनेक समस्याओं खड़ी होती हैं। इन सब समस्याओ का समाधान तथा इनसे सम्बन्धित झगडों का फैसला प्रारम्भ में इसी न्यायालय द्वारा किया जाता है।

(5) पुनरावेदन सम्बन्धी मामले (Cases redarding the appeal)—उच्चतम न्यायलय के विरुद्ध अन्तः परिषद की न्याय समिति मे अपील की जा सकती है। वह समिति इग्लैंड में है। किन्तु इस समिति में अपील करने की अनुमति का अधिकार भी इसी न्यायालय को प्राप्त है। अपील करने के लिये उच्चतम न्यायालय से एक प्रमाण-पत्र इस बात का लिया जाता है कि इस मामले

की अपील की जा सकती है, इस प्रमाण पत्र की प्राप्ति के बाद ही कोई व्यक्ति राजा या रानी की अन्तः परिषद की न्याय-समिति में अपील कर सकता है। इस प्रकार पुनरावेदन की अनुमति प्रदान करने का अधिकार भी उच्चतम न्यायालय को ही है।

(ब) पुर्नविचार अथवा अपील सम्बन्धी अधिकार (Appellato Jurisdiction)—

आस्ट्रेलिया का उच्चतम न्यायालय संविधान का संरक्षक माना जाता हैं। प्रारम्भिक मामलों के अतिरिक्त इस न्यायालय को पुर्नविचार के अधिकार भी प्राप्त हैं।

(1) न्यायाधीशों के निर्णयों के विरुद्ध अपील (Appeal Against the decisions of Justice in Justices)—जो न्यायाधीशो उच्चतम न्यायालय के क्षेत्र अधिकार में कार्य करते हैं उनके निर्णयों के विरूद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है।

(2) निम्न श्रेणी के न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील (Cases coming from the inferior courts)–निम्न श्रेणी के न्यायालयों की अपील इसी न्यायालय में सुनी जाती है।

(3) राज्यों के उच्च न्यायालय के निर्णयों की अपील (Cases from the High Court of States)—प्रत्येक उपराज्य का अपना एक उच्च न्यायालय है। उसमें जो भी निर्णय किये जाते हैं उनके विरुद्ध यदि कोई अपील की जाती है तो उसकी सुनवाई भी आस्ट्रेलिया में संघीय न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) द्वारा की जाती है।

उच्चतम न्यायालय की विशेषता अथवा उसका महत्व (Importancs of Federal court)—आस्ट्रेलिया में उच्चतम न्यायालय के महत्व के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्मरणीय हैं।

(1) संविधान का संरक्षक—यह न्यायालय संविधान का संरक्षक है। संसद द्वारा बनाया गया कोई भी अधिनियम जो संविधान की अवहेलना करे इस न्यायालय द्वारा अवैध घोषित कर दिया जाएगा। इस प्रकार यह न्यायालय संसद के अधिनियमों की व्याख्या करके संविधान की रक्षा करता है।

(2) विधि निमार्ण में सहायक:—ससद के द्वारा बनाये गये अधिनियमों को वैध या अवैध घोषित करने की शक्ति रखने के नाते यह न्यायालय एक प्रकार से विधि-निर्माण का कार्य करता है।

(3) अपने विरुद्ध की जाने वाली अपील की रोक—यह अपने निर्णयों के विरूद्ध अपील करने वाले व्यक्तियों को अन्तः परिषद की न्याय समिति के सम्मुख जाने से रोक सकती है क्यों कि अन्तः परिषद की न्याय समिति (Judicial committee of His Majesty Privy Council) किसी भी पुर्नविवचार सम्बन्धी प्रार्थना-

पत्र को उच्चतम न्यायालय के प्रमाण-पत्र बिना स्वीकार नहीं कर सकती है। इस दृष्टि से इस न्यायालय को एक महत्वपूर्ण स्थान मिल चुका है।

(4) संविधान सम्बन्धी संशोधन का अधिकार—सन 1907 ई० के संशोधन अधिनियम के अनुसार राज्यों के उच्च न्यायालयों को संविधान से सम्बन्धित संशोधन के अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। अब संविधान से सम्बन्धित संशोधन के मामलों पर विचार करने का पूरा-पूरा अधिकार उच्चतम न्यायालय को ही है। इससे इस न्यायालय की शक्ति और भी बढ गई है।

(5) अनेक समस्याओं का समाधान—यह न्यायालय उपराज्यों के आपसी झगडों, संविधान सम्बन्धी समस्याओं तथा संघ और राज्यों के बीच के झगडों को निपटाता है। इस प्रकार देश की अनेक समस्याओं का समाधान उच्चतम न्यायालय प्रस्तुत करता है।

उक्त बातों में ध्यान रखते हुए सर जान काकवर्न ने कहा। "कामनवल्थबिल के लिखित शब्द एक ढांचे मात्र हैं। इनमें प्राण डालने का कार्य तो उच्चन्यायालय के न्याधीशों द्वारा अधिनियमों की व्याख्या करके किया जाता है।"

आलोचना (Criticism)

आस्ट्रेलिया में सर्वोच्च न्यायलय के विषय में केवल एक यही बात कहीं जाती है कि न्यायालय वयोवृद्ध न्यायाधीशों का एक स्थान यहाँ पर नयी विचारधारा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है। प्राचीन विचारों के पक्षपाती होते हैं, प्राय. किसी राजनीति से ही इस स्थान को प्राप्त करते हैं।

क्रिस्प ने कहा था, "प्रत्येक साधारण व्यक्ति प्राचीन कालीन राजनीति तथा न्यायाधीशों के वर्तमान धार्मिक विचारों की संधि की तलाश करता है।"

प्रश्न 11—आस्ट्रेलिया में राजनीतिक दलों के विकास का वर्णन कीजिए।
Describe the growth of Partis in Australia.
आस्ट्रेलिया में दलीय व्यवस्था का परीक्षण कीजिये।

आस्ट्रेलिया में राजनीतिक दलों का विकास
(Growth of Political Parties in Australia)

आस्ट्रेलिया में राजनीतिक दलबन्दी की भावना का विकास निम्न रूप में दर्शित किया जा सकता है :

(1) फ्रीट्रेडर तथा प्रोटेक्शनिष्ट (Free Traders and Prot ctionists)—आस्ट्रेयिा में आर्थिक प्रश्न को लेकर राजनीतिक दलबन्दी प्रारम्भ हुई। इस विषय पर आस्ट्रेलिया में दो दल हो गये।

(अ) प्रथम दल—फ्रीट्रेडर के नाम से पुकारा गया। इस मत के समर्थकों स्वतन्त्र व्यापार को प्रोत्साहन दिया। न्यू साउथवेल्स में इस दल का प्रचार हुआ।

(ब) द्वितीय दल प्रोटेक्शनिष्ट—इस दल के समर्थकों ने सुरक्षा पर जोर दिया और "विक्टोरिया', प्रदेश में इस दल को समर्थन मिला।

लेबर पार्टी(Labour Party)

(1) 19 वीं शताब्दी के अन्त में आस्ट्रेलिया में एक अन्य राजनीतिक दल ने जन्म लिया ;

(2) इस दल के समर्थकों ने कृषकों के हितों का समर्थन किया।

(3) इस दल ने कृषक मजदूरों अथवा कृषकों को सुविधा देने के पक्ष में युक्तियां रखीं और उनको अच्छा वेतन देने की सिफारिश की तथा उनके लिये काम करने के केवल आठ घन्टे निश्चित करने की सिफारिश की।

(4) इस दल की बातों से जनता बड़ी प्रभावित हुई और इससे इस दल की सदस्य संख्या बड़े वेग से बढ़ने लगी।

लेबर पार्टी की लोक प्रियता—लेबर दल के नेताओं ने जनता को सामाजिक बुराइयों से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया। इसलिये इस दल के सदस्यों की अधिक से अधिक संख्या हो गई। सघीय संसद के प्रथम चुनाव में ही इस दल ने 24 सीट प्राप्त कर लीं। आस्ट्रेलिया में उस समय "फ्रीट्रेडर" तथा "प्रोटेक्शनिष्ट" को बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। अतएव सम्पूर्ण देश में लेबर पार्टी का ही प्रभाव जम गया। लेबर पार्टी के इस प्रभाव को रोकने के लिये फ्रीट्रेडर्स तथा प्रोटेक्शनिष्ट ने एक मिली-जुली सरकार बनाने का निश्चय किया।

(3) **नेशनल पार्टी (National Party)**– 1910 ई० के चुनाव में लेबर पार्टी को बहुमत प्राप्त हुआ। प्रतिनिधि सदनों में उसी के सदस्यों का बहुमत रहा। इस प्रकार आस्ट्रेलिया में लेबर पार्टी ही प्रभावशाली रही। इस विजय के परिणाम-स्वरूप आस्ट्रेलिया में अन्य दलों, फ्रीट्रेडर्स तथा प्रोटेक्शनिष्टों का प्रभाव कम हो गया और तीनों दलों के झगड़ों की समाप्ति हो गई। लेबर दल के प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही फ्रीट्रेडर्स तथा प्रोटेक्शनिष्टों ने अपने को एक दूसरे में विलीन कर लिया और दोनों दलों के सम्मिश्रण में एक तृतीय दल का निर्माण किया गया जिसको आस्ट्रेलिया में नैशनल पार्टी के नाम से पुकारा जाता है।

(4) **किसान पार्टी (The Farmers)**—आस्ट्रेलिया में राजनीतिक दलों की दौड़ होने लगी। नये-नये विचारों के प्रभाव से समाज के विभिन्न वर्ग अपना-२ संगठन बनाने की बातें सोचने लगे। कृषक वर्ग में भी नवीन विचारधारा का प्रवाह हुआ। किसानों ने अपने धर्म के हितों की रक्षार्थ एक नये दल का निर्माण किया जिसको कृषक दल कह कर पुकारा जाता है। इस दल में लेबर दल के भी कुछ सदस्य सम्मिलित हो गये। यह दल कृषको के हितों को राष्ट्र का सर्वोपरि विषय मानता है।

(5) यूनाइटिड आस्ट्रेलियन पार्टी (The United Australian Party)—आस्ट्रेलिया की परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल ही "नेशनल पार्टी" ने अपने को ढालने के प्रयत्न किया और अन्त में नेशनल पार्टी ने अपना एक नया नाम रख लिया जिसको यूनाइटिड आस्ट्रेलियन पार्टी कहते हैं। इस नये दल ने लेबर पार्टी के सिद्धान्तों के विरुद्ध अपना संगठन किया और अपने नये कार्य-क्रम बनाये।

उपर्युक्त वर्णन से विदित है कि आस्ट्रेलिया में सर्व प्रथम फ्रीट्रेडर्स तथा प्रोटेक्शनिष्ट दलों ने जन्म लिया। इसके बाद लेबर पार्टी प्रभावशाली हुई। उसके प्रभाव को रोकने के लिये फ्रीट्रेडर्स तथा प्रोटेक्शनिष्ट दोनों ने मिल कर एक नेशनल पार्टी बनाई जिसने कालान्तर में अपना नाम यूनाइटिड आस्ट्रेलियन पार्टी रखा। इसके अतिरिक्त एक पार्टी कृषक वर्ग ने भी बनाई जो अपने को "फारमर्स" (The Farmers) कहते थे। इस प्रकार आस्ट्रेलिया में इस समय "लैबर पार्टी", "फारमर्स" तथा "यूनाइटिड दल" केवल तीन ही राज्यनीतिक दल हैं।

फ्रांस का संविधान
THE CONSTITUTION OF FRANCE

प्रश्न 1—फ्रांस में पाँचवें गणतन्त्र के विकास का वर्णन कीजिये।

Describe the development of the fifth Republic in France.

फ्रांस के पाँचवें गणतन्त्र के संविधान में यह प्रतिबन्ध रखा गया था कि मन्त्रि-परिषद के सदस्य मन्त्री व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं होंगे तथा देश के राष्ट्रपति में सम्पूर्ण राज्य सत्ता से युक्त पर्याप्त शक्ति सन्निहित होगी। ये समन्वित संशोधन फ्रांस के सन् 1958 ई० में स्थापित पंचम गणतन्त्र के संविधान में सम्मिलित किये गये। इस प्रकार की शासन पद्धति अपनाने का प्रधान उद्देश्य वस्तुतः एक सुदृढ़ एवं स्थायित्व रखने वाली सरकार की स्थापना करना था। ऐरन (Aron) नामक एक पाश्चात्य लेखक के शब्दों में, "फ्रांस का यह नवीन संविधान, सार्वजनिक निर्वाचनों पर, न कि फ्रांस की दलीय व्यवस्था पर आधारित एक सुदृढ़ सरकार की स्थापना करने की सक्रिय चेष्टा है।"

फ्रांस का पाँचवाँ गणतन्त्र

फ्रांस के पाँचवें गणतन्त्र के कुछ प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

(1) एक सम्पूर्ण एवं लिखित संविधान—फ्रांस का यह चालीस पृष्ठों में लिखित संविधान पूर्ण रूप से एक लिखित मसविदा है। इसमें प्राक्कथन को छोड़कर 94 अनुच्छेदों अथवा धाराओं में विभाजित कुल 15 अध्याय सम्मिलित किये गये हैं जिनका कि लगभग दो घण्टों के अल्प समय में सुगमता से पाठ किया जा सकता है। पाँचवें गणतन्त्र का संविधान फ्रांस की संसद ने दिनांक 4 अक्टूबर सन् 1958 ई० को पारित किया। राष्ट्र की स्वतन्त्रता एवं एकता को सुदृढ़ करना ही इस संविधान का प्रधान लक्ष्य है। इस संविधान के शासन काल में फ्रांस को पहले तो सन् 1958 ई० में ही और फिर सन् 1963 ई० में दो बार जनता के आन्दोलनों का सामना करना पड़ा है।

(2) संसदात्मक अथवा अध्यक्षात्मक संविधान—यद्यपि फ्रांस के पाँचवें गणतन्त्र का संविधान अपनी संसदीय प्रणाली के लिये प्रसिद्ध है। तथापि, इसमें राष्ट्रपति को भी अत्यन्त ही विस्तृत शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। वह अपने स्थान पर चाहे जो कुछ भी करने को स्वतन्त्र है। वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत फ्रांस का राष्ट्रपति केवल नाम मात्रेण राज्याध्यक्ष ही नहीं रहा है वरन् वह कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष भी है। गणतन्त्रीय एवं संसदीय दो विभिन्न प्रकार की सरकारों

के सिद्धांतों के बीच का मार्ग अपनाने की इस संविधान में यथेष्ट चेष्टा की गई है। इस सम्बन्ध में ऐरन महोदय का कथन इस प्रकार है—

"इसका शासन यथार्थ रूप में संसदात्मक होने की अपेक्षा कानूनी तौर पर ही अधिक संसदात्मक होगा।"

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि सन् 1963 ई० में हुये लोक निर्णय के समय से यहाँ के राष्ट्रपति ने पहले से अधिक विस्तृत शक्तियों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है।

(3) **एकात्मक एवं केन्द्रीयकृत शासन प्रणाली**—फ्रांस के प्रथम गणतन्त्र की स्थापना के समय से देश की सरकार की प्रवृत्ति केन्द्रीयकरण की ओर ही अधिक रही है। यही प्रवृत्ति वर्तमान सरकार में भी विद्यमान है। किसी भारतीय विद्वान् ने लिखा है कि, "पंचम गणतन्त्र के संविधान में पुनः केन्द्रीयकरण की ही प्रवृत्ति को अपनाया गया है जो कि फ्रांस के राजनीतिक एवं संवैधानिक इतिहास का एक प्रधान लक्षण रही है।

(3) **प्राक्कथन एवं फ्रांसीसी राजसत्ता**——फ्रांस के पचम गणतन्त्र का सविधान, सवैधानिक विकास की अन्तिम सीमा है। इसके प्राक्कथन में वे सभी उद्घोषणायें सम्मिलित की गयी हैं जो सन् 1946 ई० तक विश्व के विभिन्न संविधानों द्वारा की गयी थीं। यह संविधान भी फ्रांस के पिछले संविधानों की भाँति स्वतन्त्रता समानता एवं भ्रातृत्व के ही सिद्धान्तों पर आधारित है। इस संविधान में यह प्रत्यक्ष घोषणा की गई है कि फ्रांस एक अविभाज्य प्रजातान्त्रिक सामाजिक लोकतन्त्र है। इसके सभी देशवासी कानून की दृष्टि में एक दूसरे के,समान माने गये हैं। देश की सम्पूर्ण राजसत्ता उसकी जन सामान्य प्रजा में ही सन्निहित है जो कि देश पर अपने विभिन्न प्रतिनिधियों के माध्यम से स्वयं ही शासन करती है। देश के राजनीतिक दलों तथा कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

(5) **उदार निरंकुशवाद**—फ्रांस के पंचम गणतन्त्र ने देश के राष्ट्रपति को प्रत्यक्षतः विस्तृत शक्तियों से सुसज्जित किया है। अस्तु विद्वानों की विचारधारा है कि इसका संविधान लोकतन्त्र के साथ अधिनायकतन्त्रीय एवं सर्वाधिकारीवादी तथ्यों का ही सम्मिश्रण है। किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं है कि देश की सरकार के विभिन्न अगों की शक्तियों को पृथक्-पृथक् स्पष्ट परिभाषित किया गया है। शासनतन्त्र के प्रमुख अर्थात् प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है।

प्रश्न 2—फ्रांस के वर्तमान संविधान की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

Describe the salient features of present constitution of France.

फ्रांस के वर्तमान संविधान की विशेषतायें

(1) संविधान में देश की व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका की शक्तियों के

पृथक्करण का निश्चित उपबन्ध किया गया है। मन्त्रि-परिषद् के सदस्य मन्त्री राष्ट्रीय महासभा अर्थात् संसद के सदस्य नहीं हो सकते। इस दृष्टि से फ्रांस की शासन प्रणाली संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली से मिलती-जुलती है।

(2) फ्रांस में राजनीतिक दलों को अपना कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गयी है, किन्तु उनका राष्ट्रीय प्रभुसत्ता तथा प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों का आदर करना आवश्यक है। संविधान में कम्युनिस्टों को शासन के क्षेत्र से पृथक् रखने के उद्देश्य से ही इस प्रकार का उपबन्ध किया गया है।

(3) संविधान में एक संवैधानिक परिषद् की स्थापना करने के विषय में उपबन्ध रखा गया है. इस परिषद का प्रमुख कार्य यह देखना है कि संसद द्वारा पारित कानूनों तथा संवैधानिक उपबन्धों को वस्तुतः संविधान के अनुसार ही क्रियान्वित किया जाता है अथवा नहीं।

(4) संविधान में एक आर्थिक एवं सामाजिक परिषद तथा एक न्यायपालिका की उच्चतर परिषद की स्थापना का निश्चित उपबन्ध मिलता है। ये परिषद भावार्थ में परामर्शदात्री निकायों के रूप में कार्य करती हैं तथा अपने-अपने क्षेत्राधिकारों में आने वाले कृत्यों एवं दायित्वों के विषय में सरकार को मन्त्रणा देने का कार्य करती हैं।

सन्धियों और समझौतों सम्बन्धी धारायें - संविधान ने फ्रांस के लिए एक ऐसे राष्ट्र समाज की स्थापना करने के विषय में उपबन्ध किया है जिसमें कि विभिन्न राष्ट्रों को समानता एवं एकता के आधार पर सम्मिलित किया जा सके। इसी प्रकार शान्ति और प्रतिरक्षा से सम्बन्धित संविधानों के सम्बन्ध में भी संविधान ने निश्चित उपबन्ध किया है। ये सन्धियाँ, जैसा कि संविधान में प्राविधान किया गया है, पारस्परिक हितों को ही दृष्टि में रखकर की जा सकती हैं।

नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं कर्त्तव्य

फ्रांस के पाँचवें गणतन्त्र के संविधान ने नागरिकों के उन समस्त मौलिक अधिकारों को मान्यता प्रदान की है जो कि सन् 1789 तथा 1946 ई० के संविधान द्वारा स्वीकार किये थे। वे मूल अधिकार संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(1) कानून की दृष्टि में पुरुषों तथा स्त्रियों की समानता।

(2) आश्रय प्रदान करने का प्राविधान।

(3) किसी जाति अथवा वर्ग विशेष में जन्म और वंश अथवा राजनीतिक विचारों के कारण फ्रांस में मनुष्यों के साथ सार्वजनिक सेवाओं तथा व्यापार इत्यादि क्षेत्रों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा।

(4) अपने हितों की रक्षा करते हुये मनुष्यों को विभिन्न प्रकार की दलीय संस्थाओं और संगठनों के रूप में संगठित होने की स्वतन्त्रता रहेगी तथा श्रमिकों को कानून की सीमा में रखकर अपनी माँगों को पूरा करने के निमित्त हड़ताल करने की भी स्वतन्त्रता होगी।

(5) श्रमिकों की उत्पादन संस्थाओं के व्यवस्थापन में भाग लेने का अधिकार तथा सामूहिक लाभ की प्रक्रिया में सम्मिलित हो सकने की सार्वजनिक छूट होगी।

(6) राज्य ने देश के प्रत्येक व्यक्ति अथवा व्यापार के समुचित विकास के निमित्त कानूनी उपबन्ध किया है तथा बच्चों, माताओं, वृद्धों एवं शरीर से अयोग्य व्यक्तियों के जान-माल की रक्षा के लिये आवश्यक व्यवस्था करने के (अपने राज्य) उत्तरदायित्व को भी स्वीकार किया है।

(7) संविधान ने सामान्य शिक्षा तथा प्राविधिक शिक्षा के प्रसार की ओर राज्य से व्यवस्था देने तथा इसके साथ ही साथ सभ्यता एवं संस्कृति और देश के बच्चों तथा नौजवानों का संरक्षण करने की प्रत्याभूति भी दी है यह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह देश में सार्वजनिक स्तर पर तथा धर्म निरपेक्ष शिक्षा की समुचित व्यवस्था करे।

(8) फ्रांस ने अपनी मूल-भूमि से लेकर अपने सभी उपनिवेशों तक बिना किसी धार्मिक अथवा लिंग के आधार पर भेद-भाव किये हुये गणतन्त्र शासन की स्थापना की है।

मौलिक अधिकारों का महत्व—जनता के सार्वजनिक अधिकारों की जन्म-भूमि यदि फ्रांस को कह दिया जाये तो इसमें अत्युक्ति की बात भी नहीं है। सन् 1789 ई० में राज्यक्रान्ति के पश्चात् ही फ्रांस ने जनता के इन अधिकारों को ऐतिहासिक घोषणा की थी। इन मौलिक अधिकारों के चार्ट (अधिकार पत्र) के रूप में समान मानते हुये तथा महत्वपूर्ण सार्वजनिक अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है। इन अधिकारों को फ्रांस में वह वैधानिक मान्यता तो प्राप्त नहीं है, जो कि सयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा भारत के संविधानों द्वारा दी गई है। तथापि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इनकी विभिन्न देशों के राजनीतिज्ञों ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

संविधान में संशोधन—संविधान में संशोधन करने का अधिकार भी संसद को प्रदान किया गया है किन्तु संशोधन के प्रस्तावित एवं पारित होने के पश्चात् जन-साधारण द्वारा व्यापक स्तर पर उस सम्बन्ध मे लोक-निर्णय (Referection) कराया जाना आवश्यक है। इस प्रकार संविधान के सम्बन्ध में कोई भी प्रस्ताव सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री की शिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सकता है। यह प्रस्ताव राष्ट्रपति संसद के संयुक्त अधिवेशन में ही रख सकता है। जब तक संशोधन के किसी प्रस्ताव को संसद अपने उपस्थित सदस्यों के 3/4 बहुमत द्वारा स्वीकृति प्रदान न करे, उसे कोई मान्यता नहीं दी जा सकती। संशोधन ने यह निश्चित कर दिया है कि उसके प्रजातान्त्रिक स्वरूप के विषय में संसद अथवा जनसाधारण को किसी प्रकार का संशोधन प्रस्ताव रखने का अधिकार न होगा। इसके अतिरिक्त सवैधानिक संशोधन के कार्य में एक और भी बाधा है और वह यह है कि राज्य के किसी भी क्षेत्र में अशान्ति अथवा असुरक्षा होने की स्थिति में संसद में संविधान के संशोधन हेतु प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता।

समीक्षा—फ्रांस के पंचम गणतन्त्र का वर्तमान संविधान इस सम्बन्ध में जैसा कि अन्य देशों में होता है, कोई उपबन्ध नहीं करता कि राज्य अथवा उसकी कार्य-पालिका की ओर से किसी व्यक्ति, व्यक्ति समूह अथवा संस्था पर किये गये अन्याय के विरोध में वैधानिक स्तर कोई व्यक्ति अपनी आपत्ति नहीं प्रकट कर सकता। भारत अथवा सयुक्त राज्य अमेरिका में यदि संसद अथवा कार्यकारिणी की ओर से किसी प्रकार का ऐसा कार्य किया जाये जो कि संविधान से विरुद्ध हो तो कोई व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह इस बात का अधिकार रखता है कि वह वैधानिक स्तर पर उसके विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही करे तथा अपनी आपत्तियों का समुचित समाधान प्राप्त कर सके। इसके विपरीत फ्रांस के संविधान में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। तथापि फ्रांस में जैसा कि अन्य देशों में समुचित व्यवस्था होती है, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में जनता के इस अधिकार को अवश्य ही स्थान दिया जाना चाहिये। कुछ भी हो फ्रांस में राज्य की ओर से जनता अथवा किसी वर्ग या व्यक्ति पर अन्याय होने की दशा में उसके विपक्ष में कानूनी स्तर पर संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया संसद के द्वारा अवश्य की जा सकती है।

प्रश्न 3—फ्रांस के राष्ट्रपति की वर्तमान शक्तियों की व्याख्या कीजिये।

फ्रांस तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपतियों की उनकी शक्तियों एवं स्थिति के विचार से परस्पर तुलना कीजिये।

फ्रांस में मन्त्रिपरिषद का निर्माण किस प्रकार किया जाता है? फ्रांस के प्रधानमन्त्री की शक्तियों का उल्लेख कीजिये।

Enumerate the powers of the French President.

Compare the President of U. S. A. and France in respect of their powers and position.

How far has the constitution of fifth republic in France made improvement in the system of ministertial instability.

How is the council of ministers formed? What are the powers of the France Prime Minister.

राष्ट्रपति का निर्वाचन

फ्रांस के पाँचों गणतन्त्र के संविधान ने यह प्राविधान किया है कि देश के राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचिकमण्डल करेगा। अपने पद पर वह वर्ष के कार्यकाल तक आसीन रह सकेगा। इस निर्वाचिकमण्डल की सदस्यता में तीन प्रकार के प्रति-निधियों को सम्मिलित किया जाता है—

(क) राष्ट्रीय प्रतिनिधि,

(ख) स्थानीय प्रतिनिधि, तथा

(ग) समुद्र पारीय फ्रांसीसियों द्वारा चुने गये प्रतिनिधि।

(1) निर्वाचकमण्डल के राष्ट्रीय प्रतिनिधि—राष्ट्रीय प्रतिनिधि वे होते हैं जिन्हें कि राष्ट्रीय महासभा (National Assembly) की सदस्यता प्रदान की जाती है। इनकी लोक सदन में संख्या 465 नियत की गई है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति के निर्वाचकमण्डल के राष्ट्रीय प्रतिनिधियों में सिनेट के भी 230 सदस्यों को सम्मिलित किया जाता है।

(2) स्थानीय प्रतिनिधि—इस श्रेणी के सदस्यों (निर्वाचक मनुष्य) की संख्या का निश्चय जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। मेयर, उपमेयर, साधारण वकील, सामान्य आकार की बड़ी-बड़ी कम्यूनों के वकील, बड़ी-बड़ी कम्यूनों के प्रतिनिधियों इत्यादि को निर्वाचकमण्डल के स्थानीय सदस्यों की ही कोटि में रखा जाता है।

(3) समुद्र पारीय प्रदेशों के प्रतिनिधि—फ्रांस के अधिकार में कुछ समुद्र पारीय क्षेत्रों का शासन भी है। इस श्रेणी में उपर्युक्त क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं के सभी सदस्यों, सिनेट के क्षेत्रीय एवं प्रान्तीय परिषदों के सदस्यों, म्युनिसिपल कौंसिलों के सदस्यों, विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों तथा अधीनस्थ उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की गणना की जाती है।

राष्ट्रपति के अधिकार तथा कर्त्तव्य

फ्रांस के राष्ट्रपति के अधिकारों का दो भागों में वर्गीकरण किया गया है। उसके कुछ अधिकार तो अनन्य अधिकार माने गये हैं जबकि वह अपने कुछ अधिकारों का प्रयोग प्रधानमन्त्री के सहयोग अथवा परामर्श से ही करता है। इन दोनों प्रकार के अधिकारों का विवरण संक्षेप में इस प्रकार है—

(1) राज्य के मुख्यमन्त्री अथवा प्रधानमन्त्री (Prime Minister) का चयन करना।

(2) सरकार अथवा संसद की ओर से माँग होने पर लोक निर्णय द्वारा किये हुये किसी निश्चय का प्रतिरोध करना।

(3) राष्ट्रीय महासभा (निम्न सदन) का विघटन करना।

(4) संसद के दोनों ही सदनों को अपने सन्देह प्रसारित करना।

(5) संवैधानिक परिषद के तीन सदस्यों की नियुक्ति करना।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों अथवा संवैधानिक परिषद के निश्चयों पर अपने हस्ताक्षर करना।

(7) संवैधानिक परिषद के किसी विषय पर निर्णय किये जाने की माँग करना।

(8) संसद द्वारा पारित विषयों एवं विधेयकों पर अपने हस्ताक्षर करना।

(9) संविधान द्वारा धारा 16 में दिये गए उपबन्धों के आधार पर संक्रान्ति-कालीन शक्तियों का प्रयोग करना।

राज्य के कार्यपालिका-अध्यक्ष के रूप में फ्रांस के राष्ट्रपति के अधिकारों का वर्णन अग्रलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विस्तार से दिया गया है—

(1) प्रधानमन्त्री का चयन—संविधान ने राज्य के प्रधानमन्त्री का चुनाव एवं नियुक्ति करने का अधिकार राष्ट्रपति को ही प्रदान किया है। संसद की ओर से इस पद पर कार्य करने वाले पद का कोई निश्चित उपबन्ध नहीं किया है। अस्तु उसे प्रधानमन्त्री अथवा मुख्यमन्त्री किसी भी नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। कुछ भी हो, प्रधानमन्त्री की छाँट करते समय राष्ट्रपति को यह ध्यान में रखना आवश्यक होता है वह ऐसे व्यक्ति को प्रधानमन्त्री बनाये अथवा मन्त्रिपरिषद में केवल ऐसे ही व्यक्तियों को सम्मिलित होने का अवसर प्रदान करे जो कि राष्ट्रीय महासभा के प्रति सामूहिक रूप में उत्तरदायी रह सकें।

(2) संसद को भंग करने का अधिकार—वर्तमान संविधान के आधीन राष्ट्रपति राष्ट्रीय महासभा का विघटन करने का पूर्ण अधिकार रखता है। वह जब भी चाहे इस प्रकार संसद को भंग कर सकता है। किन्तु उसके इस अधिकार के प्रयोग में दो प्रतिबन्धों का पालन होना आवश्यक होता है।

(1) राष्ट्रीय महासभा एक ही वर्ष में दो बार विघटित नहीं जा सकती।

(2) हाँ, सक्रान्तिकाल में यह दुबारा भी विघटित की जा सकती है। संसद के भंग किये जाने के अधिकार का प्रयोग राष्ट्रपति केवल दो ही दृष्टिकोणों से कर सकता है—

(अ) राष्ट्रीय महासभा तथा मन्त्रिपरिषद से बीच उठे हुये विवादों का अन्त करने के लिये, तथा

(ब) राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का अन्त करने के हेतु (क्योंकि प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय महासभा का एक बहुमत समर्थित व्यक्ति ही होता है।)

(3) संसद के सदनों को सन्देश भेजने का अधिकार—फ्रांस के पांचवें गणतन्त्र में संविधान में संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की भाँति राष्ट्रपति के इस अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है कि वह समय-समय पर संसद के दोनों सदनों को अपने आवश्यक सन्देश प्रसारित कर सकता है। अब फ्रांस के राष्ट्रपति के लिये यह भी अपरिहार्य नहीं है कि वह संसद को अपने द्वारा भेजे गये सन्देशों पर किन्हीं सम्बन्धित मन्त्रियों के भी हस्ताक्षर कराये। अब राष्ट्रपति संसद को अपने सभी संदेश सीधे अपने ही हस्ताक्षरों द्वारा प्रेषित कर देता है।

(4) संविधान के विषय में राष्ट्रपति की शक्तियाँ—यह हम पहले भी वर्णन कर चुके हैं कि राष्ट्रपति संवैधानिक परिषद के नौ सदस्यों में से तीन की नियुक्ति स्वयं अपने विवेक से ही करता है। इन तीनों सदस्यों में से एक तो परिषद का अध्यक्ष ही होता है और उसे किसी भी विवादग्रस्त प्रश्न पर दोनों पक्षों की ओर से समान मत पड़ने पर अपना निर्णायक मत दे सकने का पूर्ण अधिकार होता है। संविधान के उपबन्धों का देशवासियों द्वारा पूर्ण रूप से सम्मान एवं पालन किया जाता है। यह देखने का अधिकार राष्ट्रपति का ही अनन्य रूप में माना जाता है।

वह शासन के सुचारू रूप से संचालन के उद्देश्य की पूर्ति को ध्यान में रखते हुए पंचनिर्णय का आश्रय भी ले सकता है। इसके अतिरिक्त देश के किसी भी भाग में रहने वाली विभिन्न जातियों के विषय में होने वाले समझौतों अथवा सन्धियों का संरक्षण करना एवं उनके अधिकारों एवं एकता की प्रत्याभूति देना भी राष्ट्रपति का ही कार्य है।

(5) राष्ट्रपति की संकटकालीन स्थिति में प्रयोग की जाने वाली शक्तियाँ—जबकि राष्ट्रपति देश में संक्रान्ति-कालीन स्थिति की घोषणा करता है, उसे राष्ट्र को अपने तत्सम्बन्धी उद्देश्यों की विस्तृत सूचना प्रसारित करनी होती है। इसका दूसरे शब्दों में यही आशय हो सकता है कि केवल शान्ति-काल में ही राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्र का आह्वान करने के विषय में वह प्रधानमन्त्री का परामर्श उपलब्ध करेगा। संविधान की धारा 16 में राष्ट्रपति की संक्रान्ति (संकट) कालीन शक्तियों (Emergency Powers) का उल्लेख किया गया है। ये शक्तियाँ केवल तभी प्रयोग में लाई जा सकती हैं, जबकि फ्रांस की संस्थाओं के लोकतान्त्रिक स्वरूप को कोई भीषण एवं तत्कालीन क्षति पहुंचने की आशंका की जाये अथवा उसके देशवासियों की स्वतन्त्रता एवं प्रतिरक्षा के भयग्रस्त होने की स्थिति प्रतीत हो रही हो अथवा यह भय हो कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों की पालन क्रिया ही सम्भव नहीं हो पा रही है। ऊपरी संक्रान्तिकालीन शक्तियों को राष्ट्रपति संसद के दोनों ही सदनों के अध्यक्षों प्रधानमन्त्री तथा संवैधानिक परिषद के परामर्श से प्रयोग कर सकता है। इन पदाधिकारियो से परामर्श लेना राष्ट्रपति के लिए संविधान ने अनिवार्य घोषित किया है। संक्रान्तिकालीन स्थिति में राष्ट्रपति को समस्त कार्यपालिका सम्बन्धी तथा संवैधानिक अधिकारों का उपयोग करने की क्षमता प्रदान की गई है। संक्रान्तिकाल में राष्ट्रीय महासभा अपना कार्य करती रहती है। किन्तु राष्ट्रपति को इस बीच उसकी शक्तियों पर यथोचित रूप में प्रतिबन्ध करने का भी अधिकार है। इस संक्रान्तिकाल में राष्ट्रपति की शक्ति पर केवल यह एक प्रतिबन्ध अवश्य लग सकता है कि संवैधानिक परिषद उसे अपने पद के लिये अयोग्य घोषित कर सकती है अथवा सिनेट अथवा राष्ट्रीय महासभा राष्ट्रपति पर किसी भीषण षड्यन्त्र में भाग लेने का आरोप लगा सकती है। किन्तु इस दशा में राज्य के सर्वोच्च न्यायालय (High Court of Justice) को भी उस पर लगाये गये आरोप औचित्य अथवा अनौचित्य सिद्ध करने का अधिकार होता है। अन्ततः यह भी उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति को अपने पद से त्यागपत्र देने के विषय में जनमत की शक्ति को संविधान ने मान्यता प्रदान की है तथा जनता यदि चाहे तो राष्ट्रपति के पद पर दुवारा किसी व्यक्ति को चुनने से अस्वीकार कर सकती है।

(6) राष्ट्रपति की राज्य के अध्यक्ष के रूप में शक्तियाँ एवं कर्त्तव्य—राष्ट्रपति को अग्रलिखित नियमों की सभाओं में प्रधानमन्त्री के परामर्श पर सभापतित्व करने

का भी अधिकार होता है। मन्त्रिपरिषद, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा समिति, राज्य के उच्चतम न्यायालय तथा संघान्तरित राज्यों की जातियों की कार्यकारिणी।

राष्ट्रपति के अन्य अधिकार—उपर्युक्त अधिकारों और शक्तियों के अतिरिक्त राष्ट्रपति को कुछ अन्य साधारण प्रकृति के अधिकार भी प्रदान किये गये हैं जिनका कि संविधान में उल्लेख इस प्रकार है—

(अ) राष्ट्रपति स्वयं अथवा प्रधानमन्त्री के परामर्श से शासन के विभिन्न उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है।

(ब) मन्त्रिपरिषद के सदस्यों, सार्वजनिक एवं सैनिक विभागों में कार्य करने वाले उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है।

(स) वह नागरिकों के न्यायिक अधिकारों को प्रत्याभूति प्रदान करता है तथा संधियों और अन्य सभी प्रकार के समझौतों के विषय में वह स्वयं क्रान्ति करने का अधिकार रखता है।

(द) शासन सम्बन्धी वे सभी मामले जिनमें कि राष्ट्रपति को पहल करने का अधिकार नहीं दिया गया है, विस्तार के साथ उसे सूचित किये जाते हैं तथा इन मामलों से सम्बन्धित सभी तथ्यों के विषय में उसे प्रत्यक्ष रूप में अवगत रखा जाता है।

(य) विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति करने तथा फ्रांस में विभिन्न देशों द्वारा नियुक्त किये गये राजदूतों तथा राजनैतिक अभिकर्त्ताओं से उनके प्रमाणपत्र इत्यादि प्राप्ति का अधिकार भी राष्ट्रपति को ही है।

फ्रांस की मन्त्रिपरिषद तथा प्रधानमन्त्री की स्थिति

फ्रांस में मन्त्रि-परिषद (Cabinet of Ministers) तथा मन्त्रिमण्डल (Cabinet) के बीच भी कुछ निश्चित विभेद रखा गया है। मन्त्रियों की संख्या में घट-बढ़ करने के विषय में संविधान ने कोई उपबन्ध नहीं रखा है। अतः फ्रांस में मन्त्रिपरिषद के सदस्य मन्त्रियों की संख्या आवश्यकताओं को देखते हुए किसी भी समय पर घटाई अथवा बढ़ाई जा सकती है। मन्त्रिपरिषद का प्रधान ही फ्रांस का मुख्यमन्त्री अथवा प्रधानमन्त्री कहलाता है। इस सम्बन्ध में हम आगामी प्रश्नोत्तर में महत्वपूर्ण तथ्यों का दिग्दर्शन करेंगे।

प्रश्न 4—फ्रांस में मन्त्रिपरिषद के गठन तथा उसके अधिकारों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

फ्रांस के संविधान में प्रधानमन्त्री की क्या स्थिति है?

Write a short note on the organisation of the French Council of Minister and its functions. As well its powers in relation of the Government.

What is the place of premier (Prime Minister) in the constitution of France?

फ्रांस की मन्त्रिपरिषद

फ्रांस में जबकि राष्ट्रपति स्वयं ही मन्त्रियों की बैठक का सभापतित्व करता है तो वह मन्त्रिपरिषद (Council of Ministers) कहलाती है, किन्तु जब मन्त्रियों की किसी (विशिष्ट) बैठक में अध्यक्ष का पद प्रधान अथवा मुख्यमन्त्री ग्रहण करता है तो उसे केबिनेट (मन्त्रिमण्डल Cabinet) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि किसी भी विषय में औपचारिक भय से कार्य का निर्णय करने का दायित्व मन्त्रिपरिषद का ही होता है न कि मन्त्रिमण्डल का। फ्रांस के विषय में वह कहा जाता है कि इस देश में मन्त्रिमण्डलों का बहुत ही जल्दी-जल्दी विघटन एवं निर्माण होता रहता है। इन सब बातों का एक निश्चित कारण यह है कि फ्रांस में बहुत से राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान की गई है। इंगलैंड में चिरस्थाई मन्त्रि-मण्डल वस्तुतः इसी कारण रहे हैं कि यहाँ पर केवल दो ही सुव्यवस्थित राजनीतिक दलों को संविधान ने मान्यता प्रदान की है। इनके अतिरिक्त वहाँ के अन्य दलों का देशवासियों पर कोई विशेष प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

प्रधानमन्त्री अथवा मन्त्रिपरिषद के कार्य—फ्रांस में सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों में से कुछ ऐसे कार्य भी यहाँ पर उल्लेखनीय हैं जो कि केवल मन्त्रिपरिषद (Council of Ministers) द्वारा ही किये जा सकते हैं। ये कार्य हैं—राजदूतों की नियुक्ति करना तथा अध्यादेश जारी करना। राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद के निर्णयों को भी प्रभावित करता है। इस दृष्टि से फ्रांस का राष्ट्रपति शासन सम्बन्धी मामलों में इंग्लैंड के सम्राट से भी अधिक प्रभावशाली माना गया है। राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद की बैठक आमन्त्रित करके किसी भी न्यायालय द्वारा दण्डित किये हुये अपराधी को मन्त्रियों के परामर्श से क्षमा कर सकता है। इसके अतिरिक्त वह अपने मन्त्रियों की सहमति से सन्धियों के विषय में किसी आवश्यक कर्त्तव्य का निश्चय करता है तथा न्यायपालिका की उच्च समिति के सदस्यों को मनोनीत करता है, इन सभी प्रकार के निश्चयों को क्रियान्वित करने के विषय में राष्ट्रपति को अपने अध्यादेशों इत्यादि पर प्रधानमन्त्री अथवा सम्बन्धित मन्त्री के हस्ताक्षर भी लेने पड़ते हैं। राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद के सदस्यों के परामर्श से ही आदेशों, अध्यादेशों, संघीय तथा कानूनों को वैध घोषित करता है। संसद द्वारा पारित विधियों को वह अपने समक्ष अन्तिम स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किये जाने के समय से 15 दिन की अवधि में ही अपने हस्ताक्षरों द्वारा अनुसमर्थित करता है। अतः कुछ कानूनों को अपनी अन्तिम स्वीकृति देकर अस्वीकार भी कर सकता है, किन्तु इस अधिकार का प्रयोग वह प्रधानमन्त्री अथवा सम्बन्धित मन्त्री की सहमति उपलब्ध किये बिना कभी भी नहीं करता, क्योंकि ऐसा करने से उसके द्वारा संसद के कार्यों में विघ्न उपस्थित हो सकता है और कभी-कभी तो उसका इस प्रकार का व्यवहार शासन संचालन में एक स्थाई बाधा के रूप में भी प्रकट हो सकता है।

मन्त्रिपरिषद की शक्तियां—मन्त्रिपरिषद की शक्तियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(1) कार्यकारी.
(2) विधायी, तथा
(3) वित्तीय ।

मन्त्रिपरिषद की कार्यकारी शक्तियां—मन्त्रिपरिषद पूर्ण विचार-विमर्श करके निम्नलिखित पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है—

(1) केन्द्रीय प्रशासन के संचालक,
(2) समुद्र पार देशों में फ्रांसीसी सरकार के प्रतिनिधि तथा पदाधिकारी,
(3) प्रीफेक्ट,
(4) शिक्षा संस्थाओं के वेक्टर्स,
(5) परीक्षा कार्यालय के मास्टर कौंसिलर्स,
(6) कौंसिलर्स ऑफ स्टेट,
(7) राजदूत,
(8) ग्राण्ड चान्सलर ऑफ दी लिजियन ऑफ आनर्स तथा
(9) सामान्य पदाधिकारी ।

इन समस्त नियुक्तियों के द्वारा सरकार अपने दो प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति करती है—

(1) राष्ट्र की नीति का निर्धारण एवं सुसंचालन ।

(2) सरकार अपने अधीनस्थ प्रशासन का संचालन करना तथा सेनाओं को देश की सुरक्षा के लिये किसी भी दशा में तत्क्षण तैयार रखना। मन्त्रिपरिषद को अपनी स्थिति को सुदृढ़ रखने के उद्देश्य से भी कुछ विशिष्ट प्रकार की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं और इस प्रकार का संवैधानिक उपबन्ध पिछले गणतन्त्रों के संविधान में नहीं किया गया था, जिससे कि 1958 ई० के पूर्व फ्रांस के मन्त्रिमण्डल प्रायः अशक्त एवं अल्पकालीन नहीं बने रहे थे, तथापि इस संविधान में पहले की भाँति ही कार्यपालिका को संसदात्मक रखने की चेष्टा की गई है। इसके अतिरिक्त अब मन्त्रि-गण किसी भी सदन के सदस्य न होने के कारण दलीय अनुशासन तथा निर्वाचकों के दवाव से भी सर्वथा मुक्त रहते हैं। राष्ट्रपति को सरकार की कार्यकारिणी का एक सक्रिय अध्यक्ष माना गया है तथा उसका विधायिका पर भी व्यापक नियन्त्रण होता है। इसी दशा में मन्त्रिमण्डल के जल्दी-जल्दी भंग होने की सम्भावना को व्यवहारतः पहले की अपेक्षा कहीं अधिक कम किया जा सकता है।

मन्त्रिपरिषद की विधायी शक्तियां—फ्रांसीसी मन्त्रिपरिषद पद के सदस्य संसद के किसी भी सदन की बैठक में भाग ले सकते हैं, परन्तु उन्हें प्रस्तावित विधेयकों पर संसदीय सदस्यों की भाँति स्वयं मतदान करने का अधिकार नहीं होता

है। मन्त्रिपरिषद देश पर एक निश्चित अवधि तक (12 दिन) सैनिक कानून (Martial Law) भी लागू कर सकती है, किन्तु अधिक समय के लिये उसे संसद की नियमानुसार स्वीकृति लेना अनिवार्य है। मन्त्रिपरिषद की ओर से प्रस्तुत किये जाने वाले सभी विधेयकों पर संसद कौंसिल ऑफ स्टेट से परामर्श लेने के उपरान्त ही कोई विचार कर सकती है। इसी प्रकार मन्त्रिपरिषद भी संसदीय विधेयकों अथवा संशोधनों को कानूनों अथवा संविधान के विरुद्ध घोषित कर उन पर वाद-विवाद की प्रक्रिया को अस्थायी रूप से रुकवा सकती है।

वित्तीय शक्तियां—संसद यदि निश्चित अवधि के 70 दिन के अन्तर्गत आय-व्यय (वजट) बनाने में समर्थ न हो सके, तो मन्त्रिपरिषद अपने अध्यादेश द्वारा बनाकर उसे लागू कर सकती है। इसके अतिरिक्त यदि वित्तीय वर्ष से पहले ही अल्पकाल के लिये व्यय की स्वीकृति लेना आवश्यक हो तो इस हेतु मन्त्रिपरिषद को संसद से आग्रह करने का पूर्ण अधिकार होता है। इसका मूल उद्देश्य सरकार को दृढ़ता प्रदान करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

प्रधानमन्त्री तथा उसकी सरकार संक्रान्तिकाल की घोषणा हो जाने पर राष्ट्रपति शासन में मिलकर भी व्यवहारतः प्रजातान्त्रिक शासन पद्धति का ही अनुसरण करती है। फ्रांसीसी संविधान निर्माताओं ने अपने विगत अनुभवों के आधार पर ही इस प्रकार की शासन व्यवस्था को लागू किया है।

सरकार का संसद के प्रति उत्तरदायित्व—वर्तमान संविधान में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख भी नहीं किया गया है कि मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप में संसद अथवा लोकप्रिय सदन के प्रति अपना उत्तरदायित्व पालन करेगा। इस सम्बन्ध में संविधान की धारा 49 में इतना अवश्य कहा गया है कि, "मन्त्रिपरिषद के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय महासभा के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व का विश्वास दिला सकता है। राष्ट्रीय महासभा सरकार के उत्तरदायित्व का विश्वास दिला सकती है। राष्ट्रीय महासभा सरकार के विषय में निन्दा का प्रस्ताव पारित करके प्रश्न उठा सकती है।"

प्रश्न 5—फ्रांस के वर्तमान संविधान के अन्तर्गत संसद के संगठन, अधिकार तथा कार्यों की विवेचना कीजिये।

Discuss tne Composition, Powers and Functions of the National Assembly under the Present Constitution.

फ्राँस की संसद की रचना

फ्रांस के गणतन्त्र के अधीन नेशनल असेम्बली की कार्य अवधि 5 वर्ष की है, जिसमें फ्रांस के अतिरिक्त अल्जीरिया 6, 7, सहारा 4, समुद्र पार डिपार्टमेन्ट :0, समुद्र पार प्रदेश के 6 प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। सीनेट की कुल संख्या

30 थी जिसमें अल्जीरिया, सहारा तथा विदेशों में रहने वाले फ्रांसीसी नागरिकों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे।

फ्रांस में फ्रांस की संसद की निम्नलिखित निर्वाचन पद्धतियाँ उल्लेखनीय हैं—

(1) एक बार मतदान और बहुमत पद्धति।

(2) दो बार मतदान के साथ बहुमत पद्धति।

(3) अनुपातिक प्रतिनिधित्व।

वर्तमान समय में दो बार मतदान के साथ एक सदायकारिणी पद्धति की मान्यता प्रदान की गई है।

मतदान एवं उम्मीदवार की योग्यतायें—फ्रांस का प्रत्येक नागरिक 21 वर्ष की अवस्था पूरी कर लेने पर व्यवस्थापिका के लोकप्रिय सदन के लिये मतदाता हो सकता है। सैनिक व नागरिक उपाधियों से अलंकृत नागरिक के लिये आयु सीमा में 5 वर्ष की शिथिलता प्रदान की गई है, जिसमें वे 18 वर्ष की अवस्था में ही मतदाता हो सकते हैं। उम्मीदवार के लिये यह परमावश्यक है कि वह अपने नाम को निर्वाचन रजिस्टर में अंकित करा दे। उम्मीदवार के लिये आयु सीमा 23 वर्ष है। पुरुष एवं स्त्रियों दोनों को समान रूप से मतदाता तथा उम्मीदवार के लिये अधिकार प्रदान किया गया है।

मतदान—मतदान गुप्त होता है। साधारण मतदाता निर्वाचन क्षेत्र में स्वयं आकर अपना मत देते हैं। परन्तु अपंग या वे जो चलने फिरने में असमर्थ हो तथा कृषि या उद्योग में काम करने वाले व्यक्ति अपना मतदान डाक द्वारा प्रेरित कर सकते हैं। चुनाव अत्यन्त सरल है।

सीनेट का चुनाव—सीनेट की अवधि फ्रांस में 9 साल की है। प्रति तीन वर्ष में 1/3 सदस्य चुने जाते हैं। भारतीय राज्य सभा की भांति यह एक स्थायी सदन है। इसके उम्मीदवार की आयु सीमा 35 वर्ष है।

फ्रांस, सहारा और 4 समुद्र पार प्रांतों में सीनेट का निर्वाचन निर्वाचक मण्डलों द्वारा सम्पन्न होता है।

(1) 9 प्रान्तों में 7 को पृथक कर 1 से 4 तक सीनेटर भेजने का अधिकार प्रदान किया गया है। दो मतदान के साथ बहुमत पद्धति के आधार पर चुनाव होता है। उम्मीदवारों को प्रथम मतदान में सम्पूर्ण डाले गये मतों का पूर्ण बहुमत और कुल मतदाताओं की 1/4 संख्या के बराबर कम से कम मत प्राप्त होने चाहियें। परन्तु दूसरे मतदान में सापेक्ष बहुमत की आवश्यकता होती है।

(2) फ्रांस के अधिक घने बसे प्रान्तों को 5 या अधिक सीनेटर चुनने का अधिकार है। ये अपने 60 सीनेटरों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर करते हैं।

(3) फ्रांस के वे नागरिक जिनका आवास विदेश में है, उसका प्रतिनिधित्व

करने वाले 6 सीनेटरों का चुनाव पहले विदेशों में रहने वाले फ्रांसीसियों की उच्च परिषदें करती हैं तथा परिषद के चयन को सीनेट स्वीकृति प्रदान करती है।

संसद सदस्यों के विशेषाधिकार—फ्रांस की व्यवस्थापिका के सदस्यों को 3 प्रकार के विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं—

(1) संसद के सत्र के समय प्रत्येक सदस्य को कानून के गम्भीर अतिक्रमण करने के सिवाय अन्य अपराधों या आचरणों के लिये नजरबन्द नहीं किया जा सकता और न ही उसके प्रतिकूल किसी प्रकार की कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

(2) सदनों की प्रार्थना पर कानून के गम्भीर अतिक्रमण करने या अपराधी सदस्य के लिये कानूनी कार्यवाही या नजरबन्दी स्थगित रहेगी।

(3) सदस्यों को अपने कर्त्तव्य पालन के दिये गये मतों अथवा मत के स्पष्टीकरण के लिये उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। उनके साथ वन्दी जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता है।

सदस्यों के कर्त्तव्य—व्यवस्थापिका के प्रत्येक सदस्य का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वह समस्त बैठकों में उपस्थित हो। विना आज्ञा की अनुपस्थिति से वेतन में कटौती कर दी जाती है। 1958 के कानून के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि सदस्य कोई दूसरे व्यापार को सम्पन्न नहीं कर सकते और उनकी नियुक्ति ही ऐसे सार्वजनिक पदों पर हो सकती है। परन्तु वे पद जिनका चुनाव न होता हो जैसे कौंसिल या कम्यूनों की कौंसिल के मेजर आदि के पद ग्रहण कर सकते हैं।

May not hold any elective public post सरकारी वकील भी त्यागपत्र देने के पूर्व व्यवस्थापिका की सदस्यता के लिये उम्मीदवार नहीं हो सकते हैं।

संसद के अधिवेशन सत्र—प्रत्येक वर्ष में दो अधिवेशनों का होना आवश्यक है। समयानुसार आवश्यकता पड़ने पर असाधारण अधिवेशनों की भी व्यवस्था है। मन्त्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को अधिकार है कि वह संसद के अधिवेशनों में भाग लेकर भाषण दे सकता है।

पदाधिकारी—नेशनल असेम्बली के प्रधान का कार्यकाल 5 वर्ष के लिये होता है। गुप्त मतदान द्वारा प्रथम अधिवेशन में ही सभापति का चुनाव होता है, जो साधारणतया सबसे बड़ा सदस्य होता है।

सभापति के कार्य—

(1) असेम्बली की समस्त बैठकों का सभापतित्व करना।

(2) बैठक के स्थायी आदेशों को लागू करना।

(3) राष्ट्रपति आपातकालीन घोषणा व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के अध्यक्षों से परामर्श लेकर ही करता है।

यहाँ पर सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि फ्रांस में दोनों सदनों के सभापति अपने-अपने राजनीतिक दलों के सक्रिय सदस्य होते हैं।

सीनेट का प्रधान—सीनेट के प्रधान का चुनाव 3 वर्ष की अवधि के लिये होता है। उसके द्वारा भी संवैधानिक परिषद के 3 सदस्यों का चयन किया जाता है।

दोनों सदनों का संगठन—अक्टूबर अधिवेशन के प्रारम्भ में प्रत्येक सदन एक ब्यूरो का चुनाव करता है। इस ब्यूरो में 1 प्रधान, 6 उपप्रधान, (असेम्बली) तथा 4 उपप्रधान 1 सीनेट में तथा सेक्रेटरी (असेम्बली 12 तथा सीनेट में 8) होती है। जिनका कार्य राजकीय लेखा-जोखा को तैयार करना होता है। ब्यूरो के द्वारा ही असेम्बली व सीनेट की विभिन्न सेवाओं का संगठन व उनका निरीक्षण करना तथा आवश्यकतानुसार उन्हें विभिन्न अवसरों पर परामर्श दिया जाता है। कम से कम 30 सदस्य सम्मिलित होकर एक संसदीय समूह का निर्माण करते हैं। इस समूह का एक सभापति नियुक्त किया जाता है। यह सभापति ही अपने सदस्यों की सूची को ब्यूरो में पंजीकृत करता है तथा राजनीतिक सिद्धान्तों की घोषणा को प्रकाशित करता है। व्यवस्थापिका के प्रथम अधिवेधन की अवधि लगभग 74 दिन की होती है। दूसरा अधिवेशन 3 माह तक चलता है। धारा 33 के अनुसार दोनों सदनों की बैठक खुले रूप से होती है। प्रधानमन्त्री अथवा कुल सदस्यों की 1/10 संख्या की प्रार्थना पर सदन की गुप्त बैठक की जा सकती है।

संसद के कार्य एवं अधिकार—अध्ययन की सुविधा हेतु व्यवस्थापिका के कार्य एवं अधिकारों को निम्नलिखित 3 भागों में विभाजित किया जाता है—

(1) निर्वाचन सम्बन्धी,

(2) विधायी, तथा

(3) नियन्त्रण सम्बन्धी।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य—वह अपने सदस्यों में से समुदाय की सीनेट के लिए आये फ्रांसीसी प्रतिनिधियों को छाँटती है।

(2) उच्च न्यायालय के आधे न्यायाधीशों की छाँट भी यही संसद करती है।

(3) यूरोपियन असेम्बली के 50% फ्रांसीसी प्रतिनिधियों का चयन व्यवस्थापिका को ही करना होता है। इस प्रकार सीनेट अनेक संवैधानिक अगों के सदस्यों की आंशिक छाँट करती है। पर उसके द्वारा प्रधान का चयन नहीं किया जाता है।

विधि निर्माण सम्बन्धी कार्य—चतुर्थ गणतन्त्र के संविधान की धारा 34, 35, 36, 47 तथा 53 में व्यवस्थापिका के विधि निर्माण सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख किया गया है। धारा 34 के द्वारा दो प्रकार के अन्तर को स्पष्ट किया गया है—

(1) प्रथम वर्ग में वे कानून आते हैं, जिनसे नियमों का निर्धारण किया जाता है।

(2) वे कानून जो मूलभूत सिद्धान्त लागू करते हैं।

प्रमुख कानून—

(1) नागरिक अधिकार, सार्वजनिक स्वतन्त्रतायें।

(2) राष्ट्रीयता, विवाह, उत्तराधिकार।

(3) अपराधी एवं विभिन्न प्रकार के दुराचारों की परिभाषा, दण्ड का निर्धारण, फौजदारी प्रक्रिया।

(4) सभी प्रकार के करों का जिनसे निर्धारण होता है।

(5) स्थानीय एवं संसद के लिये निर्वाचन पद्धति।

(6) सार्वजनिक निगमों की रचना।

(7) नागरिकों के सेवकों और सेना के सदस्यों को प्रदान की गई मूल गारन्टियाँ।

(8) उद्योगों का राष्ट्रीयकरण इत्यादि।

युद्ध घोषणा का उपक्रम भी धारा 35 एवं 36 के अनुसार व्यवस्थापिका ही करेगी। सैनिक कानूनों की उपघोषणा भी मन्त्री परिषद ही संसद की स्वीकृति पर 12 दिनों की अवधि के बाद तक जारी कर सकती है।

धारा 37 के अनुसार विधायी क्षेत्र से बाहर सभी मामलों का आधार विनियमात्मक होगा।

संविधान लागू होने के उपरान्त सभी निर्मित कानूनों को संवैधानिक परिषद द्वारा विनियमात्मक घोषित होने पर ही संशोधित किया जा सकता है। 38 वीं धारा के अनुसार सरकार एक सीमित अवधि के लिये अपने कार्य-क्रम को संपादित करने के लिये अध्यादेश द्वारा फिलहाल कार्य चला सकती है, परन्तु इस हेतु बाद में संसद की स्वीकृति परमावश्यक होती है।

धन सम्बन्धी कार्य—37 वीं धारा के अनुसार व्यवस्थापिका को ही वार्षिक बजट के निर्माण का अधिकार प्रदान किया गया है। बजट का स्वरूप सर्वप्रथम राष्ट्रीय सभा में हीं प्रस्तुत किया जाता है। यदि 40 दिन के अन्दर राष्ट्रीय सभा में कोई निर्णय नहीं लिया जाता है, उस परिस्थिति में वह बिल सीनेट में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इस स्थिति में सीनेट के लिये यह आवश्यक है कि वह उस बजट बिल के सम्बन्ध में 15 दिन के अन्दर अपना निर्णय घोषित कर दे। व्यवस्थापिका से यदि 70 दिन के अन्दर कोई निर्णय नहीं प्राप्त किया जा सके तो सरकार अपना अध्यादेश जमा बजट को कार्यान्वित कर सकती है। राष्ट्रीय नियोजन से सम्बन्धित कानून राज्य के सामाजिक व आर्थिक उद्देश्यों का निर्धारण या करों की मुक्ति का अधिकार रखती है। सरकारी विभागों के आय एवं व्यय की स्वीकृति भी राष्ट्रीय विधान सभा द्वारा की जाती है।

शक्तियाँ—संविधान की धारा 13 में स्पष्टतया उल्लेख किया गया है कि कानून बनाने का अधिकार केवल राष्ट्रीय विधान सभा ही को है। नवीन संविधानानुसार कार्यपालिका भी केवल राष्ट्रीय विधान सभा के प्रति ही उत्तरदायी है।

संवैधानिक शक्तियाँ—संसद राष्ट्रीय विधान की विपरीत दशा में राष्ट्रपति एवं मन्त्रियों द्वारा किये गये आचरण के विरुद्ध अभियोग लगाने का अधिकार

रखती है। राष्ट्रपति पर राजद्रोह का अभियोग सर्वोच्च न्यायालय में तभी चलाया जा सकता है, जब उसका निर्णय राष्ट्रीय विधान सभा ने ले लिया हो। प्रधानमन्त्री युद्ध का निर्णय या सन्धि की स्थापना करने का अधिकार तभी रखता है जबकि उसने राष्ट्रीय विधान सभा से इस हेतु आज्ञा प्राप्त कर ली हो।

प्रशासनीय शक्तियाँ—नये संविधान के अनुसार जब मन्त्रिमण्डल के लोकप्रिय सदन (नेशनल असेम्बली) से मन्त्रिपरिषद का विश्वास उठ जाता है तो वह अविश्वास प्रस्ताव पारित कर मन्त्रिमण्डल को भंग कर सकती है। विभिन्न विभागों के मन्त्रियों से नेशनल असेम्बली उनके विभागों से सम्बन्धित प्रश्न पूछती है तथा अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार वह मन्त्रिमण्डल के कार्यों तथा नीति का परीक्षण करती है। संयुक्त अधिवेशन में नेशनल असेम्बली का अध्यक्ष ही सभापतित्व करता है। यदि मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय विधान सभा को भंग करना चाहे तो यह कार्य राष्ट्रीय विधान में अध्यक्ष से परामर्श लेकर किया जाता है। यदि सभा भंग हो जाती है तो सभा के अध्यक्ष को ही प्रधानमन्त्री के पद का सुअवसर प्रदान किया जाता है और पूर्व प्रधानमन्त्री अपना पद त्याग देता है। अस्तु, इस प्रकार नेशनल असेम्बली गणतन्त्र के अध्यक्ष तथा मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण रखती है।

राष्ट्रीय असेम्बली एवं सीनेट का सम्बन्ध—कतिपय विषयों पर राष्ट्रीय असेम्बली एवं सीनेट दोनों को ही समान शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं, परन्तु विधायी शक्तियाँ सीनेट के पास अपेक्षाकृत कम हैं। सीनेटरों को यह अधिकार प्रदान नहीं किया गया कि वे व्यवस्थापिका के असाधारण अधिवेशनों को आमन्त्रित कर सकें। यदि किसी प्रस्ताव को नेशनल असेम्बली पारित कर देती है, परन्तु सीनेट उसका प्रतिरोध करती है तो ऐसी स्थिति में नेशनल असेम्बली का निर्णय ही सर्वोच्च माना जाता है। नेशनल असेम्बली किसी भी समय भंग की जा सकती है, परन्तु सीनेट को भंग करने की धमकी भी नहीं दी जा सकती है। तब राष्ट्रपति जनमत के निर्णय से समानता रखता हुआ अपना निर्णय दे सकता है अथवा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के 3/4 के बहुमत से अन्तिम निर्णय लिया जा सकता है।

प्रश्न 6—फ्रांस की न्यायपालिका के संगठन का संक्षिप्त विवरण देते हुए उसका महत्व स्पष्ट कीजिए।

फ्रांस की न्यायपालिका

फ्रांस की कार्यपालिका के विभिन्न उच्च पदों पर नियुक्तियाँ करने हेतु उच्च न्यायिक परिषद स्वयं ही प्रत्याशियों को मनोनीत करती हैं। व्यवहारतः इन प्रत्याशियों की नियुक्ति स्वयं राष्ट्रपति ही करता है।

उच्च न्यायिक परिषद—वर्तमान पंचम संविधान के आधीन उपर्युक्त उच्चतर न्यायिक परिषद का नाम बदलकर उच्च न्यायिक परिषद रख दिया गया है। इसकी रचना के विषय में निम्नलिखित व्यवस्था विशेष रूप में उल्लेखनीय है—

इस पद में राष्ट्रपति एक अध्यक्ष के रूप में तथा न्याय मन्त्री इसके एक

विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित किये जाते हैं तथा शेष 5 अन्य सदस्य भी इसमें होते हैं। इन 9 प्रतिनिधियों की नियुक्ति स्वयं राष्ट्रपति करता है। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति विभिन्न आंशिक कानूनों के उपबन्धों के आधीन ही करने का अधिकार रखता है इसमें से दो की नियुक्ति तो वह स्वयं प्रत्यक्ष रूप से करता है तथा शेष 7 को राष्ट्रपति राज्य परिषद सभा को 9 ऑफ सेशन द्वारा निर्धारित 21 व्यक्तियों की सूची में से ही नियुक्त करता है। फ्रांस की न्यायपालिका के विभिन्न उच्च पदों पर नियुक्तियाँ करने हेतु उच्च न्यायिक परिषद स्वयं ही प्रत्याशियों को मनोनीत करती है। व्यवहारतः इन प्रत्याशियों की नियुक्ति स्वयं राष्ट्रपति ही करता है।

उच्च न्यायिक परिषद के कार्य—राष्ट्रपति को फ्रांस में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति प्रदान करने वाला उच्चतम पदाधिकारी माना जाता है। उसके इस कार्य में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से ही इस उच्च न्यायिक परिषद का संगठन किया गया है। राष्ट्रपति द्वारा स्वयं इस न्यायिक परिषद का संगठन किया जाता है। राष्ट्रपति स्वयं इस उच्च न्यायिक परिषद की बैठकों का सभापतित्व करता है। किन्तु उसकी अनुपस्थिति में न्यायमन्त्री भी न्यायिक परिषद की सभी बैठकों में सभापति का स्थान ग्रहण कर सकता है। न्यायमन्त्री इस परिषद का पदेन सदस्य होता है। संविधान के 64वें अनुच्छेद में न्यायिक परिषद के कृत्यों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

(1) "उच्च न्यायिक परिषद ही कोर्ट ऑफ सेशन (Court of Cessasion) के न्यायाधीशों और सभी अपीलीय न्यायालयों के प्रथम अध्यक्षों के नाम मनोनीत करेगा। यह निकाय आंशिक कानून द्वारा निश्चित दशाओं के आधीन न्यायधीशों के सम्बन्धियों के विषय में जिनकी नियुक्तियाँ की जाती हैं मन्त्रियो द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्तावों पर अपनी सम्मति प्रदाव करता है।

(2) दण्डित अपराधियों के विषय में यह उच्च न्यायिक परिषद क्षमादान के प्रश्नों पर राष्ट्रपति को अपनी सहमति प्रदान करती है।

(3) विभिन्न न्यायालयों के न्यायधीशों के सम्बन्ध में यह परिषद एक अनुशासनिक विकास के रूप में कार्य करती है किन्तु ऐसे अवसरों पर परिषदों का अध्यक्षत्व कोर्ट ऑफ से सेशन के प्रथम सभापति द्वारा ही किया जाता है।

फ्रांस के न्यायालय—फ्रांस के न्यायालयों का वर्गीकरण दो भागों में किया जाता है—

(अ) सामान्य न्यायालय, तथा

(ब) प्रशासनिक न्यायालय।

कोर्ट ऑफ सेशन, सुधार न्यायालय तथा फ्रांस का उच्च न्यायालय (High Court of Justice) इत्यादि भी सामान्य न्यायालयों की ही कोटि में आते हैं।

(अ) सामान्य न्यायालय (Ordinary Courts)—सामान्य न्यायालयों का

संगठन बहुत ही सीधा-साधा होता है। इस न्यायिक व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे निम्न स्तर के न्यायालयों को मजिस्टीरियल न्यायालय की संज्ञा प्रदान की जाती है। ये बहुत ही सामान्य कोटि के दीवानी एवं छोटे-मोटे फौजदारी के मुकदमों की सुनवाई करते हैं। कुछ मामलो में तो इनके निर्णयों को ही अन्तिम मान लिया जाता है, किन्तु कुछ के सम्बन्ध में इनके निर्णयों के विरुद्ध प्राथमिक न्यायालयों (Courts of First Instance) में अपीलें भी विस्थापित की जा सकती हैं।

(1) कोर्ट ऑफ सेसेशन—सामान्य न्यायालयों के वर्ग में कोर्ट ऑफ सेसेशन को ही सर्वोच्च न्यायाधीकरण माना जाता है। अपीलों के समय में वस्तुत: इसे उच्चतम न्यायालय का स्थान प्राप्त है। इस न्यायालम के साथ प्रधान अभियोक्ता (Chief Procecutor) तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियों का सीधा सम्बन्ध रहता है। इस न्यायालय में एक शोधन कक्ष की भी व्यवस्था की गयी है जो कि विभिन्न प्रकार के अभियोगों के विषय में इस तथ्य का शोधन अथवा परीक्षण करता है कि वे उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सुनवाई के हेतु लाये जा सकते हैं अथवा नहीं।

(2) सुधार न्यायालय (Correction Courts)—इन न्यायालयों को प्राथमिकता तथा अपीलीय दोनों ही प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। इनमें से प्रत्येक न्यायालय में तीन से लेकर पाँच तक न्यायाधीश होते हैं। ये न्यायालय विभिन्न कार्यालयों के केन्द्रीय स्थानों पर स्थापित होते हैं। दीवानी के मुकदमों के सम्बन्ध में ये न्यायालय अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करते हैं किन्तु इनके समक्ष वे ही मामले लाये जा सकते हैं जिन पर कि निम्न स्तरीय न्यायालय द्वारा उसके प्राथमिक क्षेत्राधिकार के आयोग निर्णय प्रस्थापित किये गये हैं। इन न्यायालयों को विशेष महत्वपूर्ण मामलों से सम्बन्धित मुकदमों की सुनवाई के लिये प्राथमिक क्षेत्राधिकार भी प्राप्त हैं।

(3) उच्च न्यायालय (High Court of Justice)—स्टालिन सविधान की धारा 67 के आधीन फ्रांस में एक उच्च (अर्थात् सर्वोच्च) न्यायालय (High Court of Justice) की भी स्थापना की गई है, परन्तु इसकी रचना, संगठन एवं प्रक्रियाओं को देखते हुए इसे एक न्यायिक निकाय न कहकर एक राजनैतिक प्राधिकरण (Political Tribunal) ही कहना अधिक संगत प्रतीत होता है। इस न्यायालय में फ्रांस का सीनेट तथा राष्ट्रीय महासभा में से प्रत्येक के 12-12 प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। इस प्रकार भेजे गये ये 4 सदस्य अपने एक सभापति तथा दो उपसभापतियों का चुनाव करते हैं। यह निकाय संविधान की धारा 68 के आधीन यदि कभी राष्ट्रपति ही कोई दुराचारपूर्ण व्यवहार करता है, तो उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही कर सकता है। फ्रांस राष्ट्र के विरुद्ध भीषण राजद्रोह सम्बन्धी मामले इसी न्यायालय में प्रस्तुत किये जाते हैं। संक्रान्तिकाल में तो इस न्यायालय की

महत्ता सबसे अधिक बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में जबकि राष्ट्रपति तथा संसद के बीच किसी प्रकार का विवाद संघर्ष उठ खड़ा हो अथवा जबकि राष्ट्रपति संविधान की धारा 16 के अनुसार देश में संक्रान्तिकाल की घोषणा करें। इस न्यायालय को विशेष महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं।

(ब) प्रशासनिक न्यायालय (Administrative Courts)—दूसरे यूरोपीय देशों की भाँति फ्रांस में भी प्रशासनिक कानूनों की देख-रेख करने के लिये पृथक् न्यायालयों की व्यवस्था की गयी है। फ्रांस में इन न्यायालयों के विकास के लिये बहुत से राजनीतिक तथ्यों को उत्तरदायी माना गया है। प्रथमतः इस देश में प्रशासन की शक्तियों के अधिकाधिक केन्द्रीयकरण की स्थिति पायी जाती है तथा द्वितीयतः यहाँ पर उच्चाधिकारियों के हाथों में भी कुछ विस्तृत शक्तियाँ केन्द्रित कर दी गई हैं। अस्तु शासन के विभिन्न अगों एवं विभागों के उच्चाधिकारियों की ओर से किये जाने वाले कार्य से यदि देशवासियों अथवा राज्य के किसी भी पक्ष के हितों को कोई क्षति पहुंच रही हो तो उस दशा में इन प्रशासनिक न्यायालयों द्वारा ही आपत्तिजनक मामलों के विषय में न्यायिक कार्यवाही की जाती है। ये न्यायालय इस बात की जाँच करते हैं कि राज्य के विभिन्न विभाग अथवा उच्चाधिकारी वर्ग अपनी-अपनी शक्तियों का औचित्यपूर्वक एक समानता के दृष्टिकोण से ही उपयोग करते हैं अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त शक्ति विभाजन के सिद्धान्त का फ्रांस में ही पहले-पहल विकास किया गया था और उस समय यह अनुभव किया गया कि राज्य की कार्यपालिका को न्यायपालिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करने देना चाहिये। इस उद्देश्य पूर्ति को ही ध्यान में रखकर फ्रांस में इन प्रशासनिक न्यायालयों की स्थापना की गई। ये न्यायालय प्रशासनिक कानूनों के अतिक्रमण की दशा में जनसाधारण एवं राज्याधिकारियों के पक्ष में अथवा उनके विरुद्ध कम व्यय पर न्यायिक निर्णय प्रदान करते हैं। इन न्यायालयों का संगठन भी सामान्य न्यायालयों की भाँति सीधा-साधा होता है।

(1) अन्तर्विभागीय प्रीफैक्चरल कौंसिलें (Inter Department Prefatcural Counciis)—प्रशासनिक न्यायालयों की कोटि में अन्तर्विभागीय प्रीफैक्चरल कौंसिलें सबसे निम्न स्तर के न्यायालयों के रूप में कार्य करती हैं। शासन की सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण फ्रांस को कई एक क्षेत्रों में विभक्त किया गया है जिन्हें वहाँ पर विभागों के नाम अ सम्बोधित किया जाता है। इस देश में सीन Seene नामक विभाग के लिये कोई कौंसिल नहीं है किन्तु शेष विभागों को 22 समूहों के रूप में संगटित किया गया है जिसमें से प्रत्येक विभागीय समूह में प्रशासनिक न्याय व्यवस्था के संचालन के लिये एक-एक कौंसिल की व्यवस्था की गई है। इन कौंसिलों को अपनी देखरेख में विभिन्न प्रशासनिक कानूनों अथवा व्यवस्थाओं के उचित पालन की प्रक्रिया की अधीक्षण करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इनके अधीनस्थ प्रत्येक विभागीय क्षेत्र के लिये एक कोर्ट आफ एकाउण्टस सैनिक पुनर्विचार परिषद

(Council of Military Review) तथा सार्वजनिक निर्देश परिषद (Courts of Public Instruction) की स्थापना की गई है।

(2) प्रादेशिक प्रशासनिक न्यायालय (Regional Administrative Courts) - अन्तर्विभागीय प्रीफेक्चरल कौंसिलों के निर्णय अन्तिम नहीं होते। अतः उनके निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई के लिये फ्रांस में प्रादेशिक प्रशासनिक न्यायालयों की स्थापना भी की गई है।

(iii) कौंसिल ऑफ स्टेट—कौंसिल ऑफ स्टेट अथवा स्टेट अथवा राज्य परिषद को प्रशासनिक कानूनों की देख-रेख के विषय में अन्तिम प्राधिकरण (Final Authority) माना जाता है। यह एक न्यायालय के रूप में अपने कार्यों का संचालन करती है। इसके अतिरिक्त इसे कुछ अन्य दायित्वों का भी वहन करना होता है। यह अपने दायित्वों की दृष्टि में कई श्रेणियों (Sections) के रूप विभक्त की गई है। इनके समस्त सदस्य सीधे राष्ट्रपति द्वारा ही नियुक्त होते हैं। इसके निर्णय जहाँ तक कि इसके अपने क्षेत्राधिकार का सम्बन्ध है, अन्तिम होते हैं, जिनका कि सम्बन्धित व्यक्तियों को अनिवार्यतः पालन करना होता है। यह प्रशासनिक कानूनों से सम्बन्धित विभिन्न निम्न स्तरीय न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनने का भी कार्य करती है। इसके अतिरिक्त गम्भीर प्रकृति के प्रशासनिक विवादों के विषय में इसे प्राथमिक क्षेत्राधिकार भी प्राप्त हैं। मन्त्रिमण्डल द्वारा भिन्न विधेयकों पर प्राथमिक रूप से विचार किया जाता हैं, उनके सम्बन्ध में कानूनी प्रश्नों पर राज्य परिषद की सहमति भी आवश्यक रूप में ली जाती है। अन्ततः यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि प्रशासकीय क्षेत्र में न्याय वितरण के औचित्यपूर्ण कार्य में उपर्युक्त प्रशासनिक न्यायालय किस सीमा तक सफल रही है।

(iv) कोर्ट ऑफ कॉनफ्लिक्ट (Court of Conflict)—फ्रांस में सामान्यता दो प्रकार के प्रशासनिक न्यायालयों की व्यवस्था है। अस्तु ऐसे मामलों की अपीलों की सुनवाई करने हेतु यह निश्चय करना आवश्यक होता है कि उनका सम्बन्ध निश्चित रूप में किसी सामान्य न्यायालय के क्षेत्राधिकार से है अथवा किसी प्रशासनिक न्यायालय के क्षेत्राधिकार से। इसी प्रकार के प्रश्नों का समाधान करने हेतु यह न्याया-लय स्थापित किया गया है। उपर्युक्त विवाद के उपस्थित होने पर न्यायालय इस बात पर अपना निर्णय देता है कि कोई भी मामला उच्च न्यायालय में अपील करने के लिये प्रस्तुत किया जाना चाहिये अथवा यह किसी उच्च प्रशासनिक न्यायालय के समय प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

(v) संवैधानिक परिषद (Constitutional Council)—फ्रांस में न्यायिक पुनर्विचार के हेतु संविधान ने किसी प्रकार का प्राविधान नहीं किया। इसके अतिरिक्त यहाँ यह जानने की भी कोई व्यवस्था नहीं की कि संसद द्वारा पारित किया गया कोई भी विधान संवैधानिक दृष्टि में औचित्यपूर्ण है अथवा अनौचित्यपूर्ण। अस्तु चतुर्थ गणतन्त्र के संविधान ने इस दृष्टि से एक संवैधानिक समिति की स्थापना

करने का प्राविधान किया था जिसका कि कार्य यह देखना था कि संसद द्वारा पारित कोई भी विधि संवैधानिक उपबन्धों के प्रतिकूल तो नहीं है। पचम गणतन्त्र के संविधान में उपर्युक्त संवैधानिक समिति को संवैधानिक परिषद (Constitutional Council) की संज्ञा प्रदान की गई तथा इसके क्षेत्राधिकारों में भी कुछ वृद्धि की गई।

प्रश्न 7—फ्रांस की बहुदलीय व्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन करो। फ्रांस के विभिन्न राजनीतिक दलों के उद्देश्य, कार्य एवं संगठन की भी विवेचना करो।

फाँस की बहुदलीय प्रणाली

फ्राँस की व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(1) फ्राँस के राजनीतिक दलों को संविधान की वैधानिक मान्यता प्राप्त है।

(2) फ्राँस के अनेक राजनीतिक दल हैं और उनमें आपसी स्थायी सहयोग का अभाव है।

(3) अधिकांश राजनीतिक दलों में सैद्धान्तिक विभाजन नहीं है।

(4) दलों के संगठन के आधार विभिन्न प्रकार की राजनीतिक विचारधारा हैं।

(5) फ्राँस के दल हित समूहों तथा गैर दलीय संस्थाओं से प्रभावित रहते हैं।

(6) फ्राँस के दलों का संगठन दुर्बल है।

फ्राँस के प्रमुख राजनीतिक दलों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) यूनियन ऑफ न्यू रिपब्लिक (U.N.R.)

(2) वामपन्थी गणतन्त्रवादी संघ

(3) स्वतन्त्रता समर्थक गणतन्त्रवादी दल

(4) जनप्रिय गणतन्त्रवादी आन्दोलन

(5) समाजवादी दल

(6) साम्यवादी दल।

(1) साम्यवादी दल—यह दल सन् 1920 ई० में सोवियत संघ के साम्यवादी दल के आदर्शों पर स्थापित हुआ। इसके अनुयायी मार्क्स तथा लेनित द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर अखण्ड विश्वास रखते हैं। इनके कार्यक्रमों की रूप रेखा सोवियत राजनैतिक प्रचार केन्द्र के संस्थान में तैयार की जाती है। इनके उद्देश्य हैं–पूँजीवादी व्यवस्था को क्रांतिकारी उपायों द्वारा नष्ट-भ्रष्ट करना तथा उत्पादन और वितरण के क्षेत्रों में समानीकरण के सिद्धान्तों को कार्यान्वित करना।

(2) लोकप्रिय गणतन्त्रवादी दल—फ्राँस में लोकप्रिय गणतन्त्रीय आन्दोलन (The Political Republican Movement) की स्थापना सन् 1940–44 ई० की परिस्थितियों के फलस्वरूप हुई। इस आन्दोलन के माध्यम से फ्राँसीसियों ने जर्मन

आक्रमण एवं फ्राँसीसी भूमि पर जर्मनी के अनुचित आधिपत्य का संगठित विरोध किया। वैसे तो यह एक छोटे दल के जन-प्रजातन्त्रात्मक संगठन के रूप में सन् 1924 ई० में स्थापित हो चुका था

इस दल के द्वारा फ्राँस में सामाजिक सुरक्षा तथा राष्ट्रीयकरण के सिद्धान्तों पर सदैव ही बल दिया गया है। श्रमिक वर्ग की समस्याओं पर भी इस दल का यथेष्ठ ध्यान रहता है तथा उसे श्रमिकों का समर्थन भी प्राप्त है। इस दल ने उपनिवेशों में भी फ्राँस के सभी परम्परागत अधिकारों तथा फ्राँस की प्रतिष्ठा का पूर्ण तत्परता के साथ समर्थन किया है तथापि इस दल के द्वारा फ्राँसीसी उपनिवेशों के विषय में सामाजिक कल्याण तथा व्यापक स्वशासन की नीति की घोषणा की गई है। प्रारम्भ में तो इस दल ने जनरल डी गाले को ही अपना समर्थन प्रदान किया किन्तु सन् 1947 ई० से यह अपने राजनीतिक एवं व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण डी गाले के समर्थकों से पृथक् हो गया।

(3) **अनुदारवादी दल**—दक्षिणी पंथी फ्राँसीसियों में कई एक छोटे-छोटे दल हैं तथा उनका कार्यक्रम बहुधा अस्पष्ट ही रहा है। प्रारम्भ में तो इस दल में स्वतन्त्र कृषक तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता (Peasant and Social action Party) तथा आर० पी० एल० (Republican Party of Liberty) सम्मिलित थे, किन्तु सन् 1955 ई० में उन्होंने अपनी एक चौथी शक्ति (Fourth Force) के रूप में नवीन संगठन बना लिया। इसके नेता राष्ट्रीय आधार पर बहुत कम संगठित रहे हैं तथा ये परम्परागत संस्थाओं, परिवार तथा चर्च के समर्थक हैं, जिन्हें वे राजकोष से आर्थिक सहायता भी दिलाना चाहते हैं।

(4) **समाजवादी दल**-फ्राँस के वामपंथी दलों में समाजवादी दल को द्वितीय स्थान प्राप्त है। सन् 1905 ई० से स्थापित यह दल मार्क्स के सिद्धान्तों, वर्ग संघर्ष तथा क्रांति को ही स्वीकार करता है, किन्तु इसका अधिनायक तन्त्र एवं हिंसावाद में कोई विश्वास नहीं है। यह वस्तुतः एक विकासवादी दल है तथा इसने सदैव ही श्रमिकों के हित समर्थन में प्रगतिशील कानूनों की रचना करने, राज्य के एकाधिकार को विस्तृत करने तथा छोटे-छोटे भूमिपतियों के पक्ष में कृषि कानूनों की व्यवस्था करने इत्यादि सिद्धान्तों पर बल दिया है। इस दल (S. F. I.) की सदस्य संख्या दूसरे विश्व युद्ध के पूर्व फ्राँस में अन्य सभी दलों से अधिक थी। उस समय में यही आशा पाई जाती थी कि युद्धोत्तर फ्राँसीसी गणतन्त्रीय शासन प्रणाली में यही दल एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर सकेगा। परन्तु इसके प्रतिद्वन्दी साम्यवादी दल ने इसे अपनी महत्वाकांक्षाओं एवं उद्देश्य पूर्ति में सफल न होने दिया। इस दल में अधिकार विशेष योग्यता प्राप्त श्रमिक, अध्यापक तथा अन्य प्रकार के बुद्धिजीवियों ने प्राप्त किया है। किन्तु इस देश के हेतु संगठक श्रमिक वर्ग इन शुभ्र वस्त्रधारियों (सफेदपोशों) के नेतृत्व को स्वीकार करने को आकृष्ट नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त इस दल का अनुशासन भी अत्यन्त ढीला रहा है।

इसमें विभिन्न विचार पद्धतियों एवं दलीय समूहों के लोग आते हैं, जिनसे कि पारस्परिक विद्वेष एवं संघर्ष की ज्वाला अत्यन्त ही तीव्र रही है।

(5) रेडिकल समाजवादी दल तथा आर० जी० आर०—सन् 1948 ई० में गणतन्त्र परिषद के चुनावों में आर० जी० आर० नामक उपर्युक्त दल को संसद में आर० पी० एफ० तथा समाजवादियों से भी अधिक स्थान उपलब्ध हुये थे। यह आर० जी० आर० (Rally of the Republicans of the Left) वस्तुत: छोटे-छोटे संसदीय निर्वाचनों की दृष्टि से एक पृथक् दलीय समूह है जिसमें कि मुख्य अंग उग्र समाजवादी तथा यू० डी० एस० आर० (Democratic and Socialist Resistance Union) है। इस दल को भी अन्याय फ्राँसीसी दलीय संगठनों की भाँति संगठित किया गया है। परन्तु इसका अपना दलीय संगठन इतना अधिक ढीला तथा अनुशासनहीन रहता है कि कभी-कभी तो इसके सदस्य अपने दल के मन्त्रिमण्डल के विनिश्चियों का भी विरोध करने से संकोच करते हैं।

(6) यू० एन० आर० (U. N. R.)—सन् 195 ई० में जनरल डी० गाले के पूर्व समर्थक दल आर० पी० एफ० का नाम बदलकर यू० एन० आर० नामक नवीन दल की स्थापना हुई। इसका निर्माण डी गाले के समर्थक तीन बड़े-बड़े दलीय समूहों से मिलकर हुआ है। इस नवनिर्मित राजनीतिक दल के निर्माण में मि० सूस्टल (Mr. Soustelle) का विशेष हाथ रहा था। अत: वही इसका प्रधान बनाया गया। इसके संगठनों का आधारभूत निर्वाचन क्षेत्रों के आधार बनी है। इसके उद्देश्य हैं—(1) फ्राँस को राजनीतिक स्थायित्व प्रदान करना, तथा (2) उसे विश्व में उच्चतर स्थान दिलाना इत्यादि।

प्रश्न 8—फ्राँस तथा संयुक्त अमेरिका के राष्ट्रपतियों की स्थिति एवं शक्तियों की तुलना कीजिये।

Compare the position and powers of the President of France with those of the U. S. A. President.

फ्राँस का राष्ट्रपति कार्य-काल 5 वर्ष	संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति कार्य-काल 4 वर्ष
(1) फ्राँस के राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के सभी मन्त्रियों तथा प्रधानमन्त्री को नियुक्त करने का अधिकार है।	(1) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संविधान ने कार्यपालिका की शक्ति को देश के राष्ट्रपति में ही सन्निहित किया है।
(2) संकटकालीन स्थिति में फ्राँस के राष्ट्रपति की शक्ति पर्याप्त विस्तृत	(2) संकटकाल में संयुक्त राष्ट्र अमरीका का राष्ट्रपति देश के संसाधनों

फ्राँस का राष्ट्रपति कार्य-काल 5 वर्ष	संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति कार्य-काल 4 वर्ष
होती है। संकटकालीन स्थिति की घोषणा करने पर उसे संसद के सदनों के दोनों अध्यक्षों तथा संवैधानिक परिषद से अवश्य मन्त्रणा लेनी पड़ती है।	औद्योगीकरण के क्षेत्रों तथा मानवीय शक्तियों पर नियन्त्रण रखता है। संकटकालीन स्थिति की घोषणा करने पर राष्ट्रपति कांग्रेस और मुख्यता सीनेट की मंत्रणा ही अवश्य लेता है।
(3) फ्रांस के राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाकर उसे अपदस्थ भी किया जा सकता है।	(3) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी कांग्रेस के दोनों सदनों की माँग पर राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग कार्यवाही की जा सकती है।
(4) वह संविधान के संसद तथा कार्यपालिका द्वारा ठीक-ठीक पालन होने का सर्वोच्च उत्तरदायी है।	(4) संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति जनता के स्वतन्त्रता के अधिकारों का संवैधानिक प्रत्याभूति नहीं है। किन्तु इस सम्बन्ध में सीधे संविधान को ही उत्तरदायी रखा गया है।
(5) फ्रांस के राष्ट्रपति को राष्ट्रीय असेम्बली का विघटन करने की शक्ति प्राप्त हैं तथा इस सम्बन्ध में उसे किसी को सहमति लेना आवश्यक नहीं होता। फ्रांस में संकट काल में लोक सदन का विघटन नहीं हो सकता। यह एक वर्ष के अन्तर्गत ही विघटित राष्ट्रीय असेम्बली का विघटन भी नहीं कर सकता।	(5) राष्ट्रपति संसद में से ऐसे नियमों का निर्माण करने की प्रार्थना करता है जिनसे प्रशासन के कार्यों में सुविधा मिले। वह विधायिका द्वारा पारित उन अधिनियमों को अपनी वीटो (निषेधाधिकार) शक्ति द्वारा अस्वीकृत कर सकता है, जिनसे प्रशासन के कार्यों में बाधा पड़ने की आशंका हो।

प्रश्न 9—फ्रांस की संसद की तुलना इंगलैंड एवं संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की संसदों के साथ कीजिये।

Compare the French Parliament with the Parliament of England and U. S. A.

फ्रांस की संसद	संयुक्त राज्य अमेरिका की संसद
(1) फ्रांस की संसद में लोक सदन राष्ट्रीय असेम्वली की सदस्य संख्या 552 है तथा सीनेट में 30, सदस्य होते हैं। लोक सदन का कार्य-काल 5 वर्ष तथा सीनेट के प्रत्येक सदस्य का कार्य-काल 9 वर्ष होता है।	(1) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की संसद (कांग्रेस) में प्रतिनिधि सदन की सदस्य संख्या 437 ही है तथा सीनेट में कुल 100 सदस्य ही होते हैं। प्रतिनिधि सदन का कार्य-काल 2 वर्ष है तथा सीनेट के प्रत्येक सदस्य का कार्य-काल 6 वर्ष है।
(2) संसद को संविधान में संशोधन करने का अधिकार नहीं है यद्यपि वह विधि निर्माण करके संविधान में संशोधन कर सकती है तथापि उसके विधेयकों की संवैधानिकता की जाँच संवैधानिक परिषद द्वारा अपरिहार्य रूप में की जाती है।	(2) कांग्रेस के दोनों सदन अपने 2/3 बहुमत से संशोधन प्रस्ताव को पारित करके राज्यों को विधान सभाओं को भेज देते हैं। यदि प्रस्तावित संशोधन को 3/4 राज्यों की विधान सभायें स्वीकार कर लें तो संशोधन लागू कर दिये जाते हैं।
(3) फ्रांसीसी संसद के सदनों को किसी भी संसदीय प्रस्ताव अथवा विधेयक पर अपनी अभिव्यक्ति अथवा मत-दान करने के कारण न तो बन्दी ही बनाया जा सकता और न संसद के बाहर किसी भी महत्वपूर्ण अभि-व्यक्ति के सम्बन्ध में उन्हें उत्तर-दायी ठहराया जा सकता है। संसद के सत्र काल में इन जन-प्रतिनिधियों को संविधान अथवा कानून के गंभीर अतिक्रमण की दशा छोड़कर सामान्य अपराधों के कारण न बन्दी किया जा सकता है और न ही उन्हें किसी कानूनी कार्यवाही के लिये विवश किया जा सकता है।	(3) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में संसद के सत्र काल में किसी भी ससदीय सदस्य को देशद्रोह अथवा किसी गम्भीर अपराध को छोड़कर सामान्य अपराध के लिये बन्दी नहीं बनाया जा सकता। उसे सदन में भाषण करने की स्वतन्त्रता रहती है। राज्यों की विधायकों में इन संसदीय सदस्यों से सदन में कोई विधेयक पेश करने अथवा कांग्रेस के विचार के लिये कोई मामला पेश करने का अनुरोध करती रहती है, किन्तु ऐसा करना अथवा न करना सदस्य की स्वेच्छा पर निर्भर करता है।